त्याग का मूल्य

Tyag ka Moolya

मूल लेखक

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

Ravindarnath Thakur

अनुवादक

श्री सतीश कुमार अग्रवाल, बी० ए०

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य भण्डार

कर्नलगंज, प्रयाग

मूल्य चार रुपया

Rs 4.00

प्रकाशक—
श्री गुरुचरणदास अग्रवाल
हिन्दी-साहित्य-भण्डार
कर्नलगञ्ज, प्रयाग।

* * *

मुद्रक—
अनारकली प्रेस, कर्नलगञ्ज, प्रयाग।

पहला परिच्छेद

अविनाश घोष का आज जन्म-दिन है। आज वे पूरे बत्तीस वर्ष के हो चुके हैं। प्रातःकाल से ही उनके घर बधाई के तारों और रङ्ग-बिरंगे फूलों के गुलदस्तों का ताँता लगा हुआ है।

कहानी यहीं से शुरू होती है, किन्तु इस शुरू की भी एक कहान है। दिये सन्ध्या के समय जलाये जाते हैं, किन्तु तेल आदि पहले से ह डालकर रख दिया जाता है।

इस कहानी की प्राचीनता की खोज करने से पता लगता है कि घोषवंश किसी समय सुन्दर वन की तरफ निवास करता था, उसके बाद जिला हुगली के नूरनगर में आया। पुर्तगीजों या भीतरी समाज के धक्कों के कारण ये लोग चले आये, जिसका कोई ठीक हाल मालूम नहीं होता। अपने जीवन की बाजी लगाकर पुराने घर को जो लोग छोड़ सकते हैं; उनमें अतिशीघ्र नये घर बनाने की शक्ति भी पाई जाती है। घोषवंश के ऐतिहासिक युग के आरम्भ में उनके यहाँ अधिक मात्रा में जमीन जायदाद, गाय-बछड़े, नौकर-चाकर, पर्व-त्यौहार, ब्याह-गौने दृष्टिगोचर होते हैं। सियाकुली नामक पुराने गाँव में वर्तमान समय में भी दस बीघे में फैला हुआ घोषताल हरी काई और कमल के फूलों से ढका हुआ है जो उनके प्राचीन गौरव का साक्षी है। ताल का पानी चटर्जी परिवार के जमींदारों का है, आखिर उन्हें अपने पूर्वजों की महिमा को कैसे त्यागना पड़ा यह भी जान लेना जरूरी है।

हम उनके प्राचीन इतिहास के बीच अध्यायों में देखते हैं कि चटर्जी-परिवार के जमींदारों से उनका झगड़ा हुआ। यह झगड़ा जमींदार

या जायदाद का नहीं बल्कि देवी की पूजा पर ही चल पड़ा था। घोष परिवार ने अपनी बड़ाई बताने के लिए चटर्जी-परिवार की मूर्ति से दो हाथ ऊँची मूर्ति बनवाई। चटर्जी-परिवार ने भी इसका उत्तर दिया। विसर्जन की सड़क पर रात ही रात में कितने ही ऐसे नाप के तोरण खड़े कर दिये जिनमें घोष-परिवार की मूर्ति का सिर ही अटक जाय। इधर ऊँची मूर्तिवाले तोरण तोड़ने निकले तो दूसरी ओर छोटी मूर्तिवाले उनसे झगड़ा करने निकल खड़े हुए। परिणाम यह हुआ कि देवी ने इस बार गत वर्षों की अपेक्षा काफी से ज्यादा खून वसूल किया। रक्तपात हुआ और इसका अन्त उस समय हुआ जब गोष-परिवार विनाश के निकट जा पहुँचा था।

अग्नि बुझ गई, इंधन न रहा, सब कुछ जलकर राख हो गया। चटर्जी-वंश के गौरव का रङ्ग फीका पड़ गया। लाचारी की हालत में समझौता हो सकता है, किन्तु इससे शान्ति नहीं होती। जब एक सिर ऊँचा किये खड़ा है और दूसरा पराजित अवस्था में नतमस्तक है, किन्तु विरोध और क्रोध की ज्वाला दोनों के हृदय में धधक रही है। चटर्जी-परिवार ने अन्त में सामाजिक रूप से प्रहार किया और उड़ा दिया कि घोषवंशवाले वास्तव में नीची जाति के ब्राह्मण थे। यहाँ आकर वास्तविकता पर पर्दा डाल दिया है और भेड़ से भेड़िया बन गये हैं। जिन लोगों ने यह आवाज उठाई, उनके पास रुपये का काफी जोर था।

चटर्जी-परिवारवाले पण्डितों के मुहल्ले में भी उनके विषय में मिथ्या प्रचार करने लगे। घोष-परिवारवाले बेचारे क्या करते, पण्डित समाज के अत्याचारों के कारण उनको दूसरी बार फिर घरबार छोड़ना पड़ा और वे रजबपुर में अपनी मामूली झोपड़ी बनाकर जीवन व्यतीत करने लगे।

अत्याचार करनेवाले भूल जाते हैं, किन्तु जिन पर अत्याचार होता है वे आसानी से नहीं भूल सकते। हाथ से लाठी गिर जाने पर भी वे मन ही मन ेष करते हैं। वे कल्पना की लाठी से कितनी ही बार शत्रु को मारते और गिराते हैं। घोष-परिवारवालों के हाथ काफी दिनों से

काम नहीं करते थे, किन्तु मन में प्रतिहिंसा की आग धधक रही थी। इसी बीच में उन्होंने चटर्जी परिवार के होश किस तरह ठिकाने लगाये थे इसकी सच-झूठ मिलाकर उनके घर में काफी कहानियाँ मौजूद हैं। घास की झोपड़ियों में बैठकर बरसात की रातों में लड़के-वाले उन्हें बड़ी उत्सुकता से सुना करते हैं। चटर्जी-परिवार का दासू नामक प्रसिद्ध सरदार रात को जब सो रहा था तब बीस पचीस लट्ठबाज उसे कैसे पकड़ लाये और गायब कर दिया। फिर जब पुलिस खोज करने आई तो उसे चकमा दिया गया और पुलिस वालों को निष्फल और निराश लौटना पड़ा। लाख सिर पटकने पर भी चटर्जी-परिवार के दासू सरदार का पता न चल सका।

यह कहानी आज लगभग सौ वर्ष से घोष परिवार में प्रचलित है। जब पुलिस तलाशी लेने आई तो भुवनमोहन नायब ने उसे यह कहकर धता बता दिया कि—'हाँ, वह आया तो था कचहरी में अपने किसी काम से। काबू पाकर साले का कुछ अपमान भी किया था। सुनते हैं इसी रंज से वैरागी होकर वह घर से कहीं चला गया। हाकिम को सन्देह तक न हुआ।' भुवन ने कहा—'सरकार इसी वर्ष के अन्दर मैंने यदि उसे न खोज लिया तो मेरा नाम भुवनमोहन नहीं।'

न जाने कहाँ से दासू के कद का एक गुण्डा खोज लिया। उसे सीधा ढाका भेज दिया गया। उसने एक लोटा चुराया था और थाने में अपना नाम लिखवाया था दासू मण्डल। एक मास की सजा हुई। जेल से जिस दिन मुक्त हुआ, उसी दिन भुवनमोहन ने मजिस्ट्रेट को खबर दी कि दासू सरदार ढाका की जेल में है। खोज करने पर पता चला कि दासू जेल में अवश्य था, किन्तु वहाँ से छूटने पर वह अपनी दुलाई जेल के बाहर मैदान में फेंककर कहीं चला गया। और बाद में यह सिद्ध हो गया कि यह दुलाई दासू सरदार की है। इसके बाद वह कहाँ गया, यह बताने का भार भुवन पर नहीं था।

ऐसी कहानी वर्तमान दिवालिए की पुराने समय की हुण्डियों की

भाँति है। उनके गौरव के दिन बीत चुके हैं। इसलिए प्राचीन गौरव का नक्कारा खोखला होने से अधिक आवाज देता है।

कुछ भी हो जैसे तेल के समाप्त होने पर दीया आप ही बुझ जाता है वैसे ही रात बीतती है तो दिन हो जाता है। घोष-परिवार में अविनाश के पिता मधुसूदन के सौभाग्य से सूर्योदय दिखलाई दिया।

दूसरा परिच्छेद

मधुसूदन का पिता आनन्द घोष रजबपुर के आढ़तिये के पास नौकर था। मोटा खाना मोटा पहनना, इसी प्रकार जीवन बीतता था। घर की स्त्रियों के हाथ में मामूली कड़े और पुरुषों के गले में पीतल के यन्त्र तथा मोटे-मोटे जनेऊ थे। ब्राह्मण जाति की मान-मर्यादा कम हो जाने पर भी केवल जनेऊ ही एक प्रमाण रह गया।

गाँव की पाठशाला में मधुसूदन ने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। नदी के किनारे वह आढ़तियों के सामने वाले चौक में सन की गाँठों पर बैठ कर गाँव के किसानों, व्यापारियों और खरीदारों तथा गाड़ीवालों की भीड़ में छुट्टी मनाता था। बाजार में जहाँ टीन के छप्परों में छिपकी हुई गुड़ की गागरें, तम्बाकू की गाँठें, मिट्टी के तेल के कनस्तर, सरसों के ढेर, चने और मटर की बोरियाँ, बड़े-बड़े तौलने वाले काँटे और वजन करने वाले बाट रहते हैं, उसी बग़ीचे में टहलने से उसे प्रसन्नता होती है।

पिता ने सोचा कि लड़का बड़ा होकर कुछ बनेगा जरूर। दो-चार साल परीक्षा में बैठ जाने से स्कूल की मास्टरी से लेकर मुहर्रिरी या वकालत तक जो अच्छे लोगों के लिए सम्मानित पेशे हैं उनमें से किसी में मधुसूदन लग जायगा। बाकी तीन लड़कों का भाग्य गुमाश्तागिरी ही के साथ अटककर रह गया था। उनमें से एक तो आढ़तियों की गद्दी पर जा डटा और दूसरा ताल्लुकेदार के दफ्तर में, कानों पर कलम रखकर उम्मेदवार के रूप में खड़ा हो गया, किन्तु आनन्द घोष की गरीबी के बावजूद मधुसूदन

ने एक कमरा कलकत्ते की एक गली में रहने के लिए किराये पर ले लिया।

मास्टरों का विचार था कि परीक्षा में पास होकर यह लड़का कालेज का रुख करेगा, किन्तु इसी बीच मधुसूदन के पिता का स्वर्गवास हो गया। पढ़ने की सभी पुस्तकें बेचकर मधुसूदन ने निश्चय कर लिया कि अब वह व्यापार करेगा। और उसने व्यापार शुरू भी किया। यह हालत देखकर माँ रोती थी। उसे पूर्ण आशा थी कि परीक्षा में पास होकर लड़का किसी उच्च पद पर पहुँच जायेगा और फिर घोषवंश के सिर पर क्लर्की की विजय पताका लहरायेगी।

बचपन ही से मधुसूदन जिस प्रकार प्रत्येक चीज को पहचानने में दक्ष था, उसी प्रकार अपने मित्र बनाने में भी उसने धोखा नहीं खाया, उसका सबसे बड़ा मित्र था कन्हैयालाल गुप्त। उसके पूर्वज बड़े-बड़े व्यापारियों के यहाँ गुमाश्तागिरी करते आये थे और पिता प्रसिद्ध कोसिन कम्पनी के दफ्तर में उच्च पद पर कार्य करते थे।

सौभाग्य से उनकी पुत्री का विवाह हुआ। मधुसूदन कमर में दुपट्टा बाँधकर काम में डट गया। छप्पर तैयार करना, फूल पत्तियों से मण्डप को सुसज्जित करना, प्रेस में खड़े होकर सुनहरे अक्षरों में निमन्त्रण-पत्र छपवाना, गाने-बजाने वालों का प्रबन्ध करना, दरवाजे पर रहकर आवभगत करना, सारांश यह कि कोई काम भी बाकी न छोड़ा। इस अवसर पर उसने ऐसी चतुरता और कार्य-कुशलता का परिचय दिया कि रजनी बाबू बहुत प्रसन्न हुए। वे काम करने वाले आदमी को पहचानते थे। समझ गये कि यह लड़का उन्नति करेगा। इसीलिए अपनी जेब से रुपया जमा करके मधुसूदन को मिट्टी के तेल की एजेंसी दिला दी।

किस्मत की दौड़ शुरू हुई। इसमें कम्पनी को काफी लाभ हुआ। इस दौड़ में बेचारे कोसिन का डिपो पता नहीं कहां छूट गया। व्यापार दनादन जमा के खाने की मोटी-मोटी रकम पर पैर फेकता हुआ आगे बढ़ा—गलियों से लेकर सड़क पर, खुदरा से लेकर थोक में, दूकान से

लेकर ऑफिस में, उद्योग पर्व से लेकर स्वर्गारोहण तक में सभी ने कहा—'इसी का नाम तकदीर है।' अर्थात् पूर्वजन्म की स्टीम से ही इस जन्म की गाड़ी चल रही है। उसे ठगने में भाग्य ने कुछ कसर न रक्खी थी, यह मधुसूदन स्वयं समझता था। वह केवल हिसाब ही में न भूला, इसी कारण जीवन की परीक्षा में उसके परीक्षक का 'क्रॉसमार्क' नहीं पड़ा।

मधुसूदन को गर्व है, अपनी अवस्था के विषय में वह किसी से बातचीत करना व्यर्थ समझता है पर ऐसा लगता है, कि शुष्क नदी में बाढ़ आ गई है। बङ्गाल में ऐसी दशा में लोग जल्दी ही विवाह की चिन्ता करते हैं। इस जीवन की सम्पत्ति को खर्च करने और भविष्य में अपने वंश को बढ़ाने की इच्छा उसके हृदय में शीघ्र ही उत्पन्न होती है। कन्या पक्षवाले मधुसूदन को उत्साहित करने में कोई कसर नहीं उठा रखते थे कि मधुसूदन कहता—'पहले एक पेट तो भर जाने दो फिर दूसरे के पेट की आग बुझाने का भार सिर पर उठाया जा सकता है।' इससे पता चलता है कि मधुसूदन का हृदय चाहे जैसा हो, किन्तु उसमें आत्मसंयम का अभाव नहीं था।

मधुसूदन की चतुरता से उसी समय रजबपुर की सन ने ख्याति प्राप्त कर ली। एकाएक मधुसूदन ने नदी किनारे काफी जमीन खरीद ली। उस समय जमीन सस्ती थी। बीसियों ईंटों के भट्ठे लगवाये गये। नैपाल से काफी लकड़ी मँगवाई गई, सिलहट से चूना आया और कलकत्ते से करकेट की टीनें। बाजार वाले दङ्ग रह गये। कहने लगे, 'देखो तो सही, अब तो इस जगह हर चीज की बहुतायत हो गई। खपेगी कहाँ, अब इसका समाना कठिन है। कारबार का अन्त समझो।'

मधुसूदन के हिसाब में इस बार भी भूल न हुई। देखते ही देखते रजबपुर व्यापार का केन्द्र बन गया। दलाल रुपये के चक्कर में आ गये और मारवाड़ियों का झुण्ड भी आ पहुँचा। मजदूर और कुली बराबर आ रहे थे। मिल बन गई और मिल की चिमनी से निकले हुए वृत्ताकार धुएँ

ने नीलाकाश पर कालिमा बिखेर दी। मधुसूदन की ख्याति दूर-दूर फैल गई। वह अकेला सारे गञ्ज का मालिक था। चहारदीवारी के अन्दर दो मञ्जिली इमारत है। गेट पर पत्थर लगा हुआ है जिसमें लिखा है—'मधुचक्र।' यह नाम उसके कालेज के भूतपूर्व संस्कृत-अध्यापक का रखा हुआ है। मधुसूदन से अब वे पहले से भी अधिक प्रेम करने लगे थे।

एक दिन विधवा माँ ने आकर डरते-डरते कहा—'बेटा! भगवान् न जाने कब उठा लें। बहू का मुँह तो देखती जाती!'

मधुसूदन ने गम्भीर मुद्रा बनाकर संक्षेप में उत्तर दिया—'विवाह करने में भी समय नष्ट होता है और विवाह के बाद भी। मुझे इतना अवकाश नहीं।'

माँ को अधिक आग्रह करने का साहस न हुआ। सब जानते हैं कि मधुसूदन जो कुछ कह देता है, उसी पर अड़ जाता है।

कुछ समय और बीता, उन्नति की बाढ़ में कारोबार का दफ्तर बहकर गाँव से कलकत्ते चला गया। बहू के आगमन से हृदय को शान्त करने की आशाओं को छोड़कर माँ इस संसार से बिदा हो गई। घोष कम्पनी का नाम आज केवल देश में ही नहीं, बल्कि विदेश में भी प्रसिद्ध है। उसका व्यापार अब पक्की बुनियाद वाली पुरानी विलायत कम्पनी के बराबर चलता है। प्रत्येक विभाग के अङ्गरेज मैनेजर हैं।

मधुसूदन ने इस बार स्वयं कहा—'अब विवाह की फुर्सत मिली।' लड़कियों के बाजार में उसका स्थान सब से ऊँचा है। बड़े-बड़े अभिमानी परिवारों का घमण्ड तोड़ने की शक्ति उसमें आ चुकी थी। चारों ओर से अनेकों कुलीन, सुन्दर, शिक्षित तथा धनी घरानों की लड़कियों की खबरें आने लगीं। मधुसूदन ने आँखें खोलकर कहा—'उसे चटर्जी वंश की लड़की चाहिए।'

चोट खाया हुआ वंश भी चोट खाये हुए बाघ की भाँति भयंकर होता है।

तीसरा परिच्छेद

अब लड़की वालों का किस्सा सुनो।

नूरनगर के चटर्जी परिवार की स्थिति इस समय अच्छी नहीं है। ऐश्वर्य का पतन हो चला है। छः आने के हिस्से वाले भी जायदाद का बँटवारा कराके अलग हो गये हैं। इसके अतिरिक्त राधाकान्त जी की सेवा के अधिकारों को लेकर दस और छः आने वालों में इतनी मुकदमेबाजी हुई कि दोनों ओर के वकील और मुख्तार बन गये, मुहर्रिर भी वञ्चित न रहे। नूरनगर की वह शान न रही, आमदनी बन्द हो गई किन्तु खर्च बढ़ता ही गया। नौ रुपये सैकड़े के सूद की नौ टाँगों वाली मकड़ी ने जमींदारी के चारों ओर जाल फैला दिया।

चटर्जी परिवार में दो भाई और पाँच बहिनें हैं, लड़कियों की अधिकता के अपराध का जुर्माना अभी तक पट नहीं सका है। चार बहिनों की तो शादी पिता के सामने ही कुलीन घरों में हो गई थी। इनके धन की सूरत तो इस जमाने की है किन्तु ख्याति प्राचीनकाल-सी है। दामादों को दहेज देना पड़ा वह भी पोले ख्याति के लम्बे माप से तथा कुलीनता की मोटी रकमों से। इसी कारण नौ प्रतिशत के डोरे में गुथे हुए ऋण के फन्दे में बारह प्रतिशत गाँठ पड़ गई। छोटा भाई कमर कसकर बोल उठा—'विलायत जाकर बैरिस्टर हो जाऊँ, रोजगार किये बिना बनेगी नहीं।' इस प्रकार वह विलायत गया और गृहस्थी का भार बड़े भाई विप्रदास पर आ पड़ा।

इसी बीच घोष और चटर्जी के भाग्यरूपी पतङ्ग में परस्पर खींचा-खींची से पेंच पड़ गया जिसका इतिहास निम्नलिखित है।

बड़े बाजार के तनसुखदास हलवाई का इन पर अत्यधिक ऋण था, जिनका ये बराबर ब्याज दे रहे थे, जिसकी कोई बात ही नहीं। इन्हीं दिनों पूजा की छुट्टी में विप्रदास का सहपाठी अमूल्यधन आ गया, आत्मी-

यता दिखाने के लिए वह बड़े अटर्नी ऑफिस का आर्टिकिल्ड-हेड क्लर्क था। इस चश्मेबाज युवक ने नूरनगर की हालत खूब अच्छी तरह से देख ली। उसका कलकत्ता लौटना हुआ कि तनसुखदास रुपया माँगने लगा और कहने लगा—'चीनी का नया काम खोला है अतएव रुपये की बहुत ही जरूरत है।'

विप्रदास तकदीर ठोककर बैठ गये।

इस विपत्ति के समय में ही चटर्जी और घोष इन दोनों नामों में द्वितीय द्वन्द्व समास हो गया। इसके पूर्व ही मधुसूदन को सरकार बहादुर से 'राजा' का खिताब मिल चुका था। छात्र बन्धु अमूल्यधन ने आकर कहा—'नये राजा इस वक्त प्रसन्नचित्त हैं, इस अवसर पर उनसे जितना चाहें ऋण मिल सकता है।' सो ही मिला—चटर्जियों का तमाम फुटकर कर्ज एकत्रित करके ग्यारह लाख रुपया, सात प्रतिशत की ब्याज पर। विप्रदास के जी में जी आया।

जिस प्रकार कुमुदिनी उनकी अन्तिम और अवशिष्ट बहन है, उसी प्रकार उनकी पूँजी की भी अन्तिम और अवशिष्ट दशा है। दहेज जुटाने और ढूँढ़ने की बात सोचते ही आतंक-सा छा जाता है। देखने में वह सुन्दरी है, छरहरे लम्बे बदन की है—जैसे रजनीगन्धा का पुष्पदण्ड हो। आँखें बड़ी-बड़ी न होने पर भी अतीव काली हैं और नाक ऐसी जान पड़ती है मानो पङ्खड़ियों से बनी है, रङ्ग भी शङ्ख की तरह चिकना और गौरवर्ण का है। सुन्दर सुडौल हाथ है, उन हाथों की सेवा का पाना कमला का वरदान है। कृतज्ञ होकर ग्रहण करना चाहिए। संपूर्ण मुख पर एक वेदनामय सकरुण धैर्य का भाव है।

कुमुदिनी स्वयं अपने लिए ही संकुचित है। वह सोचती है कि वह अभागिनी है। पुरुष लोग अपनी शक्ति से गृहस्थी चलाते हैं और अपने भाग्य के जोर से स्त्रियाँ घर में लक्ष्मी को लाती हैं इसे वह जानती है। उससे यह न हो सका। जब से वह समझने योग्य हुई है तभी से वह चारों ओर दुर्भाग्य की पाप-दृष्टि ही देख रही है। परिवार पर एक भार-

स्वरूप है। उसके कुवारेपन का भार जितना दुखदायक है, उतना ही अपमानजनक भी है। हाथ मलने के अतिरिक्त वह कुछ कर भी तो नहीं सकती! ईश्वर ने लड़कियों का भाग्य ही विचित्र बनाया है। उन्हें केवल दुःख सहने की शक्ति दी है और कुछ भी नहीं। कुमुदिनी कभी-कभी रात को अपने बिस्तर से उठकर बगीचों में हिलते हुए झाऊ के वृक्षों की चोटियों की ओर देखती है और मन ही मन कहती है—'कहाँ हो मेरे राजपुत्र! कहाँ है तुम्हारा सात राजाओं का धन, आकर मेरे भाइयों की रक्षा करो। मैं सदैव के लिए तुम्हारी दासी बनी रहूँगी।'

कुमुदिनी परिवार की हीन अवस्था के लिए स्वयं को जितना दोषी ठहराती है उतना ही अपने मन की वास्तविक भावना को प्रकट करके दुखःदर्द में शामिल होती है। कुमुदिनी के प्रति अपने कर्तव्य का पालन न कर सकने के कारण भाइयों ने भी अत्यधिक सङ्कट के होते हुए भी उसके प्रति स्नेह में कोई कमी न उठा रखी। उस भ्रातृहीन और पितृहीना बालिका को जिस स्नेह से भगवान ने वञ्चित कर रखा है, उसकी पूर्ति के लिए उसके भाई सदैव तत्पर रहते हैं। वे कहते हैं कि तू तो चाँद का टुकड़ा है। दीनता के अन्धकार में वही अकेली तो प्रकाश की किरण है। कभी-कभी जब वह अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए अपने को बुरा-भला कहने लगती है तो विप्रदास से सहन नहीं होता। वह कहता है—'कुमुदिनी, तू ही तो हम लोगों का सौभाग्य है, तू न होती तो हमारे घर में लक्ष्मी कहाँ रहती!'

कुमुदिनी ने घर ही में शिक्षा प्राप्त की थी। घर के बाहर का हाल वह नहीं जानती। प्राचीन और नवीन सभ्यता के बीच वह पली है, उसके लिए दुनिया अस्पष्ट है, विशेष दिन में वहाँ चाँद देखना मना है। शङ्ख बजाकर ग्रहण की कुदृष्टि भगाई जाती है। इसी प्रकार की कितनी ही प्रथाएँ प्रचलित हैं। प्रायः देखा जाता है कि स्वप्न-संसार में विचारों की पहुँच नहीं। वहाँ केवल मान्यता चलती है। दुनिया में भाग्य के विषय में तर्क-वितर्क करना और अच्छे-बुरे की पहचान न होने से ही कुमुदिनी

के चेहरे पर उदासी छाई हुई है। वह सोचती है कि अपराध के बिना ही वह बदनाम है। आठ वर्ष बीते, उसने इस बदनामी को अपनी समझ लिया था, और वह थी उसके पिता के मृत्यु की दुर्घटना।

चौथा परिच्छेद

पुराने अमीरों के घरों में पुराने दिन जिस गढ़ में वास करते हैं, उसकी चिनाई पक्की होती है, बहुत सी ड्योढ़ियाँ पार करने के बाद कहीं नवीन दिन वहाँ पहुँच पाते हैं। इन गढ़ों के निवासी नवीन युग तक पहुँचने में बहुत देर लगा देते हैं। विप्रदास के पिता मुकुन्दलाल भी यद्यपि सरपट दौड़े किन्तु फिर भी नवीन युग न पकड़ सके।

उनका लम्बा गोरा शरीर, घूँघरवाले बाल, बड़ी-बड़ी सिकुड़ी हुई आँखों में प्राचीन गौरव की झलक है। जब वे अपने भारी स्वर में किसी को पुकारते हैं तो नौकर-चाकर काँप उठते हैं। यद्यपि वे अपने यहाँ पहलवान रखकर नियमपूर्वक कुश्ती का अभ्यास करते हैं और उनके शरीर में शक्ति भी कम नहीं, किन्तु फिर भी उनके कोमल शरीर में मेहनत का चिह्न तक नहीं, उनकी पोशाक में चुन्नटदार बारीक जाली का कुर्ता, ढाके की धोती, जिसकी लाँग जो बड़ी कोशिश से चुनी हुई है, धरती पर बिखर रही है। हस्तम्बोली इत्र की सुगन्ध दूर ही से उनके आगमन की सूचना देती है। सोने का पनबट्टा हाथ में लिये खानसामा पीछे-पीछे चल रहा है। दरवाजे पर हर समय तमगा और चपरास लगाये अरदली तथा दरबान मौजूद रहते हैं। ड्योढ़ी पर बूढ़ा जमादार चन्द्रभान सुर्ती बनाने और भङ्ग छानने की छुट्टी में बेंच पर बैठा अपनी लम्बी दाढ़ी को दो भागों में विभक्त कर उस पर बराबर हाथ फेर कर कानों से बाँधता रहता है। छोटे दरबान हाथ में तलवारें, लिये चौकीदारी करते हैं। ड्योढ़ी की दीवार पर कई प्रकार की ढालें, सुन्दर तलवारें प्राचीनकाल की बन्दूकें, बल्लम तथा बर्छे लटक रहे हैं। बैठक में मुकुन्दलाल गद्दी पर बैठे हैं। पीठ पर मसनद लगी है, मुसाहब लोग सामने दाँयें-बायें नीचे बैठे हैं।

हुक्का पिलाने वाला यह सब बातें जानता है कि उनके सम्मान की दृष्टि से किसको कैसा हुक्का पिलाना चाहिए। मुकुन्दलाल के लिए खास लम्बी नालीदार गुलाबजल से महकती हुई फर्शी है। मकान के दूसरे भाग में विलायती बैठक है। यहाँ अठारहवीं शताब्दी के विलायती सामान हैं। सामने ही एक बड़ा भारी आईना है जिसके शीशे में काले-काले दाग पड़ गये हैं। फ्रेम के दोनों ओर दो परों वाली परियों की मूर्तियाँ हैं जिनके हाथों में शमादान लगे हुए हैं। उसके नीचे सुनहरे तारों से चित्रित काले पत्थर की घड़ी और काफी संख्या में शीशे के खिलौने रक्खे हैं। लंबी पीठवाली चौकी, सोफे, छत की कड़ियों में लटकते हुए झाड़-फानूस 'हालैण्ड क्लाथ' से ढके हैं। दीवारों पर पूर्वजों के तैलचित्र टंगे हैं और उनके साथ वंश के दो एक मित्र राजाओं के फोटो, घर भर में विलायती कालीन बिछा हुआ है, उस पर चटकते हुए गहरे रङ्ग के फूल बने हैं। विशेष अवसरों पर जैसे जिले और प्रान्त के हाकिमों की दावतों के अवसर पर इस घर का नकाब उलटा जाता है। मकान भर में यही एक नवीन ढङ्ग का कमरा है, किन्तु मालूम होता है कि यह सब से पुराना भूतों वाला कमरा है। इस्तेमाल में न आने के कारण दम घोंट देने वाला और जीवनयात्रा से असम्बद्ध मौन और मूक।'

मुकुन्दलाल का शौक उस जमाने के अदब-कायदे का आवश्यक अङ्ग है। उनके अन्दर जो स्वाभाविक अपव्ययता पाई जाती है, उसी के कारण संसार उनका सम्मान करता है। उनके भोग-विलास के दरबार में धन पाँव की धूल बनकर मसला जाता है। उनके दरबार में दान-दक्षिणा और रङ्गरेलियाँ सब एक-सा स्थान रखती हैं। पड़ोस के साहूकार ने किसी बड़े अपराध में बगीचे के माली का कान ऐंठ डाला। उसको दण्ड दिलाने में जितना रुपया खर्च हुआ, उतना खर्च आजकल के जमाने में लड़कों को कालेज के पार उतारने में भी नहीं होता। माली के लड़के के साथ भी लापरवाही नहीं की थी। उसे मार-मार कर खाट पर डाल दिया। गुस्से की धुन में चाबुक अधिक लगने पर लड़के पर विशेष दया आ गई

अतएव मुकुन्दलाल के खर्चे से लिख-पढ़कर वह आज मुख्तार का काम कर रहा है।

पुराने समय के धनिकों की भाँति मुकुन्दलाल का जीवन दो भागों में बँटा हुआ है। एक भाग घर गृहस्थी और दूसरे में हँसी-दिल्लगी। अर्थात् एक में सद्गुण और दूसरे में ग्यारह अवगुण। घर उनकी पूजा का स्थान है और घर की मालकिन उनके मन-मन्दिर की देवी है। वहाँ पूजा है, मेहमानदारी है, तीज-त्योहार, सदावर्त, ब्राह्मणभोज, किन्तु दिल्लगी का भाग घर से बाहर! वहाँ नवाबी समय के ठाट-बाट हैं। सुन्दर नारियों का आना-जाना रहता है। उसकी सङ्गति को पुराने समय के लोग सभ्यता सीखने का एक अङ्ग समझते थे। दोनों भागों के परस्पर इतने विरोध के कारण गृहणियों को बहुत कुछ सहन करना पड़ता था। मुकुन्दलाल की पत्नी नन्दरानी बड़ी अभिमानिनी स्त्री है। उसमें अभी पूर्ण सहनशक्ति नहीं आई। इसका एक कारण यह था कि वह समझती थी कि बाहर उसके पति की पहुँच और मान-मर्यादा कितनी ही क्यों न हो, पर उसका सहारा वही है। उसको उनसे अत्यधिक प्रेम है, इस कारण जब उसके साथ अन्याय करते हैं तो उससे यह सहन नहीं हो सकता। एक बार ऐसा ही हुआ।

पाँचवाँ परिच्छेद

रात के समय खूब धूमधाम मची। कलकत्ता और ढाका से सामान मँगाया गया। मकान के आँगन में कृष्णलीला होती और किसी दिन किर्तन। यहाँ स्त्रियाँ और पड़ोस के पुरुषों का जमघट हुआ करता और बहुधा विशेष बैठकें होतीं, जिसमें बाजारू स्त्रियाँ भी आतीं। उनको देख कर घर की स्त्रियों को कैसे चैन आ सकता था! हृदय में एक काँटा सा चुभता रहता। दरवाजे के सामने से कुछ-कुछ झलक दिखाई पड़ती थी। इसी कारण इस बार यह हुकम हुआ कि वेश्या का नाच दरिया के बहाव पर बजरे में होगा।

क्या हो रहा है, यह देखने को कोई चीज न मिलने के कारण नन्द-रानी का जी दुःख से भर आया। घर का काम-काज, लोगों का खाना-पीना और देख-भाल सब कुछ खुशी-खुशी करना पड़ता था, किन्तु हृदय में हर समय एक काँटा चुभता रहता। ऐसा कभी न होता यदि दूर से यह आवाज आती, 'जय हो रानी माता की' अन्त में यह उत्साह समाप्त हुआ। मकान खाली हो गया। केवल पत्तलों और कसोरों के ढेर पर कौओं और कुत्तों की काँव-काँव और भों-भों की आवाज आ रही है। नौकरों ने लटकती हुई बत्तियाँ उतार लीं। कनातें खोल दीं। झाड़ और फानूस की अधजली बत्तियाँ और फूलों की झालरें छीनने के लिए मुहल्ले के लड़कों ने छीना-झपटी मचा दी है। भीड़ से बराबर तमाचों की आवाज और रोने-चिल्लाने से आतिशबाजी के पटाखों की भाँति आसमान फट रहा है। आँगन की सड़ी हुई तरकारी और भात की दुर्गन्ध से वायु दूषित हो गई है। चारों ओर गन्दगी और सड़ाइन है। गृहिणी के लिए यह एकदम असह्य हो गया, जब मुकुन्दलाल आज भी न लौटे। दीवानजी को बुलाकर पर्दे की ओट से कहा—'उनसे कह दीजिएगा, मेरी माँ की दशा ठीक नहीं है, मुझे इसी कारण उनके पास जाना पड़ रहा है!'

सिर पर हाथ फेरते हुए दीवानजी ने मृदु स्वर से कहा—'आज ही कल में मालिक आने वाले हैं, क्योंकि समाचार मिल चुका है सो उनसे कहकर जाना ही ठीक है।' इस पर नन्दरानी ने कहा—'नहीं, अब देर करना ठीक न होगा।'

आज ही कल में आने वाले हैं, इसका पता नन्दरानी को लग गया था। इसी कारण जाने को इतनी उतावली हो रही हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि थोड़ा-सा रो-धो लेने से तथा मना लेने से ही सब माफी मिल जायगी। ऐसे ही सदैव होता है और ऊपरी दण्ड अपूर्ण ही रह जाता है, किन्तु इस बार ऐसा कदापि न होगा। इस कारण पहले ही से दण्डदाता को दण्ड की व्यवस्था करके जाना पड़ रहा है। प्रस्थान के कुछ ही समय पूर्व उसके पाँव उठना नहीं चाहते और वहाँ पलङ्ग पर

आँधी पड़ फूट फूट कर रोती रही किन्तु उसका जाना न रुक सका।

कार्तिक का महीना है, दिन के दो बजे का समय है, वायु का तस झोंका चल रहा है। सड़क के दाहिने बायें शीशम के वृक्षों की मरमराहट के साथ कभी-कभी मन्द आवाज में कोयल की कुहू-कुहू सुनाई पड़ जाता है। जिस सड़क से होकर पालकी जा रही थी वहीं कच्चे धान के खेतों के उस पार एक नदी दिखाई देती थी। नन्दरानी से न रहा गया, वे पालकी के दरवाजे को खिसका कर इधर-उधर देखने लगीं और उनकी दृष्टि उस पार के बँधे हुए बजरे पर पड़ी और मस्तूल की पताका फहरा रही थी। बजरे की छत पर चिर-परिचित गोपी हरकारा जिसकी पगड़ी का तगमा सूर्य-रश्मि से चमचमा रहा है, बैठा है। दूर ही से यह सब देखकर उनके कलेजे पर पत्थर-सा बैठ गया और उन्होंने जोर से पालकी का दरवाजा बन्द कर दिया।

छठा परिच्छेद

मुकुन्दलाल तूफान में भी स्थिर रहने वाली चट्टान के सदृश थे। संकुचित से होते हुए अपने मकान पर आकर रुके। कलेजा कुसूर के बोझ से भारी हो गया है। पूर्ण भोजन हो चुकने के बाद जिस प्रकार जूठन अनिच्छा होती है उसी प्रकार आमोद-प्रमोद की स्मृति ने उनके मन को अरुचिकर बना दिया है। उनके इस आमोद के जो उत्साहदाता और उद्योगकर्ता थे, यदि वे इस समय होते तो मारे चाबुकों के उनका होश ठिकाने लग जाता। मन ही मन उन्होंने प्रण किया, ऐसा अब कभी भी न होने देंगे। उनके अस्तव्यस्त बाल, रक्तवर्ण नेत्र और मुँह के अत्यन्त शुष्क भाव को देखकर किसी में इतना साहस न था जो उन्हें मालकिन के चले जाने की सूचना देता। मुकुन्दलाल डरते-डरते भीतर पहुँचे। 'बड़ी बहू माफ करो, अब कभी ऐसा न होगा, कुसूर हो गया।' मन ही मन इस बात को कहते हुए वे शयनागार के द्वार पर जाकर ठिठक गये और धीरे-धीरे भीतर घुसे। उनके मन में यही निश्चय हुआ कि अभिमानिनी

बिछौने पर पड़ी होगी, पैरों के सन्निकट जा बैठेंगे। यह सब सोचते हुए कमरे में घुसे, देखा—कमरा सूना है, हृदय धधक उठा! यदि शयनकक्ष में बिछौने पर नन्दरानी को देखते तो समझ लेते कि मानिनी कुसूर माफ करने के लिए आधा रास्ता आगे बढ़ आई है। किन्तु बड़ी बहन को सोने के कमरे में न देखकर मुकुन्दलाल समझ गये, आज का प्रायश्चित्त लम्बा और कठिन होगा। या तो सम्पूर्ण रात्रि बाट जोहनी होगी या और अधिक देर लगेगी किन्तु इतना धैर्य रखना भी उनके लिए सम्भव नहीं। उन्होंने निश्चय किया कि पूरा दण्ड अभी सिर माथे चढ़ाये या बिना क्षमा पाये, मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। अत्यधिक देर हो गई है, अभी तक स्नान-भोजन भी नहीं हुआ है, ऐसी दशा में सती साध्वी से कैसे रहा जायगा? कमरे से बाहर निकलकर देखा—प्यारी महरी बरामदे के एक कोने में घूँघट खींचे खड़ी है। पूछा—'तेरी बड़ी बहूजी कहाँ हैं?'

उसने कहा—'वे परसों ही अपनी माँ को देखने वृन्दावन गई हैं।'

मानो पूर्णरूप से समझ न सके, उनका गला रुँध-सा आया, फिर पूछा—'कहाँ गई हैं?'

'वृन्दावन! माँ जी बीमार हैं।'

पहले तो बरामदे की रेलिङ्ग थामकर मुकुन्दलाल खड़े हो गये किन्तु कुछ देर के बाद तेजी से चलकर बैठक में अकेले ही जाकर बैठ गये। उनके मुँह से एक भी शब्द न निकला और उनके पास किसी को जाने का साहस भी न हुआ।

दीवानजी ने आकर डरते-डरते कहा—'तो माँ जी को बुलाने के लिए आदमी भेज दूँ?'

उन्होंने कोई उत्तर न दिया, केवल अँगुली के इशारे से मना कर दिया। दीवानजी के चले जाने पर राजा रसोइए को बुलाकर कहा—'जायदी ले आ।'

सब दङ्ग रह गये। भूचाल जब धरती की कठीन सतह के सिर

मिलाकर तहलका मचा देता है तो उस पर अधिकार पाने के सारे प्रयास विफल हुआ करते हैं। सब को लाचार हो धमाका सहना पड़ता है, यह भी उसी प्रकार का भूचाल था।

निर्जन अट्टालिका उड़ने लगी। खाना-पीना करीब-करीब बन्द हो गया। एक तो पहले से ही तबीअत खराब रहती थी फिर चला यह उलटा दाँव, पूरे वेग से शराब ने खूनी कै तक की नौबत पहुँचा दी।

कलकत्ते से डॉक्टर आया। रात दिन सिर पर बर्फ रखी जाने लगी। किसी को देखते ही मुकुन्दलाल पर सनक सवार हो जाती। उनके मन में सन्देह उत्पन्न हो गया कि सारा कुटुम्ब कोई षड्यन्त्र रच रहा है। भीतर ही भीतर यह प्रश्न कलाबाजियाँ खा रहा था, इन लोगों ने आखिर जाने क्यों दिया?

यदि उस समय कोई उनके पास जा सकता था तो वह एक कुमुदिनी ही थी। वह निकट जाकर बैठती। मुकुन्दलाल उसकी ओर शान्त भाव से आकृष्ट रहते, मानो उसकी आँखों से उनकी माँ की शक्ति मिलती जुलती दिखाई पड़ती है। कभी-कभी उसके माथे को छाती से लगाकर आँखें बन्द किये चुपचाप पड़े रहते हैं। आँखों से पानी बहने लगता, किन्तु भूलकर भी कभी उससे माँ की बात नहीं पूछते। उधर वृन्दावन को तार गया। माँ कल ही आ जातीं किन्तु सुना है कि मार्ग में कहीं रेल पटरी से उतर गई है।

सातवाँ परिच्छेद

उस दिन सन्ध्या समय जोर का तूफान आया। बगीचे के वृक्षों की डालियाँ तड़तड़ाकर गिरने लगीं। वायु पूरे वेग से चिग्घाड़ती हुई चल रही थी। उत्सव के लिए जो छप्पर तैयार किया गया था उसके रस्से टूट गये और टीन उड़कर दूर जा पड़ा।

अचानक वहाँ एक तेज झोंके से खिड़कियाँ और दरवाजे खड़खड़ा कर काँप उठे। कुमुदिनी का हाथ मसलकर मुकुन्दलाल ने कहा—

'बेटी, तू क्यों डरती है, तूने कोई अपराध नहीं किया। वह दाँत पीस रहे हैं, वे मुझे मारने आ रहे हैं।'

पिता के माथे पर बर्फ की थैली फेरते हुए कुमुदिनी कहती—'मारेंगे क्यों बाबूजी, आँधी चल रही है, अभी थम जायगी।'

'वृन्दावन ! वृन्दावन—चन्द्र चक्रवर्ती ! पिता जी के समय का पुरोहित वह तो मर गया, भूत होकर आ गया है वृन्दावन ! किसने कहा वह आयेगा ?'

'बातें न करो बाबूजी ! थोड़ा सो जाओ।'

'वृन्दा दूती ! वह मधु की उत्तराधिकारी—राजा बावडी ले आ।'

कुमुदिनी पिता के मुँह की ओर झुककर बोली—'बाबूजी, क्या कह रहे हो ?'

मुकुन्दलाल ने आँखें खोलकर देखा और देखते ही दाँतों से जीभ दबाकर रह गये। अपने आपे में न रहते हुए भी वे यह बात न भूले कि कुमुदिनी के सामने शराब का दौर नहीं चल सकता।

कुछ ठहरकर उन्होंने गाना शुरू किया। बिखरे हुए गीतों को सुन कर कुमुदिनी की छाती फट गई। हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसे माँ पर क्रोध आता, पिता के पाँव पर सिर रखकर माँ की ओर से क्षमा-याचना करती।

मुकुन्दलाल अचानक बोल उठे—'दीवानजी !'

दीवानजी के आने पर उससे बोले—'वह देखो, टिक-टिक सुनाई दे रही है।'

दीवानजी ने कहा—'हवा से दरवाजे हिल रहे हैं।'

'बूढ़ा आया है। वही वृन्दावन—चन्द्र—गञ्जा, हाथ में लकड़ी लिये, रेशमी चादर गले में डाले। देख तो आओ तब से बराबर खटखटा रहा है, लाठी या खड़ाऊँ से !'

खून की कै कुछ देर से रुक गई थी। रात के तीन बजे फिर शुरू हो गई। मुकुन्दलाल बिछौने पर चारों ओर हाथ फेर कर ऐंठी हुई जबान

से बोले—'बड़ी बहू, घर में बड़ा अँधेरा है, अब भी चिराग नहीं जलाओगी ?'

उत्सव से वापस आने के बाद मुकुन्दलाल ने स्त्री के लिए यही पहली और आखिरी बात कही।

* * *

वृन्दावन से लौटने पर नन्दरानी घर के दरवाजे के पास आते ही मूर्छित होकर गिर पड़ी। उसे उठाकर बिस्तर पर लिटाया गया। घर-गृहस्थी में उसे कोई चीज अच्छी न लगी। आँखों के आँसू बिलकुल सूख गये। लड़के-लड़कियों से शांति न मिली। गुरुजी ने आकर शास्त्र की बातें सुनाईं तो मुँह फेर लिया, बोली—'मेरा हाथ देखकर कहा था कि तेरा सोहाग कभी न मिटेगा, क्या झूठ हो सकता है ?'

क्षेमा दूर के नाते से ननद लगती थी, आँचल से आँसू पोंछते हुए बोली—'जो होना था हो चुका। अब घर की ओर देखो। वह तो जाते समय कह गये हैं कि बड़ी बहू क्या घर में दिया न जलाओगी ?'

नन्दरानी बिस्तर से उठकर बैठ गई। दूर तक निगाह दौड़ाकर बोली—'जाऊँगी दिया जलाने, जाऊँगी। अबकी बार देर न होगी।' यह कहते-कहते उसका पीला रङ्ग चमक उठा। मालूम होता था हाथों में चिराग लिये जा रही है।'

सूर्य पश्चिम की ओर झुक गया था। नन्दरानी ने माथे पर मोटा-मोटा सेंदुर लगाया। लाल बनारसी साड़ी पहनी और घर की ओर बिना देखे मुसकराते चली गई।

आठवाँ परिच्छेद

पिता की मृत्यु के बाद विप्रदास ने देखा कि जिस वृक्ष पर उनका नीड़ है, उसकी जड़ों को कीड़े खा गये हैं। धन-दौलत और जमीन जायदाद सब कर्जे की दलदल में खड़े धीरे-धीरे नीचे की ओर धँस रहे हैं। रहन-सहन और अन्य खर्चों के कम किये बिना काम नहीं चल

सकता। कुमुदिनी के विवाह के बारे में भी हर घड़ी सवाल उठा करते, जिसका उत्तर देते हुए चुप ही रह जाना पड़ता है। अन्त में नूरनगर से घर-बार उठाना पड़ा और कलकत्ते में आकर बाग बाजार में एक मकान में रहने लगे। पुराने घर में कुमुदिनी का एक सजीव वायुमण्डल था। चारो ओर फूल-फुलवारी, अनाज के खेत, गाय का थान, घर के आदमी, नौकर-चाकर सभी कुछ अपने थे। उपवन में वह फूल चुनती, डालियाँ भरती, नमक मिर्च धनिया पुदीने के साथ कच्चे बेर मिलाकर चटनी बनाती। बैशाख-जेठ की आँधी में आमों के बगीचे में आम बिनती, सारांश यह कि वह पूर्ण स्वतन्त्र थी। स्वच्छन्द थी।

वहाँ तिल के लड्डू कूटकर तैयार करते समय स्त्रियों का जो शोरगुल होता था, उसमें उसका भी हिस्सा था। काई की हरी चहारदीवारी से घिरा हुआ, घनी छाया से शीतल तालाब जिसके पास वह प्रतिदिन कोयल, पपीहा और बुलबुल के राग सुना करती थी। नित्य तालाब में तैरती। लाल फूल चुनती, घाट पर बैठकर सुन्दर सुखद कल्पनाओं के महल तैयार करती और अकेले बैठकर ऊनी गुलूबन्द बुनती। हर वर्ष और ऋतु में प्रकृति परिवर्तनों के साथ-साथ मानव स्वभाव भी बदलता रहता है। तीज से लेकर होली और वसन्त तक न जाने कितने उत्सव आते हैं। मनुष्य और प्रकृति दोनों ने मिलकर पूरे वर्ष को मानो भाँति-भाँति के चित्रों से सजा दिया है। यह बात नहीं कि सभी सुन्दर अथवा सुखकर हैं। घर-गृहस्थी में मालकिन की तरफदारी, लड़कों की तकरार, अपने बच्चों का पक्षपात आदि बातों पर भीतर ही भीतर ईर्ष्या या शोरगुल के साथ अभियोग और कानाफूसी में पर निन्दा या मुक्तकण्ठ से अपवाद घोषणा इन सब की काफी बहुतायत थी और सब से अधिक नित्य के काम-काज के सिलसिले में पीठ पीछे एक घृणा मिश्रित उद्वेग छिपा था। घर वाले न जाने क्या कर चलें, उनके आराम में कौन सी भयङ्कर दुर्घटना विघ्न उपस्थित करे। यदि झगड़ा शुरू हो गया तो फिर शान्ति न मिलेगी। माँ रोती है, लड़की के मुँह सूख

जाते हैं। सारांश यह कि दुःख सुख में गृहस्थी की लम्बी यात्रा सदैव टकराती रहती है।

इन परिस्थितियों से निकलकर कुमुदिनी कलकत्ते इस प्रकार गई जैसे एक हिलोरे मारता हुआ समुद्र। किन्तु सागर में प्यास बुझाने के लिए एक बूँद पानी कहाँ! स्वदेश और वहाँ के वायु-मंडल से वह परिचित थी। गाँव के निकट कहीं घना जङ्गल था, कहीं रेतीला मैदान, कहीं नदी के पानी का बहाव, मन्दिर की चोटियाँ और विस्तृत सूना मैदान। झाऊ के झाड़ियों के झुण्ड, नदी के किनारे की पगडण्डी—इन सब में विभिन्न रङ्गीनियों और मनोरञ्जनों ने घेरा डालकर आकाश को एक विशेष सौंदर्य प्रदान किया था। यह था कुमुदिनी का अपना संसार। सूर्य का प्रकाश उसी एक विशेष ढङ्ग से आलोकित था। तालाबों में, खेत में बाँस की नर्म और कोमल पत्तियों में, हरियाली में और रेत पर; सब के साथ उस प्रकाश ने पूर्व परिचय प्राप्त कर लिया था। कलकत्ते के समस्त अनदेखे मकानों को रोशनी अब उसे किसी अपरिचित व्यक्ति की भाँति कनखियों से देखती है।

विप्रदास कुमुदिनी को आराम कुर्सी के पास बुलाकर कहते—'क्यों कुमुद! जी नहीं लगता?'

कुमुदिनी हँसकर कहती—'भैया, जी तो लगता है।'

'चलोगी बहिन चिड़ियाघर देखने?'

'हाँ, चलूँगी।'

'यह बात उसने असाधारण उत्साह से कही कि विप्रदास यदि पुरुष न होता तो समझ लेते कि उसकी यह बात स्वाभाविक नहीं। चिड़ियाघर न जाना पड़े तो उसकी जान में जान आ जाय। भीड़ में निकलने की आदत न होने के कारण उसे बड़ी घृणा थी। हाथ-पाँव फूल जाते। आँख उठाकर अच्छी तरह देख भी न सकती थी।

विप्रदास ने उसे शतरञ्ज खेलना सिखाया। वह स्वयं अनुभवी खिलाड़ी थे। कुमुद के खेल से उन्हें बड़ा आनन्द आता। अन्त में बराबर खेलते रहने से कुमुद इतना अच्छा खेलने लगी कि विप्रदास को

अब उसके साथ होशियारी से खेलना पड़ता। कलकत्ते में कुमुद के बराबर की कोई सहेली न होने के कारण दोनों बहन-भाई जैसे भाई-भाई की भाँति हो गये हैं। संस्कृत-साहित्य से विप्रदास को अत्यधिक प्रेम है। कुमुद ने मन लगाकर उनसे संस्कृत पढ़ी। जब से भाई उसने कुमार-सम्भव' पढ़ा वह पूजा में शिवजी को देखने लगी। उसी महा-तपस्वी को जो तपस्विनी पार्वती की तपस्या का देवता था, कुमुदिनी के ध्यान में उसके भावी पति पवित्रता की दैव्यज्योति के रूप में आलोकित होकर दिखाई पड़ने लगे।

विप्रदास को फोटोग्राफी का बड़ा शौक था, कुमुद ने यह भी सीख लिया। उनमें से यदि एक फोटो उतारता तो दूसरा तैयार करता। बन्दूक चलाने में विप्रदास पूर्ण दक्ष थे। किसी उत्सव में जब अपने घर जाते तो पिछवाड़े के तालाब में नारियल तथा अखरोट आदि बहाकरों उस पर निशाना लगाते। वे कुमुद से कहते—'आओ न कुमुद! देख तो सही, जरा कोशिश करके…।'

जिस बात में भी उसके भाई की दिलचस्पी होती उसमें कुमुद बड़े शौक से हिस्सा लेती। भाई से सीख कर शतरंज का खेल इतना अच्छा खेलने लगी कि अन्त में विप्रदास को कहना ही पड़ा कि मैं तुमसे जीत नहीं सकता।

इस प्रकार बचपन से ही जिस भाई से वह असाधारण प्रेम करती आई थी, कलकत्ते में आकर उसे ही अधिक निकट पाया। कलकत्ते आना लाभदायक रहा, कुमुदिनी स्वभावतः एकान्त को पसन्द करती थी। पार्वती की भाँति वह किसी मानसरोवर के किनारे काल्पनिक तपोवन में रहती। उसके लिए आवश्यक है शान्ति की, एकान्त की और इसी के साथ ही एक ऐसी आत्मा की, जिसके साथ वह प्रेम कर सके, पास-पड़ोस के घराने से दूर रहने के कारण पड़ोस की स्त्रियाँ कुमुदिनी को बिलकुल पसन्द न करतीं। वे या तो उसे अभिमानिनी समझतीं या विरक्त। इसी कारण एक जगह रहने से भी सहेलियों के साथ कुमुदिनी की अधिक घनिष्टता न हो सकी।

पिता के जीवन में विप्रदास का विवाह करीब-करीब तय हो गया था। किन्तु वधू विवाह से दो दिन पहले बीमार होकर मर गई। उस समय ज्योतिषियों ने विप्रदास की कुण्डली देखकर बताया था कि विवाह देर में होने से अच्छा होगा। अतएव विवाह स्थगित हो गया। इसी बीच पिता की मृत्यु हो गई। विप्रदास के घर में उसके बाद विवाह की बात छेड़ने का उपयुक्त समय न आया। सगाई करनेवालों ने बहुत अधिक दहेज दिलाने की आशा दिखाई किन्तु परिणाम उलटा निकला और लड़की वालों को काँपते हुए हाथों से हुक्के को दीवार के सहारे खड़ा करके चुपके से अपने घर की राह लेनी पड़ी।

नवाँ परिच्छेद

सुबोध का पत्र पहले विलायत से बराबर आया करता था। अब कुछ देर और नागा होने लगा। कुमुदिनी डाक के लिए काफी प्रतीक्षा करती। जब नौकर ने इस बार चिट्ठी उसके हाथ में दी तो विप्रदास शीशे के सामने खड़े दाढ़ी बना रहे थे। कुमुद दौड़कर उसके पास जाकर बोली—'भैया! छोटे भैया की चिट्ठी आई है।'

दाढ़ी बना लेने के बाद आराम कुर्सी पर बैठकर विप्रदास ने कुछ झिझककर चिट्ठी खोली। पढ़ने के बाद चिट्ठी को दोनों हथेलियों के बीच रखकर मसल दिया। शायद उन्हें कोई गहरा दुःख पहुँचा।

कुमुदिनी का हृदय बदल गया। उसने पूछा—'छोटे भाई कुशल से तो हैं?'

'हाँ, वह अच्छी तरह हैं।'

'चिट्ठी में क्या लिखा है, बता दो भैया!'

'वही पढ़ने-लिखने की बात।'

कुछ दिन से विप्रदास कुमुदिनी को सुबोध की चिट्ठी नहीं दिखाते। थोड़ा सा पढ़कर सुना देते। किन्तु इस बार वह भी नहीं सुनाई।

कुमुदिनी को चिट्ठी माँगने का साहस न हुआ। उसका हृदय धड़कने लगा।

सुबोध पहले पहल कायदे से खर्च करता था। घर की तङ्गी का सदैव ध्यान रखता। किन्तु समय के साथ-साथ घर की आर्थिक दशा का खयाल छाया की भाँति उसके मस्तिष्क से अस्पष्ट होने लगा। खर्च बहुत बढ़ रहा है। कहता है उच्च ढङ्ग से रहे बिना वहाँ के वायु-मण्डल में गुजर नहीं हो सकता और यदि ऐसा न किया जाय तो विलायत आना ही व्यर्थ रहता है। विप्रदास को दो-एक बार लाचार होकर आवश्यकता से अधिक रुपये भेजने पड़े और वह भी तार-द्वारा। इस बार लिखकर आया है कि डेढ़ सौ पौंड का जरूरी काम है।

विप्रदास ने माथे पर हाथ रखकर कहा—'कहाँ से लाऊँ रुपया। खून पानी एक करके कुमुदिनी के विवाह के लिए रुपया जमा कर रहा हूँ। अब क्या उन्हीं रुपयों में हाथ डालना पड़ेगा। सुबोध के बैरिस्टर होने से क्या लाभ! यदि कुमुद का भविष्य खराब करके मूल्य चुकाना पड़े।'

उस दिन विप्रदास रात के समय बरामदे में टहल रहे थे। उन्हें पता नहीं कि कुमुदिनी की आँख भी नहीं लगी। जब कुमुद से सहन न हो सका तो वह दौड़कर विप्रदास के पास आई और उनका हाथ पकड़कर कहने लगी—'सच-सच बताओ भैया! छोटे भाई को क्या हुआ? तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ मुझसे न छिपाओ भैया!'

विप्रदास ने सोचा कि बात को छिपाने से कुमुदिनी का सन्देह और भी बढ़ेगा, अतएव कुछ रुककर बोले—'सुबोध ने रुपये मँगवाये हैं मुझमें उसकी माँग की पूर्ति करने की शक्ति नहीं।'

विप्रदास का हाथ थामकर कुमुदिनी ने कहा—'भैया, एक बात कहती हूँ, बुरा तो न मानोगे, बोलो?'

'बुरा मानने की बात होगी तो बुरा कैसे न मानूँगा।'

'नहीं भैया, हँसी की बात नहीं, मेरी बात सुनो। माँ के गहने तो

मेरे लिए हैं, उन्हें कहीं ···।'

'चुप-चुप! तेरे गहनों को भला हम लोग हाथ लगा सकते हैं!'

'मैं तो लगा सकती हूँ।'

'नहीं, तू भी नहीं लगा सकती। रहने दे ये बातें। अब जाकर सो जा।'

कौओं की काँव-काँव और मैले की गाड़ियों की खड़खड़ाहट के साथ साथ कलकत्ते की सुबह का प्रकाश फैला। काफी दूर, कभी जहाजों और कभी तेल की मिलों की सीटी बज रही है। मकान के सामने सड़क पर आदमी कन्धे पर सीढ़ी बाल्टी हाथ में लटकाये दीवारों पर पोस्टर चिपकाता चला जाता है। बैलगाड़ी के दोनों बैल बलिष्ठ हाथों की मार से गाड़ी लेकर भागे जा रहे हैं। नल पर पहले पानी भरने की तकरार में एक कहारिन और ब्राह्मण में तू तू मैं-मैं हो रही है। विप्रदास बरामदे में बैठे हैं, हाथ में हुक्के की नाल है और सामने ताजा अखबार पड़ा है।

कुमुदिनी ने आकर कहा—'भैया, नहीं मत करो।'

'क्या तुम मेरे विचारों की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करोगी? क्या तुम्हारे राज्य में रात को दिन और दिन को रात कहना पड़ेगा?'

'नहीं, सुनो तो सही, मेरे गहनों से अपनी चिन्ता दूर करो।'

'इसलिए तो तेरा नाम मैंने लक्ष्मी रक्खा है। तेरे गहनों से मेरी चिन्ता दूर होगी, तूने कैसे समझ लिया?'

'यह नहीं जानती, पर तुम्हारी चिन्ता मुझसे देखी नहीं जाती।'

'चिन्ता ही से चिन्ता दूर होती है बहन! इसे धोखे से रोकने का प्रयास करने से परिणाम उल्टा होता है। थोड़ा धैर्य धरो। मैं कोई उपाय करूँगा।'

विप्रदास ने पत्र के उत्तर में लिखा—'रुपये भेजने में कुमुदिनी के दहेज पर हाथ डालना पड़ेगा। यह बिलकुल असम्भव है।'

जैसी सम्भावना थी उत्तर आ गया, सुबोध ने लिखा—'कुमुदिनी

के दहेज के रुपये उसे नहीं चाहिए। जायदाद से मेरा हिस्सा बेचकर रुपये भेज दीजिए। साथ ही मुख्तारनामा भी भेज दिया।

इस पत्र को पढ़कर विप्रदास की छाती पर साँप लोट गया। इतने अक्खड़पन से सुबोध ने कैसे पत्र लिख दिया। उसी समय बड़े दीवान जी को बुलाकर पूछा—'भूषणराय करीमपुर की ताल्लुकेदारी को पट्टे पर लेना चाहता था न ? कितना देना चाहता है ?'

दीवान जी ने कहा—'बीस हजार तक दे सकता है।'

'उसको बुला भेजो, मैं स्वयं बातचीत करना चाहता हूँ।'

विप्रदास अपने घराने के बड़े लड़के हैं। उनके पैदा होते ही उनके बाबा उन्हें अलग से यह ताल्लुका दे गये हैं। भूषणराय एक बड़े भारी महाजन हैं, उनके यहाँ लाखों की तिजारत होती है। उनकी जन्म-भूमि करीम हट्टी है और इसी गाँव को पट्टा लेने की वे कोशिश में हैं। बीच-बीच में आर्थिक-सङ्कट के कारण विप्रदास राजी भी हो जाते। किन्तु प्रजा रो देती और कहती—उसको हम लोग किसी भी प्रकार जमींदार नहीं बनायेंगे। इसी कारण प्रस्ताव रद्द हो जाया करता। विप्रदास ने अपने मन को इस प्रकार दृढ़प्रतिज्ञ बना लिया। वे पूर्णरूप से यह जानते थे कि सुबोध के रुपयों की माँग का अभी अन्त नहीं हुआ है। वे मन ही मन विचारने लगे—मेरे ताल्लुके की सलामी का रुपया सुबोध के लिए है, आगे जो होगा देखा जायगा।

दीवान में इतना साहस न था कि वह विप्रदास का जवाब दे सकता अतएव चुपके से उसने जाकर कुमुदिनी से कहा—'जीजी, तुम्हारी बात बड़े लोग मानते हैं उन्हें मना कर दो क्योंकि यह बेइन्साफी हो रही है।'

घर के सभी प्राणी विप्रदास को जी-जान से चाहते हैं। बड़े बाबू भला क्यों अपनी जायदाद बरबाद करें यह बात सबको बुरी लगती है।

काफी देर से विप्रदास करीमपुर के ताल्लुकेदारी के कागज उलट-पुलट रहे हैं, अभी तक नहाये नहीं। कुमुदिनी बार-बार उन्हें बुला भेजती है, अन्त में सूखा-सा चेहरा लेकर वे अन्दर पहुँचे।

नहाने-धोने के बाद जिस समय विप्रदास हुक्के की नाल मुँह में लिये चारपाई पर पाँव फैलाकर तकिये के सहारे बैठे हुए थे तो कुमुदिनी उनके सिरहाने के पास बैठकर बालों में अँगुलियाँ फेरती हुई धीरे से बोली—'भैया, तुम अपने ताल्लुके को पट्टे पर नहीं दे सकोगे?'

'तेरे सिर पर क्या सिराजुद्दौला का भूत सवार हो गया है, हर मामले में दखल?'

'न भैया, मामले को दबाइए नहीं।'

विप्रदास से अब न रहा गया। अकड़कर बैठ गये। कुमुदिनी को सिरहाने से अब हटाकर सामने बिठाया। गला साफ करके जरा खाँसते हुए बोले—'सुबोध ने क्या लिखा है, जानती है? देख!'

इतना कहकर कुर्ते की जेब से सुबोध की चिट्ठी निकालकर उसके हाथ पर रख दी। कुमुद ने सारी चिट्ठी पढ़कर दोनों हाथ मुँह पर रखकर कहा—'उफ! छोटे भैया से ऐसी चिट्ठी लिखी कैसे गई होगी!'

विप्रदास बोले—'जब आज वह अपनी और मेरी जायदाद में फर्क देख रहा है तो क्या मैं अपनी जायदाद अलग रख सकता हूँ! आज उसके पिता नहीं हैं। सङ्कट के समय मैं मदद न करूँगा तो और कौन करेगा!'

कुमुदिनी यह सुनकर चुप हो गई। उसके नेत्र सजल हो गये। विप्रदास ने फिर तकिए का सहारा लेकर आँखें बन्द कर लीं।

काफी देर तक विप्रदास के पाँव पर हाथ फेरती हुई अन्त में कुमुदिनी बोली—'मेरा सामान अभी तक तो मेरा ही है। गहने मौजूद होते हुए तुम क्यों......?'

विप्रदास फिर चौंककर बोले—'कुमुद, तू कितनी नासमझ है! तेरे गहने बेचकर यदि सुबोध विलायत में थियेटर देखता फिरे तो क्या मैं उसे क्षमा कर सकूँगा। वह स्वयं क्या मुँह दिखाने योग्य रहेगा! तू उसे इतना कड़ा दण्ड क्यों देना चाहती है?'

यह सुनकर कुमुदिनी चुप हो गई। कोई उत्तर न बन पड़ा। कई

बार जैसे पहले सोचा करती थी उसी प्रकार सोचने लगी—क्या कोई असम्भव बात सम्भव नहीं हो सकती। कोई ग्रह, कोई नक्षत्र सारे सङ्कट दूर नहीं कर सकता। यद्यपि शुभ लक्षण देखने में आये हैं, कुछ दिनों से बार-बार बाईं आँख फड़क रही है। इससे पहले भी कई बार बाईं आँख फड़की है। परन्तु इस पर उसे कुछ भी सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इस बार का शुभ लक्षण आप ही उसकी समझ में आ गया। जैसे उसकी बात उसे रखनी ही पड़ेगी। कहीं शुभ लक्षण में कोई बाधा न पड़ जाय।

दसवाँ परिच्छेद

आकाश पर बादल छाये हैं। विप्रदास का जी ठीक नहीं। चादर ओढ़े लेटे हुए अखबार पढ़ रहे हैं। कुमुदिनी की प्यारी बिल्ली चादर के एक फालतू भाग पर सिकुड़कर लेटी सो रही है। विप्रदास का कुत्ता लाचारीवश उसको अपनी अपेक्षा अच्छी दशा में देखकर भी मालिक के पैरों के पास सोता हुआ स्वप्न में कभी-कभी गुर्रा उठता है।

इतने में एक घटकराज आ पहुँचे।

'नमस्कार!'

'कौन हो तुम?'

'जी, बड़े मालिक मुझे खूब पहचानते थे, तब आप छोटे थे। मेरा नाम नीलमणि घटक है। मैं स्वर्गीय गङ्गामणि घटक का पुत्र हूँ!'

'क्या काम है?'

'अच्छा वर मिल रहा है। आप ही के घर के योग्य है।'

विप्रदास सँभलकर बैठ गये। घटक ने राजा बहादुर मधुसूदन घोषाल का नाम लिया।

विप्रदास ने चकित होकर पूछा—'उनके कोई पुत्र है क्या?'

घटक ने दाँतों तले जीभ दबाकर कहा—'नहीं तो, अभी उन्होंने विवाह नहीं किया। बहुत बड़े धनवान हैं। काम-काज देखना छोड़

दिया है। अब गृहस्थी की ओर ध्यान दिया है।'

विप्रदास कुछ देर चुप बैठे हुक्का पीते रहे। फिर एकाएक बोले—'उनकी आयु के योग्य हमारे यहाँ कोई लड़की नहीं है।'

घटकराज ऐसी जल्दी छोड़नेवाले नहीं थे। वर के पास कितना धन और ऐश्वर्य है तथा गवर्नर के दरबार में उसका कितना सम्मान है, इन सब की व्याख्या करने लगे।

विप्रदास स्तब्ध बैठे रहे फिर कुछ बिगड़कर बोले—'अवस्था में मेल नहीं होगा।'

'सोच लीजिए। मैं दो चार दिन के बाद फिर आऊँगा।' विप्रदास ठण्डी साँस लेकर फिर लेट गये।

भाई के लिए गर्म चाय लेकर कुमुद स्वयं कमरे में आ रही थी। दरवाजे के बाहर एक अँगौछा लिपटी पुरानी भीगी हुई छतरी तथा कीचड़ से सने हुए जूते देखकर ठिठक गई। उनकी बातें उसने कुछ-कुछ सुन लीं। घटक कह रहा था—'राजा बहादुर इसी साल के अन्दर-अन्दर महाराज हो जायँगे। यह स्वयं लाट साहब ने कहा है। कारण इतने दिनों के बाद उन्हें चिन्ता हुई। महारानी का पद अब खाली नहीं रखा जा सकता। आपके पुरोहित किनू भट्टाचार्य मेरे नाते के साले लगते हैं। मैंने उनके पास कन्या की जन्मपत्री देखी है। लक्षण ठीक मिलते हैं। अब तक मैंने नगर की सारी कन्याओं की जन्मपत्री देख डाली। किसी के लक्षण ऐसे नहीं मिलते। मैं आपसे कहे देता हूँ कि इस सम्बन्ध को करने में न चूकिए।'

ठीक उसी समय कुमुदिनी की बाईं आँख फड़क उठी। शुभ लक्षण का कैसा अद्वितीय रहस्य है! किनू भट्टाचार्य ने कितनी ही बार उसका हाथ देखकर कहा था कि वह राजरानी बनेगी। हस्त-रेखाओं का यह प्रयत्न फल आज उसके सामने आप ही आप आ गया। ब्रह्मचारीजी अभी कुछ दिन हुए वार्षिक दक्षिणा वसूल करने कलकत्ते आये थे; उन्होंने कहा था, अब की असाढ़ मास से वृष राशि का राज्य-सम्मान है।

की चनित अर्थ लाभ है, शत्रु का नाश होगा। खराबी में पत्नी पीड़ा है। यहाँ तक कि पत्नी वियोग तक हो सकता है। विप्रदास की वृष राशि है! बीच-बीच में शारीरिक कष्ट है। उसका भी प्रमाण मिल गया। कल रात से जुकाम के स्पष्ट लक्षण हैं। आषाढ़ महीना भी आ गया। पत्नी की पीड़ा और मृत्यु की बातों पर विचार करने की अभी आवश्यकता नहीं, क्योंकि समय अच्छा है।

कुमुदिनी भैया के पास बैठ कर बोली—'भैया, क्या सिर में दर्द हो रहा है?'

'नहीं तो।'

चाय ठण्डी तो नहीं हो गई, तुम्हारे कमरे में आदमी को देखकर मैं न आ सकी।'

विप्रदास ने कुमुदिनी के चेहरे को देखकर लम्बी साँस ली। भाग्य की कठोरता उस समय अधिक असह्य हो जाती है, जब भाग्य सुनहरा रथ लाता है किन्तु जिसके पहिये बेकार होते हैं। भाई के चेहरे पर चिन्ता की रेखा देखकर बिलकुल चकित हो गई। भाग्य के लिखे पर भैया क्यों इतना सन्देह करते हैं। इस बात को समझना कुमुदिनी की समझ के बाहर था कि विवाह के कार्य में अपनी पसन्द की कोई चीज हो सकती है। बचपन से एक-एक करके उसने अपनी चार बहिनों के विवाह देखे। उच्च घरानों में विवाह हुए। कुलीनता के अतिरिक्त और कोई पसन्द की बात होती भी क्या होगी। बाल-बच्चों को लेकर फिर भी वे गृहस्थी करतीं। सोचती तक नहीं कि इसके अतिरिक्त कुछ और हो सकता था। पुत्र कैसा भी हो पुत्र ही रहता है। यही हाल पति का है। विधाता ने कुछ दूकान तो खोली नहीं कि छाँटकर अपनी पसन्द का पति किया जा सके। भाग्य पर किसी का वश नहीं चलता।

इतने दिन बाद कुमुदिनी के दुर्भाग्य का लम्बा-चौड़ा मैदान पार करके राजकुमार आया किन्तु बदले हुए रूप में। कुमुदिनी रथ के पहियों का शब्द अपने हृदय की धड़कन में सुन रही थी, वह चाहती थी कि वस्तु-

स्थिति से परिचित हो जाय।

तुरन्त अपने कमरे में जाकर उसने पत्रा उलटकर देखा—आज उसकी कामना-पूर्ति का दिन था। घर में जितने ब्राह्मण थे, उन्हें शाम को बुलाकर फल खिलाये और जहाँ तक हो सकता था, दक्षिणा भी दी। सब ने आशीर्वाद भी दिया—'राजरानी बनकर रहो। धन और पुत्र से फलो-फूलो।'

विप्रदास की बैठक में दूसरी बार घटकराज पधारे। वृद्ध ने चुटकी बजाकर 'शिव-शिव' करते हुए उच्च स्वर में जँभाई ली। इस बार विप्रदास को साहस न हुआ कि वे एकाएक बात को इनकार करके खत्म कर दें। सोचा, इतनी बड़ी जिम्मेदारी कैसे लूँ? किस प्रकार विश्वास करूँ कि कुमुद के लिए यह प्रस्ताव सबसे अच्छा नहीं? 'परसों पक्का जवाब देंगे।' कहकर घटकराज को बिदा किया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

बादलों के घिर आने तथा वर्षा के पानी के कारण सन्ध्या का अन्धकार बढ़ता जा रहा है। कुमुदिनी के पास कुछ अधिक सामान नहीं है, एक छोटी खाट है, चम्पे के रङ्ग का एक अँगाछा और दो चुनी हुई साड़ियाँ अलगनी पर टँगी हुई हैं। उसके पहिनने के कपड़े कटहल की बनी हुई सन्दूक में बन्द हैं। चारपाई के नीचे टीन के हरे रङ्ग के डिब्बे में पान लगाने का मसाला और एक डिब्बे में जूड़ा बाँधने का सामान रखा है। दीवार में बनी हुई लकड़ी की आलमारी में कुछ पुस्तकें, कलम-दावात, चिट्ठी लिखने के कागज, माँ के हाथ के ऊन के बुने हुए बाबाजी के स्लीपर रक्खे हुए हैं। चारपाई के सिरहाने जुगुल-जोड़ी राधा-कृष्ण की तस्वीर टँगी है। कोनों ही में दीवार से सटाकर एक 'इसराज' रखा हुआ है।

कुमुदिनी ने अभी दिया तक न जलाया है। वह लकड़ी के सन्दूक पर बैठी हुई खिड़की के बाहर की ओर देख रही है। ईंट के कलेवर

वाला कलकत्ता सामने दीख रहा है जो प्राचीनकाल के कवच को धारण किये भीमकाय जन्तु सा लगता है और साथ ही वर्षा की जलधारा में धुँधला-सा प्रतीत होता है। कहीं-कहीं बीच में उसके शरीर पर आलोक-शला की बूँदें हैं। कुमुदिनी का मन अपने भाग में अङ्कित भावीलोक में है। वहाँ के गृह, मनुष्य तथा महल इत्यादि सभी अपने नमूने पर बने हैं और उन्हीं के मध्य में उसने सती लक्ष्मी के रूप में अपनी प्रतिष्ठा की है। कितनी भक्ति, कितनी पूजा तथा कितनी सेवा है! उसकी माता से पुण्यचरित्र में एक स्थान पर ऐसी त्रुटि हुई है, जिस प्रकार की त्रुटि शायद कुमुद कभी भी न कर सकेगी, क्योंकि वह अपने पति के अपराध पर शायद कुछ समय के लिए अपना धैर्य छोड़ बैठी थीं।

विप्रदास के पैरों की आहट सुन कुमुदिनी चौंक उठी और भैया को देखकर बोली—'दीया जला दूँ भैया?'

'नहीं कुमू, जरूरत नहीं।' कहते हुए कुमुदिनी के बगल से विप्रदास सन्दूक पर जा बैठे। कुमुदिनी नीचे उतर अति शीघ्र जमीन पर बैठे भैया के पैरों पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी।

विप्रदास ने अति नम्र स्वर में कहा—'बैठक में कुछ व्यक्ति आये हुए थे इस कारण मैंने तुझे वहाँ नहीं बुलाया। अब तक तू अकेली बैठी थी?'

कुमुदिनी ने शरमाते हुए कहा—'नहीं भैया! क्षेमा बुआ बहुत देर तक बैठी रहीं। साथ ही बात को घुमा देने के लिए कहा—'बैठक में कौन आये थे भैया?'

'यही तो मैं तुझसे कहने आया हूँ। इस वर्ष तू जेठ के महीने में अठारह वर्ष की पूरी होकर उन्नीसवें वर्ष में पड़ी है, क्यों?'

कुमुदिनी ने कहा—'हाँ भैया! इसमें कुछ दोष है?'

'दोष की कोई बात नहीं। आज नीलमणि घटक आया था। शर्म करने की कोई बात नहीं बहन, बात ऐसी है कि बाबूजी जब उपस्थित थे उस वक्त तेरी आयु दस वर्ष की थी, उस समय तेरा ब्याह पक्का हो गया

था, यदि उस समय हो गया होता तो राय की कोई परवाह नहीं थी, किन्तु इस समय तो मुझसे ऐसा नहीं हो सका। राजा मधुसूदन घोषाल का नाम तो तुमने सुना ही होगा। वे अपने वंश में अच्छे कुल के हैं किन्तु आयु में मुझमें और उनमें कुछ अन्तर जरूर ही है। मैं तो राजा नहीं हो सका हूँ, किन्तु तेरे मुँह से कुछ सुनना चाहता हूँ, फिर कहूँगा। शरम मत करना कुमुद!'

'नहीं, शरमाऊँगी नहीं।' कह कर कुमुदिनी कुछ देर तक मौन रही, तत्पश्चात् बोली—'जिनकी बात तुम कह रहे हो, उनके साथ मेरा सम्बन्ध तो ठीक हो ही चुका।' यह उन घटकराज के बात की प्रतिध्वनि थी—ज्ञात नहीं, कब यह बात उसके हृदय-पटल में जमकर बैठ गई है।

विप्रदास बड़े अचम्भे में आ गये और बोले—'कैसे कुमू, ठीक हो गया?'

कुमुद चुपचाप बैठी रही।

विप्रदास ने कुमुदिनी के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—'लड़कपन मत कर कुमू!'

कुमुदिनी ने कहा—'तुम्हें ज्ञात नहीं है भैया! मैं जरा सा भी लड़कपन नहीं कर रही हूँ।'

भैया पर उसका असीम प्रेम है, किन्तु भैया तो दैव नहीं मानते। कुमुदिनी यह भली प्रकार जानती है कि यहीं पर भैया की दृष्टि कमजोर है।

विप्रदास ने कहा—'उन्हें तो मैंने देखा भी नहीं?'

'न सही, मैं तो ठीक जानती ही हूँ।'

इस स्थान पर भाई-बहन में अत्यन्त मत-भेद है, इसे विप्रदास अच्छी तरह जानते हैं। कुमुदिनी के हृदय के इस अन्धकार महल में—उस पर भाई का कुछ भी अधिकार नहीं। किन्तु फिर भी विप्रदास ने कह ही डाला—'देख कुमुद! जीवन भर की बात को शीघ्रतापूर्वक किसी

काल्पनिक प्रतिज्ञा-रूप में न कह बैठना।'

कुमुदिनी ने विह्वल होते हुए उत्तर दिया—'कल्पना नहीं, यह कल्पना नहीं हो सकती है भैया! मैं तुम्हारे पाँव छूकर कहती हूँ, मैं और किसी अन्य से विवाह नहीं कर सकती।'

विप्रदास चौंक उठे। जहाँ कार्य के उचित और अनुचित होने का विचार नहीं, वहाँ तर्क कैसे चल सकता है! विप्रदास ने समझ लिया किसी आन्तरिक प्रेरणा ने कुमुद के हृदय पर अधिकार जमा लिया है। बात सच भी है। आज प्रातःकाल देवता के नाम पर कुमुदिनी ने मन में कहा था—इनसे गिनती के दो-दो फूल अलग रखने के बाद जो फूल बच रहेगा, उसका रङ्ग यदि देवता की भाँति नीला हुआ तो मैं समझ लूँगी कि मेरी पसन्द ही भगवान् की इच्छा है और सब के अन्त में जो फूल बचा वह था नील अपराजिता—कोयल।

पास ही मुहल्ले के मकान में सन्ध्या की आरती का घण्टा बज उठा। कुमुदिनी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। विप्रदास काफी देर तक बैठे रहे। बिजली चमक रही थी और मूसलाधार वर्षा हो रही थी।

बारहवाँ परिच्छेद

विप्रदास ने फिर अनेक बार समझाने का प्रयत्न किया। वह कुछ जवाब न देकर सिर झुकाये आँचल खोंटती रहती। विवाह पक्का हो गया केवल एक मामले में दोनों ओर से बातचीत चल रही है कि विवाह कहाँ से हो! विप्रदास की इच्छा थी कि कलकत्ते में हो पर मधुसूदन की हठ है कि नूरनगर में हो। अन्त में लड़के वाले की बात मानी गई।

विवाह की तैयारियों के लिये कुछ दिन पहले ही नूरनगर आना पड़ा। जेठ-बैसाख की कड़ी धूप के बाद असाढ़ की वर्षा होने पर जिस तरह देखते ही देखते जमीन हरी हो जाती है, उसी प्रकार कुमुदिनी के आन्तरिक और बाह्य जीवन पर तुरन्त एक नया रङ्ग चढ़ गया। पति के साथ मिलने की इच्छा ने उसे रात-दिन पुलकित कर रखा है। जाड़े की सुहा-

वनी रोशनी उसकी आँखों से बातचीत करने लगी जो अपनी मूक भाषा में उससे अनन्त-काल की बात कहती। शयनागार के सामने वाले बरामदे में कुमुदिनी चबेना बिखेर देती है जिसे चिड़ियाँ आकर चुगती हैं; रोटी का टुकड़ा रखती है जिसे गिलहरी चञ्चल दृष्टि से देख अति शीघ्र दौड़ आती और पूँछ के बल खड़ी हो जाती है, सामने के पैरों से रोटी उठा कुतर-कुतर कर खाती है। कुमुदिनी ओट में बैठे बड़े आनन्द-पूर्वक उसे देखा करती है। संसार के लिए उसका हृदय आज दक्षिणा से भरा पड़ा है। सायंकाल स्नान करते वक्त वह पछे के तालाब में गले तक डूबकर चुपचाप बैठी रहती है। तालाब का पानी मानो उसके समस्त अङ्गों से बातें करता है। पीछे के नीबू के पेड़ की डालियों पर आकर सायंकाल के सूरज की तिरछी रोशनी, घने काले रङ्ग के जल पर, कसौटी पर—स्वर्णिम रेखाओं के समान झिलमिलाती रहती है। कुमुद उन्हें ध्यानपूर्वक देखती रहती है उस प्रकार और छाया में उसके समग्र शरीर पर से एक आनन्दोल्लसित कँपकँपी आ जाती है। दोपहर को छत के ऊपर की छोटी-सी कोठरी में वह जाकर बैठती है। बगल के जामुन के पेड़ पर से पिंडु कथी आवाज उसके कान में पड़ती है। उसकी जवानी के मन्दिर में आज जिस देवता का वरण हो रहा है उसके भावमय रस और रूप में राधिका-कृष्ण के युगल रूप का माधुर्य मिल रहा है। हाथ में 'इसराज' लिये छत पर बैठी वह मन्द-स्वर में अपने भैया के बताये हुए भूपाली गाने का स्वर मिलाती रहती है—

आज मोर घरवा में आइल पियरवा।
रोम-रोम हर खिला……………।

कुमुदिनी रात को बिछौने पर बैठी प्रणाम करती है। प्रातःकाल उठने के साथ ही साथ फिर प्रणाम करती है। वह प्रणाम किसे करती है, कहा नहीं जा सकता—वह तो एक निरवलम्ब भक्ति की स्वतः निकल हुई एक उच्छ्वास है।

किन्तु काल्पनिक प्रतिमा के मन्दिर का द्वार सदैव बन्द भी तो नहीं

रहता। कानाफूसी की गर्म साँस और तेजी ने जब उस मूर्ति की मनोहर सुन्दरता पर धक्का पहुँचाया तो भला देवता का रूप कैसे टिक सकता था? यह भक्त के लिए बड़े दुःख का समय था।

एक दिन कुमुदिनी के सामने ही तेलिनीपाड़े की तिनकौड़िन बुढ़िया कह बैठी—'मेरी कुमुदिनी की क्या ही तकदीर है, कैसा राजा मिल गया है! अरे! क्या मुझे रजबपुर के आनन्दी गुमाश्ते का पता नहीं, उसी का तो यह लड़का है मधुआ। जिस समय देश में अकाल पड़ा था इसने कहीं से चावल मँगा कर बेचे थे जिसकी कमाई अभी तक चलती आ रही है। उसकी माँ को तो हाथ से पका कर अन्तिम समय तक रोटी खानी पड़ी।'

और लड़की उसे घेर लेती और कहती—'दूल्हा को तू पहचानती है क्या?'

'उसकी माँ हमारे मुहल्ले की लड़की थी। चक्रवर्ती पुरोहितों में उसका मायका था। सच कहने में क्या बुराई है। अच्छे ब्राह्मणों के घर में तो उसका सम्बन्ध हो ही नहीं सकता था। पर लक्ष्मी जाति कुल थोड़े ही देखती है।'

यह पहले ही कहा जा चुका है कि कुमुदिनी का हृदय इस नये युग की रंगीनियों से कोरा था। जाति कुल की पवित्रता उसकी दृष्टि में बड़ा महत्व रखती थी। अपनी दृष्टि पर उसे सदैव क्रोध आता। घर से अचानक रोते हुए बाहर चली जाती। सब सहेलियाँ व्यंग्य करतीं—'ओफओह!' अभी से इतना दर्द है! यह तो पार्वती को भी मात कर देंगी!'

विप्रदास के हृदय पर नये युग का प्रभुत्व है, तथापि जाति-हीनता के विचार ने उनके मन पर अधिकार कर लिया है। इसी कारण अफवाहों को दबाने की बहुत चेष्टा की गई किन्तु जिस प्रकार फटे तकिए को दबाने से उसकी रुई और भी अधिक बाहर निकलती है, यही दशा उनकी भी थी।

पुराने किसानों में बूढ़ा दामोदर विश्वासी भी था, उससे मालूम

हुआ कि काफी समय पहले नूरनगर के पास सियाकुली ग्राम में घोष लोगों की जमींदारी थी, अब वह चटर्जी वंश के लोगों के कब्जे में है। मूर्तियों के तोड़नेवाले मामलों में किस प्रकार घोष-परिवार का विनाश हुआ, किस प्रकार प्रयत्न करके बड़े चटर्जी ने उन्हें देश और समाज से बाहर निकाल दिया, उसकी कथा सुनते हुए दामोदर का चेहरा श्रद्धा से चमक उठता था। घोष-परिवार किसी समय धन, कुल तथा प्रतिष्ठा में चटर्जियों के बराबर था, किन्तु विप्रदास के हृदय में यह भय समाया कि यह विवाह भी किसी पुराने खाते का कोई बकाया कर्जा न हो।

तेरहवाँ परिच्छेद

अगहन के महीने में विवाह है। लक्ष्मी-पूजा हो गई। उसके दो दिन बाद अचानक कनातें और तम्बू आदि लेकर घोष कम्पनी के इञ्जिनियरिङ्ग विभाग के ओवरसियर आ धमके। साथ में मजदूरों का झुण्ड था। आखिर माजरा क्या है? मालूम हुआ कि सियाकुली में घोष तालाब के किनारे तम्बू डालकर वह और बराती कुछ दिन पहले ही आकर ठहरेंगे।

यह कैसी विचित्र बात है! विप्रदास ने कहा—'जितनी संख्या में आना चाहें आयें। जितने दिन रहना चाहें रहें। हम सब प्रबन्ध कर देंगे। तम्बू डेरे की क्या आवश्यकता है? हमारा दूसरा मकान है, उसी को खाली कराये देते हैं।'

ओवरसियर ने कहा—'राजा बहादुर की आज्ञा है—तालाब के चारों ओर का सारा जङ्गल साफ करने को कहा है। आप जमींदार हैं, आपकी अनुमति चाहिए।'

विप्रदास के चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई, बोले—'यह काम क्या ठीक है? जङ्गल तो हम ही साफ करा सकते थे?'

ओवरसियर ने नम्र भाव से कहा—'राजा बहादुर के पूर्वज यहीं रहते थे इसलिए मन में आया कि स्वयं ही उसे साफ करा लें।'

बात कुछ अद्भुत नहीं थी, किन्तु मन में खटका पैदा हो गया। प्रजा कहने लगी कि यह हमारे मालिक पर धाक जमाने का प्रयत्न है। एकाएक लक्ष्मी आ गई है। दबाये नहीं दबती। उसे राग-रङ्ग और धूम-धाम मचाकर दिखाने के लिए यह लीला रची जा रही है। वह समय होता तो दुल्हा-दुलहिन को पालकी सहित वैतरनी पार करने में देर न लगती। छोटे मालिक होते तो सहन न करते। देख लिया जाता कि बाबू और तम्बू कहाँ से कहाँ चले जा रहे हैं।

प्रजा ने आकर विप्रदास से कहा—'उनके मुकाबले में हम पीछे नहीं रह सकते। जो खर्च होगा हम लोग मिलकर करेंगे।'

छः आने वाले हिस्से के मालिक गोलोक ने आकर कहा—'कुल का अपमान नहीं सहा जा सकता। एक वह समय था जब हमारे पूर्वजों ने घोषों की अक्ल ठिकाने लगा दी थी। आज वे हमारे इलाके में चढ़ाई करके, रुपये की शान दिखाने आये हैं। अरे, इसमें डरने की क्या बात है भाई साहब! जो कुछ भी खर्च लगे हम तो हैं ही। जायदाद का बटवारा हो चुका है, किन्तु वंश की मर्यादा का बटवारा तो नहीं हुआ।'

इतना कहकर गोपाल स्वयं कार्य-कर्ता बन बैठा।

विप्रदास कई दिन से कुमुदिनी के पास नहीं गये थे। उसे किस मुँह से देखेंगे! वर पक्ष की स्पर्धा की बात कुमुदिनी के सामने कोई नर्मी से कहे, इतनी दया या भद्रता तो समाज में है ही नहीं। उसके सामने तो और भी नमक-मिर्च लगाकर कहते। लड़कियों का भी उसी पर क्रोध था कि कुमुदिनी के कारण पुरुषों की बात हेठी हो रही है। राजरानी बनने चली है। बस देख ली रानी की डुलिया।

जाति-कुल की बात को कुमुदिनी ने अपनी शक्ति से ढक दिया था, किन्तु धन की बड़ाई करके श्वसुर कुल की तौहीनी करने की नीचता देख कर उसका हृदय ग्लानि से भर गया। अब वह लोगों की दृष्टि से बचती फिरती है, घोष-वंश की लज्जा तो आज उसी की लज्जा है। उसका दिल भैया के मुँह से कुछ सुनने को तड़प रहा है, किन्तु भैया

मिलते ही नहीं, भोजन करने के लिए भी वे नहीं आते।

विप्रदास एक दिन अन्तःपुर के बगीचे में भट्टी की जगह तजवीज करने गये। देखा तो पीछे के ताल के घाट पर कुमुदिनी नीचे की सीढ़ियों पर बैठी सिर झुकाये पानी की ओर देख रही है। भैया को देखकर वह चट से उठ गई। आने के साथ ही रुँधे कण्ठ से बोली—'भैया, कुछ समझ में नहीं आता।' यह कहकर आँचल से मुँह ढककर रोने लगी।

पीठ पर हाथ फेरते हुए भैया ने कहा—'लोगों की बात पर ध्यान मत दो बहन।'

'किन्तु वे लोग यह सब क्या कर रहे हैं! भला यह तो बतलाइए इससे आपकी इज्जत रह सकती है!'

'कुमुद! तू उनकी ओर जरा विचार करके तो देख। पुरखों की जन्मभूमि में आ रहे हैं, तनिक भी धूम-धाम नहीं मचायेंगे? इस बात को व्याह से अलग कर दे, फिर विचार करके देख।

कुमुदिनी चुप रही। अब विप्रदास से रहा न गया। वे जान पर खेल कर बोले—'यदि तेरे मन में कुछ सन्देह हो तो जल्दी बोल, व्याह अब भी रुक सकता है।'

तेजी से सिर हिलाते हुए कुमुदिनी ने कहा—'छिः! छिः! ऐसा भी कहीं होता है!'

अन्तर्यामी के सामने तो सत्य-ग्रन्थि लग चुकी है। अब जो बाकी है वह तो केवल बाहर की बात है।

विप्रदास का नये युग का मन निष्ठा से अधीर हो उठता है, उन्होंने कहा—'पक्षी विपक्षी की भलमनसाहत पर ही विवाह बन्धन सत्य हो सकता है। अच्छा से अच्छा बहुमूल्य इसराज की कोई कीमत नहीं, यदि बजानेवाले के हाथ ही न हुए।'

पुराणों में आया है कि जैसी सीता थी वैसे ही राम थे, जैसी पार्वती थी वैसे ही महादेव थे। आज के समय में बाबू लोगों में तो सज्जनता

और सभ्यता रही नहीं। इसीलिए तो एक तरफा बड़ाई का शोर मचाते हैं। तेल तो मिलता नहीं किन्तु बत्ती बलाने की चेष्टा में लगे रहते हैं।

कुमुदिनी से कहना व्यर्थ है। वह मन ही मन यह निश्चय कर बैठी है कि वे अच्छे हों या बुरे, मेरे जीवन-आधार हैं।

न केवल अविवाहित-जीवन बल्कि सतीधर्म का यही लक्ष्य है वह धर्म सुख दुःख से परे है। मधुसूदन नाम के व्यक्ति में दोष हो सकते हैं, किन्तु पतिदेव नाम में नहीं। अपने पतिदेव के व्यक्तित्व के उच्च भाव के सामने कुमुदिनी ने एकाग्रचित्त से अपने आपको अर्पण कर दिया।

चौदहवाँ परिच्छेद

घोष-तालाब के किनारे का जङ्गल इतना साफ हो गया कि अब उसका पहचानना भी कठिन है। भूमि बिलकुल समतल हो गई। बीच बीच में कहीं-कहीं सुर्खी की रङ्गीन सड़क है जिसके दोनों किनारों पर बत्तियों के खम्भे लगे हैं। तालाब की काई और कीचड़ सबको निकाल दिया गया है। घाट के पास दो छोटी-छोटी नौकाएँ बँधी हैं। एक पर लिखा है 'मधुमती' और दूसरी पर 'मधुकरी।' जिस तम्बू में राजा बहादुर स्वयं ठहरेंगे उसके सामने एक फ्रेम में पीले कपड़े पर लिखा है 'मधुचक्र' एक तम्बू अन्तःपुर का है जो तालाब के पानी तक चटाइयों से घिरा हुआ है। घाट पर नीम का पुराना वृक्ष है। उस पर एक तख्ता लगा हुआ है जिस पर लिखा हुआ है 'मधुसागर' कुछ थोड़ी सी जमीन पर भाँति-भाँति के फूलों के गमले रक्खे हैं। गेंदा, बेला, मौलसिरी, सूरजमुखी, गुलाब, चमेली इत्यादि-इत्यादि। लकड़ी के सन्दूकों में कई प्रकार के विलायती फूल उस स्थान की शोभा बढ़ा रहे हैं। बीच में एक छोटा-सा पक्का तालाब है, उसके पिछली ओर बीचोबीच एक लोहे

की नग्न स्त्री की मूर्ति है, जो मुँह में शङ्ख लगाये है। उसमें से एक फव्वारे का पानी निकलेगा। उस जगह का नाम रक्खा गया है, 'मधुकुञ्ज।' प्रवेश-द्वार लोहे का बना है, जिस पर नक्काशी का काम है। उस पर एक झण्डा लहरा रहा है। झण्डे पर लिखा है—'मधुपुरी।' चारो ओर 'मधु' नाम की छाप है। भाँति-भाँति के रङ्गीन कपड़ों और कनातों, झण्डियों, रङ्गीन फलों और चीनी के लैम्पों से सहसा तैयार हो जानेवाली इस मायापुरी को देखने के लिए लोग दूर-दूर से आने लगे। मधुपुरी के ठाट निराले हैं। चमकती हुई चपरास डाले लाल फुंदेदार पीली पगड़ी पहने, असली जरीदार वर्दी पहने और पैरों में विलायती जूते डाटे हुए चपरासियों का गिरोह इधर-इधर फिर रहा है। सन्ध्या समय खाली बन्दूक दागी जाती है। दिन-रात घण्टे पर घण्टा बजता है। कई लोग चमड़े के कमरबन्द से लटकती हुई विलायती तलवार से जमींदार की जमीन ही खोद डालते हैं। उधर चक्रवर्तियों के बरकन्दाज तो पुरानी भद्दी पोशाक पहन कर शर्म के मारे घर से बाहर निकलना ही नहीं चाहते। यह रङ्ग ढङ्ग देखकर चक्रवर्ती परिवार के लोगों की देह में आग लग गई है। नूरनगर के कलेजे पर नोकदार झण्डा गाड़ कर उस पर आज घोष परिवार की विजयपताका फहरा रही है। क्या यह शुभ परिवार की सूचना है?'

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

विप्रदास ने गोपाल को बुलाकर कहा—'आडम्बर की होड़ाहोड़ी करना तो ओछे आदमियों का काम है।'

गोपाल ने कहा—'भगवान् ने न जाने कौन सा थैला झाड़ कर इतने आदमी बना डाले हैं। बड़ी बातें बनाने वाले लोगों के लिए चार मुँह चाहिए। रुपये में साढ़े पन्द्रह आने आदमी ओछे हैं। उनसे अपनी सम्मान की रक्षा करनी है तो ओछे ही का रास्ता ग्रहण करना पड़ेगा।'

विप्रदास ने कहा—'तुम इस तरह जीत न सकोगे। अच्छा यही है

सीधे-सादे ढङ्ग से काम किया जाय। योग्य ब्राह्मण को बुला कर सामवेद के अनुसार शुद्ध अनुष्ठान कराया जाय। वे राजा हो गये हैं। उन्हें अपने आडम्बर का प्रदर्शन करने दो। हम ब्राह्मण हैं; हमारा काम यह नहीं।'

गोपाल ने कहा—'भाई साहब भूलते हैं। यह सतयुग नहीं। आप कीचड़ पर नाव चलाना चाहते हैं! आपकी इतनी प्रजा है, तनू सरकार हैं, आपके ताल्लुकेदार भादू प्रमाणिक, करमदीन विश्वास, पाञ्चू मण्डल ये लोग क्या आप की इस स्वाहा की पण्डिताई को समझ सकेंगे! ये क्या याज्ञवल्क्य की सन्तान हैं! इनकी तो छाती फट जायगी। आप चुपचाप रहिए। आपको कुछ भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।'

गोपाल प्रजा से मिलकर कमर बाँधकर जुट पड़ा, सबने छाती तान कर कहा—'रुपये की क्या चिन्ता है!'

नौकर-चाकर, प्यादे-बरकन्दाज इत्यादि सभी छोटे बड़े नौकरों ने नई लाल बनात की पोशाक पहनी, रङ्गीन धोतियाँ पहन लीं, लाल कपड़े से मढ़ा हुआ झालर और झण्डियोंदार नौबतखाना खड़ा किया। सात कोस की दूरी से उसकी चोटी दिखाई पड़ती। दोनों साजेदारों ने मिलकर अपने चार-चार हाथी निकाले, उन पर हौदा साज चढ़ाया। बिना प्रयोजन ही घोष तालाब के सामने सड़क पर वे सूँड़ हिला-हिला कर टहला करते। गले में टन-टन घण्टा बजता।

'और चाहे जो हो, सन के बोरों में से हाथी नहीं निकलते।' यह कहकर हर एक आदमी खिलखिला कर हँस पड़ता और पेट भर कर हँसता।

अगहन सुदी दशमी को विवाह है। केवल दस दिन बाकी रह गये। इतने में लोगों से पता मिला कि राजा बहादुर आ रहे हैं अपने दल बल सहित। अब चिन्ता हुई कि क्या करना चाहिए। मधुसूदन ने उन्हें कोई समाचार नहीं दिया है। शायद सोचा हो कि भद्रता साधारण लोगों के लिए आवश्यक है। राजाओं के लिए अभद्रता ही उचित है। ऐसी दशा

में स्वयं स्टेशन पर जाकर उनका स्वागत करना क्या उचित होगा। खबर न देने का उचित जवाब तो खबर न लेना ही है।

यह सब सच है, किन्तु तर्क के द्वारा दुनिया में दुःखों से मुक्ति नहीं मिलती, कुमुदिनी से विप्रदास को गहरा प्रेम है, कहीं उसके दिल को चोट न लग जाय यही चिन्ता उनके सब तर्कों को पीछे छोड़ जाती है। स्त्रियों को कष्ट पहुँचाना बहुत सहज है क्योंकि उनका मर्मस्थान चारों ओर से खुला हुआ है। जबर्दस्तों के हाथ में ही समाज ने लाठी दी है। कमजोरों का सहायक और मित्र कौन ! ऐसी दशा में स्नेह के स्थान को क्रोध, द्वेष तथा ईर्षा के तूफान में बहाकर अपने अभिमान की रक्षा करना कायरता है—यह थे विप्रदास के मन के भाव।

विप्रदास किसी से सलाह किये बिना ही घोड़े पर सवार होकर स्टेशन चल दिये। करीब पाँच बजे गाड़ी आ पहुँची। राजा साहब अपने दल-बल सहित गाड़ी से उतरे। विप्रदास से मिलकर रूखे-भाव से नमस्कार करके बोले—'ओफओह ! आपने क्यों कष्ट किया ?'

विप्रदास ने कहा—'आप भी खूब हैं ! पहले पहल हमारे देश में आये हैं ! मैं स्वागतार्थ भी न आता !'

'आप भूलते हैं। मैं अभी आपके देश में नहीं आया। वह आना होगा विवाह के दिन !'

विप्रदास इसका मतलब नहीं समझ सके। स्टेशन की भीड़-भाड़ में वाद-विवाद उचित नहीं। इसलिए केवल इतना ही कहा—'घाट पर बजरा तैयार है।'

राजा साहब ने कहा—'इसकी जरूरत न होगी। हमारा स्टीम-लञ्च आ गया है।'

विप्रदास ने समझ लिया कि विशेष कुछ कहने का मौका नहीं, किन्तु फिर भी उन्होंने कहा—'खाने पीने की चीजें, रसोई की नाव, सब कुछ तैयार है।'

'क्यों आपने व्यर्थ कष्ट उठाया। हमें किसी चीज की जरूरत न

होगी। देखिए, एक बात याद रखिए—मैं आया हूँ अपने पूर्वजों की जन्मभूमि में, आपके देश में नहीं। आपके यहाँ विवाह के दिन जाने की बात है।'

विप्रदास ने समझ लिया कि नरम होने की कोई आशा नहीं। कलेजे के भीतर धड़ाका-सा बैठ गया। स्टेशन के वेटिङ्गरूम में जाकर आरामकुर्सी पर लेट गये। जाड़े की सन्ध्या थी, अँधेरा छा रहा था। पश्चिम से गाड़ी आने की घण्टी बजी। स्टेशन की बत्तियाँ जल गईं। लगाम ढीली करके घोड़े को अपनी स्वेच्छानुसार चलने की स्वतन्त्रता देकर विप्रदास जब घर पहुँचे तो काफी रात हो चुकी थी। कहाँ गये थे, क्या बात थी, यह किसी से नहीं बताया।

उसी रात विप्रदास को ठण्ड लग कर खाँसी शुरू हो गई और धीरे-धीरे बढ़ने लगी। उन्होंने कोई परवाह नहीं की। जिसका परिणाम यह हुआ कि बीमारी और भी बढ़ गई। अन्त में बहुत कह सुन कर कुमुदिनी ने उन्हें बिछौने पर लिटाया और विवाह के सारे काम काज का भार पड़ा गोपाल के सिर पर।

सोहलवाँ परिच्छेद

दो दिन बाद गोपाल ने आ कर कहा—'क्या करूँ कोई सलाह दीजिए।'

विप्रदास ने उत्सुकता से पूछा—'क्यों, क्या हुआ?'

'साथ में कुछ अङ्गरेज आये हैं। शायद दलाल होंगे या विलायती शराब की दूकान के कलवार। कल पीरपुर के तालाब से कम से कम दो सौ बगुले मार लाये हैं। आज गये हैं चन्दनपुर की झील पर। ऐसे जाड़े के दिनों में वहाँ सुहावना मौसम है। वहाँ वे उनकी हत्या करेंगे।' विप्रदास चकित हुए, किन्तु कुछ बोले नहीं।

गोपाल ने कहा—'तुम्हारी ही आज्ञा है कि उस झील पर कोई शिकार न खेले। उस बार जिले के मजिस्ट्रेट तक को रोक दिया गया था। हम

तो डर गये थे कि कहीं तुम्हें भी बत्तख समझकर गोली न मार दे। वह भला आदमी था किन्तु यह तो किसी की भी मानने वाले नहीं। फिर भी यदि कहो तो एक बार कहूँ...।'

विप्रदास जल्दी से बोले—'नहीं-नहीं, कुछ मत कहो।'

चीते के शिकार में जिले भर में विप्रदास का कोई सानी नहीं। एक बार चिड़िया मारने पर उनके मन में इतनी ग्लानि हुई कि उस दिन से उन्होंने अपने इलाके में चिड़ियों का शिकार ही बिलकुल बन्द कर दिया।

कुमुदिनी बैठी विप्रदास के माथे पर हाथ फेर रही थी।

गोपाल के चले जाने पर उसने गम्भीर स्वर में कहा—'भैया, मना करवा दो।'

'क्या मना करवा दूँ?'

'पक्षियों का शिकार!'

'वह उलटा समझेंगे कुमुद। और शायद सहन भी न कर सकेंगे।'

'रहने भी दो, मान-अपमान केवल उन्हीं का नहीं, दूसरों का भी है।'

विप्रदास कुमुदिनी की ओर देखकर मन में मुस्कराये। वे जानते थे कि कुमुदिनी मन ही मन सती-धर्म का पालन कर रही है। साधारण पक्षी के लिए कहीं और ही कुछ न हो जाय।

विप्रदास ने स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—'गुस्सा मत हो कुमुद! मैंने भी तो किसी दिन चिड़िया मारी थी। उस समय मैं भी उसे अन्याय नहीं समझता था, आज उनकी भी यही दशा है।'

फिर क्या था; पूर्ण उत्साह के साथ शिकार चलने लगा, पिकनिक और शाम को बैण्ड बाजे के साथ ही अङ्गरेज अतिथियों का नाच। तीसरे पहर टेनिस तथा इसके अतिरिक्त नावों पर तीन तीन, चार चार पर्दे चढ़ा कर ताल में शर्त लगाकर पाल का खेल—उसी को देखने के विचार से गाँव के बहुत से लोग ताल के किनारे एकत्र हो जाते, रात को निमन्त्रण में भोजन के बाद आवाजें उठतीं तथा इन सब विलासों के नायक और

नायिकायें साहब तथा मेमें होतीं। इसी कारण गाँव के लोग चौंक पड़ते हैं, सोले के टोप पहने जब यह लोग हाथ में फँसाने की छड़ी लिये मछली का शिकार करते हैं तो वह दृश्य दर्शनीय होता है। इसके अतिरिक्त दूसरी तरफ लाठी का खेल, कुश्ती, नाव चलाने का होड़, रहस्य, झाँकी थियेटर और चार चार हाथियों का घूमना इसके सामने था ही क्या!'

विवाह के दो दिन पूर्व ही तेल ताई है, सौगात की वस्तुओं में मूल्यवान गहनों से लेकर खेलने की गुड़िया तक जितनी भी वरपक्ष की ओर से आई उनकी छटा देखकर सब लोग दङ्ग रह गये, उसके लानेवाले मजदूरों की संख्या भी काफी थी। चटर्जी परिवार ने खूब शान के साथ उन्हें विदा किया।

आखिर सर्वसाधारण को खिलाने-पिलाने के बारे में विवाह के कुरुक्षेत्र का द्रोणपर्व आरम्भ हुआ।

उस दिन डुग्गी पिटवाकर सर्वसाधारण को निमन्त्रण दिया गया मधुसागर के किनारे मधुपुरी में आने के लिए, बुलाये बिन बुलाये सब आ सकते हैं, किसी के लिए रोक टोक नहीं, गोपाल गुस्से से आग बबूला हो गया। बोला—'जरा हौसला तो देखो, हम लोग जमींदार हैं, उन लोगों को क्या अधिकार है कि वे अपनी मधुपुरी खड़ी कर दें।'

इधर भोज की तैयारी खूब धूमधाम से हो रही थी, सबको मालूम हो गया कि साधारण फलाहार नहीं। वहीं खीर, दही, मछली, खोवा, बर्फी, मैदा, बेसन, आटा, घी, इत्यादि धूम धाम के साथ आने लगे। पेड़ों के नीचे बड़ी बड़ी भट्ठियाँ तैयार की गईं। भाँति भाँति की कड़ाहियाँ, हाँड़ियाँ, परातें, कलसे, गङ्गाजल, मटके इत्यादि मँगाये गये, बैलगाड़ियों पर लदकर आलू, बैगन, केले, कद्दू इत्यादि भाँति भाँति की तरकारियाँ आने लगीं, भोज शाम को होने वाला था।

चटर्जी परिवार में दोपहर के बाद भोजन है। किसानों के गिरोह के गिरोह मिलकर अपने आप ही तैयारियाँ कर रहे हैं। हिन्दुओं के लिए अलग जगह और मुसलमानों के लिए अलग। प्रातःकाल सूर्योदय के

पूर्व ही भट्ठियाँ जला दी गयी हैं। सामान चाहे इतना न हो किन्तु चटर्जी परिवार की जय बोली जा रही है। गोपाल ने स्वयं शाम को पाँच बजे तक भूखे रहकर अपने सामने सबको खिलाया, इसके बाद भिखारियों को बाँटा गया, स्वामिभक्त प्रजा ने अपने आप ही दान-वितरण का व्यवस्था की। प्रसन्नता और आनन्द के शोर ने एक विचित्र समा पैदा कर दिया था।

मधुपुरी में दिन भर भट्ठियाँ गर्म रहीं, भाँति-भाँति के खाने तैयार हुए, दूर-दूर तक उनकी सुगन्ध जाती थी, कसोरे के ढेर लग गये, सब्जी और मछली के छिलकों वाले ढेर पर दुनिया भर के कौवे और कुत्ते जमा हो गये, आपस में खूब झपटा-झपटी हो रही है। रात हो गई, रोशनी जगमगा उठी, मटिया बुर्ज वाली रोशनी चौकी ने एक-एक करके सारी गत बजा डाली। राजा बहादुर के पास उनके अनुचर जा-जा कर कह रहे हैं कि अभी तक लोग काफी नहीं आये, आज पेठ का दिन है, दूसरे इलाके से जो पेंठ करने आये थे, उन्हीं में से कोई कोई पत्तल बिछी देख कर बैठ गये हैं। कङ्गले-भिखारी भी बहुत थोड़े आये हैं।

मधुसूदन ने तम्बू के भीतर जाकर एक गहरी साँस ली—'हूँ।'

छोटे भाई राधू ने आकर कहा—'भैया, अब हो चुका, चलिए !'

'क्यों ?'

'कलकत्ते लौट चलें, यह सब लोग बदमाशी कर रहे हैं, उनसे बड़े घरानों की लड़कियाँ तुम्हारी अँगुली का इशारा पाते ही आ जायँगी, केवल एक बार 'तू' करने की आवश्यकता है।

मधुसूदन गरजकर बोला—'जा, चला जा यहाँ से।'

सौ वर्ष पूर्व जो कुछ हुआ था आज भी वही सब हुआ, इस बार भी एक पक्ष के आडम्बर की चोटी बहुत ऊँची बनाई गई थी, दूसरे पक्ष ने उसे रास्ते से निकलने न दिया किन्तु हार-जीत बाहर से देखने में नहीं आती।

चटर्जी की प्रजा खूब हँस ली। विप्रदास रोग-शय्या पर पड़े थे, उनके कानों तक कोई खबर पहुँच ही न सकी।

सत्रहवाँ परिच्छेद

विवाह के दिन राजा की आज्ञा हुई कि लड़कीवालों के रास्ते में धूमधाम बिलकुल बन्द, न रोशनी हुई न बाजे बजे, साथ में केवल पुरोहित थे और दो भाट। पालकी में बैठकर चुपके से इस प्रकार बरात पहुँची कि बहुतों को पता न चला, मधुपुरी के बड़े तम्बू में रोशनी जला कर बैंड बाजे के साथ बड़ी धूमधाम से बराती लोग खाना खाने और हँसी दिल्लगी करने में व्यस्त थे। गोपाल समझ गया कि यह उल्टा जवाब है। ऐसे अवसर पर कन्यापक्ष की ओर से बड़ी विनती-चिरौरी के बाद वर पक्ष वालों को मानना पड़ता है। गोपाल ने कुछ भी न किया, एक बार मुँह से पूछा तक नहीं कि बराती लोग कहाँ रह गये।

कुमुदिनी सज धज कर विवाह-मण्डप में जाने से पहले भाई को प्रणाम करने आई। उसका शरीर काँप रहा था, विप्रदास को एक सौ पाँच डिग्री बुखार था, छाती पीठ पर राई का लेप लगा हुआ था, उनके पाँव पर सिर रखकर कुमुदिनी सिसक-सिसक कर रोने लगी, क्षेमा बुआ ने हाथ से उसका मुँह दबाकर कहा—'छिः! ऐसे नहीं रोया करते।'

विप्रदास ने थोड़ा उठकर कुमुद को हाथ से पकड़कर अपने पास बिठाया, फिर कुछ देर तक उसे देखते रहे, उनकी आँखों से आँसू ढलक ढलक कर गिरने लगे।

क्षेमा बुआ ने कहा—'समय तो हो चला।'

विप्रदास ने कुमुदिनी के सिर पर हाथ रखकर भर्राये हुए स्वर में कहा—'भगवान् कल्याण करें।' यह कहने के साथ ही लुढ़ककर बिछौने पर गिर पड़े।

विवाह के समय शुरू से आखिर तक कुमुदिनी की आँखों से आँसू बहते रहे, दूल्हे के हाथ पर जब हाथ रक्खा उस समय उसके हाथ बर्फ की तरह ठण्डे और थर-थर काँप रहे थे, शुभ दृष्टि के समय भी उसने शायद

पति का मुँह नहीं देखा, उन लोगों के व्यवहार से उसका हृदय पति से कुछ भीत-सा हो गया था, पक्षी को ऐसा लग रहा था मानो उसके लिए यह घोंसला नहीं जाल है।

मधुसूदन देखने में कुछ बहुत कठिन नहीं है, काले मुँह पर नजर डालते ही जो चीज सबसे पहले दिखाई पड़ती है, वह चिड़िया की चोंच की भाँति बाँकी नाक, ओठों के सामने तक झुककर मानो पहरा दे रही हो, चौड़ा ढालू माथा, घनी भौंह पर रुके हुए लतों की भाँति फूला हुआ है। उन भौंहों की छाया में आँखें हैं, दाढ़ी मूँछ अस्तूरे से साफ हैं, ओठ दबे हुए और ठोड़ी भारी है। बाल हब्शियों की भाँति कड़े हैं और चोटी के पास तक खूब बारीक छटे हुए हैं। शरीर गठीला और चुस्त है। अवस्था जितनी है, उससे कम ही जान पड़ती है किन्तु दोनों कनपटियों के ऊपर कुछ-कुछ बाल सफेद हो गये हैं। कद भी लम्बा नहीं है। खड़े होने पर कुमुदिनी के बराबर रहता है। हाथों पर रोएँ बहुत हैं किन्तु शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा छोटे। पहली दृष्टि से पता चल जाता है कि आदमी ठोस है और व्यर्थ बातों से दूर रह कर अपना काम से मतलब रखनेवाला है।

विवाह जिस ढङ्ग से हुआ वह सबको बुरा मालूम हुआ। दोनों पक्षों की पहली भेंट से ऐसी बेसुरी झङ्कार उठी, जिसमें उत्सव का सङ्गीत ही डूब गया। रह-रहकर कुमुदिनी के हृदय से बाहर निकल आता—क्या भगवान् ने मुझे धोखा दिया ! सन्देह को पूरी शक्ति से दबाकर, बन्द घर में अकेली बैठकर बार-बार धरती पर सिर टेक कर कहती—मन कमजोर न हो जाय। कठिनाई आ पड़ी है ! भैया से यह कैसे छिपाऊँ !

माँ की मृत्यु के बाद विप्रदास कुमुदिनी ही की सेवा पर रह रहे थे। कपड़े-लत्ते, खर्च के लिए रुपये पैसे, पुस्तकों की आलमारी, घोड़ों का दाना, बन्दूक की सफाई, कुत्ते की सेवा, बाजों की देख-भाल, कमरों की झाड़-फूँक सब कुमुदिनी के जिम्मे था, उसको इतना अनुभव हो गया

था, कि नित्य के कामों में जब तक कुमुदिनी का हाथ न लगता, उस समय तक कोई चीज अपनी जगह ठीक न मालूम होती। बीमारी के समय उसने भाई की जितने दिन तक सेवा की उस बीच भी उसकी यह चेष्टा रही कि भैया उसकी बातों या चेहरे के भाव से उसकी चिन्ताओं को न ताड़ लें। कुमुद के इसराज बजाने की निपुणता पर विप्रदास को बड़ा गर्व है। कहाँ तो वह बाजा बजाने को जल्दी राजी ही नहीं होती थी, कहाँ इधर उसने हर समय भैया को कानड़ा मालकोष का राग सुनाना शुरू किया। इसी राग में उसके देवता का स्तवन था, उसकी विनय थी, उसकी आशंका थी और उसकी प्रार्थना थी। विप्रदास आँखें मींच कर चुपचाप सुनते और फर्माइश करते जाते—भैरवी, बिहाग, सिन्धु। जिन स्वरों में दर्द और तड़प पाई जाती है उनमें भाई बहन दोनों की व्यथा एक होकर मिल जाती है। मुँह से दोनों ने कुछ न कहा। न किसी को सान्त्वना दी और न अपना दुःख प्रकट किया।

विप्रदास का बुखार, खाँसी और पसली का दर्द कुछ भी कम न हुआ, बल्कि बढ़ने लगा। डॉक्टर कहता है—'इनफ्लुएञ्जा है, सम्भव है निमोनिया हो जाय, बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।' कुमुद के दुःख और उद्वेग की सीमा नहीं है। बस एक दिन और रात के बाद कलकत्ते रवाना होना था। सबसे सुना था कि मधुसूदन ने दृढ़-निश्चय कर लिया है कि विवाह के दूसरे ही दिन कुमुदिनी को अपने साथ ले जायगा। कुमुदिनी समझ गई कि यह विवाह, आवश्यकता अथवा प्रेम के लिए नहीं बल्कि शासन के लिए किया जा रहा है। इस परिस्थिति में स्वाभिमानी व्यक्ति दया की भीख नहीं माँगते। फिर भी कुमुदिनी ने लज्जा और सङ्कोच को त्याग कर विवाह की रात को पति से जाकर विनती की थी कि बस केवल दो दिन के लिए उसे मायके में और रहने दिया जाय जिससे कि वह भैया को कुछ स्वस्थ देखकर विदा हो। मधुसूदन ने केवल यह उत्तर दिया—'सब तैयारियाँ हो चुकी हैं।' ऐसी

इकतरफा तैयारियाँ जिसमें कुमुदिनी के हार्दिक सन्तोष के लिए तनिक भी स्थान नहीं।

इसके बाद मधुसूदन ने रात को कुमुदिनी से बातचीत करने की कोशिश की किन्तु उसने किसी सवाल का कोई भी जवाब न दिया। बिस्तर के एक किनारे मुँह फेरकर पड़ी रही।

अभी अन्धकार छाया था, चिड़ियों की चुहचुहाहट सुनते ही वह बिछौने से उठकर चली गई।

विप्रदास सारी रात तड़पते रहे। शाम को तीव्र ज्वर की हालत में ही विवाह मण्डप में जाने को तैयार हो गये। डॉक्टर ने बड़ी कठिनाई से उन्हें सँभाल रक्खा। आदमी भेजकर बराबर समाचार पूछता रहता। विप्रदास ने पूछा—'बरात कब आई? बाजे गाने तो सुनाई नहीं दिये!'

शिबू ने कहा—'दामाद बड़े समझदार हैं। आपकी बीमारी की सुनकर सब धूमधाम बन्द करवा दी। बरातियों के पाँव की आहट भी न सुनाई पड़ी।'

'क्यों रे शिबू! खाने-पीने का तो सब सामान ठीक था। मुझे इसी की बड़ी चिन्ता थी। यह कलकत्ता तो नहीं गाँव है।'

'वाह वाह! कितनी तो फेंक देनी पड़ी। यदि उतने ही आदमी और आ जाते तो भी पूरा पड़ जाता।'

'वे लोग प्रसन्न हुए या नहीं!'

'किसी के मुँह से एक भी शिकायत नहीं सुनी गई। और भी तो विवाह होते हैं जिसमें बरातियों की ज्यादती के मारे लड़कीवालों की नाक में दम आ जाता है। यह लोग ऐसे सज्जन निकले कि कुछ पता ही न चला।'

विप्रदास ने कहा—'कलकत्ते के रहनेवाले हैं न! इसीलिए इतने भले और समझदार हैं। वे जानते हैं जिस घर से लड़की ले जायेंगे उसका अपमान अपना अपमान है।'

'हाँ हाँ! आपने बिलकुल ठीक कहा। मैं यह बात उनको भी सुना दूँगा। सुनकर प्रसन्न हो जायँगे।'

कुमुद कल शाम ही को समझ गई थी, रोग आगे बढ़ रहा है। अब वह भैया की इस बीमारी में सेवा न कर सकेगी। यह दुख उसके हृदय को जाल में फँसे पक्षी की भाँति तड़पाने लगा। कुमुद के हाथों की सेवा तो उसके भैया के लिए दवा से भी बढ़कर है।

नहा-धोकर और ठाकुर जी को फूल माला चढ़ाकर कुमुद जब अपने भैया के कमरे में गई तब सूर्य उदय न हुआ था। कठिन बीमारी के साथ बहुत देर तक युद्ध करने के बाद क्षण भर के लिए छुट्टी पाने के समय अवसान का जो वैराग्य आता है उस वैराग्य से विप्रदास का मन उस समय शिथिल हो रहा था। जीवन की आसक्ति और गृहस्थी की चिन्ता यह सब उन्हें कटे हुए सूखे खेत की भाँति फीकी मालूम पड़ने लगी। रात भर दरवाजा बन्द था। डॉक्टर ने तड़के ही आकर पूर्व की ओर की खिड़की खोल दी है। ओस के भीगे पीपल के पत्तों की आड़ में अरुण आकाश धीरे-धीरे शुभ्र होता जा रहा है। पास की नदी में मल्लाहों की नावों में थिगिली लगे पाल उस अरुण आकाश की गोद में फूले नहीं समाते। नौबत में करुण स्वर में रामकेलि बज रही है।

पलङ्ग के पास जाकर कुमुदिनी ने अपने दोनों ठण्डे हाथों में भैया के शुष्क और गरम हाथ उठाकर रख लिये। विप्रदास का कुत्ता पलङ्ग के नीचे उदास होकर सो रहा था। कुमुद के पलङ्ग पर बैठते ही वह उठ खड़ा हुआ और अपने आगे के दोनों पैर उसकी गोद में रखकर पूँछ हिलाता हुआ करुण दृष्टि से क्षीण स्वर में न जाने क्या पूछने लगा।

विप्रदास के मन के भीतर एक चिन्ता की धारा बह रही थी। इसीलिए बिना किसी सिलसिले के उनके मुँह से निकल पड़ा—'बहन! वास्तव में कुछ भी नहीं, कौन बड़ा और कौन छोटा, कौन ऊँच है और नीच है। यह सब बनावटी बातें हैं। झाग के भीतर बुदबुदों के लिए कहाँ किसी का स्थान है—इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। अपने आप

ढाल बनकर रहना, कोई न मार सकेगा।'

'मुझे आशीर्वाद दो भैया, आशीर्वाद दो।' यह कहकर कुमुदिनी दोनों हाथों से अपना मुँह ढापकर रोने लगी।

विप्रदास तकिये के सहारे थोड़ा उठकर बैठ गये और कुमुद का सिर अपनी ओर खींचकर माथा चूम लिया।

एकाएक डॉक्टर ने कमरे में प्रवेश किया और आते ही बोला—'बस रहने दो कुमुद बहन, अब इन्हें शान्त रहने की आवश्यकता है।'

कुमुद ने रोगी के तकिये को ठीक कर दिया। अच्छी तरह कपड़े ओढ़ा दिये। पास की तिपाई पर सब चीज़ें सँभालकर रख दीं। फिर भैया के कानों के पास मुँह ले जाकर कोमल स्वर में बोली—'अच्छा होते ही कलकत्ते जरूर चले आना भैया, वहाँ मैं तुम्हारे आने की बाट देखूँगी।'

विप्रदास ने अपनी बड़ी-बड़ी स्नेहपूर्ण आँखें कुमुद के चेहरे पर जमा कर कहा—'कुमुद, पश्चिम के बादल पूर्व को आते हैं। संसार में यही हवा सदा चलती रहती है। बादल की भाँति अपने को समझ लेना बहन! आज से हम लोगों की अधिक चिन्ता न करना। जहाँ जा रही है, वहाँ तू लक्ष्मी का आसन घेरे रह, यही मेरे हृदय से निकला हुआ आशीर्वाद है। तुझसे हम लोग और कुछ नहीं चाहते।'

विप्रदास के चरणों के पास कुमुद सिर रखकर बैठी रही—'मुझे अब और कुछ भी नहीं चाहिए। यहाँ के जीवन में अब मेरा तनिक भी हाथ न रहेगा!' क्षण भर में इतनी बड़ी विच्छेद की बात उसकी समझ में नहीं आ सकती। तूफान जब नाव को किनारे से खींच ले जाता है तब जिस प्रकार लङ्गर मिट्टी को जकड़कर पकड़े रहना चाहता है उसी प्रकार भैया के पैरों के पास कुमुदिनी का हृदय भी बँधा रहना चाहता था।

डॉक्टर ने फिर आकर धीरे से कहा—'बस करो बहन!' और यह कहकर अपने सजल नेत्र पोंछ डाले। कुमुद कमरे के बाहर बिछी चौकी पर बैठ आँचल से मुँह ढाँककर रोने लगी। एकाएक उसे अपने भैया का

घोड़ा याद आया, उसे अपने हाथ से खिलाकर वह जायगी, इसके लिए कल रात को ही उसने गुड़ मिले हुए आटे की मीठी रोटी बना रक्खी थी। साईस आज सवेरे ही उसे पीछे के बगीचे में छोड़ आया है।

कुमुद ने वहाँ जाकर देखा कि वह आमड़े के पेड़ के नीचे घास खाता फिर रहा है। कुमुद के पैरों की आहट सुनकर उसने कान खड़े कर लिये और उसे देखते ही हिनहिनाने लगा। कुमुद उसकी गरदन पर बायाँ हाथ रखकर दाहिने हाथ से उसे रोटी खिलाने लगी। खिला-पिला कर कुमुद ने उसके माथे का चुम्बन लिया और उसे डबडबाई हुई आँखों से अपनी ओर देखता छोड़कर जल्दी से वहाँ से भाग आई।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

विप्रदास को आशा थी कि मधुसूदन उनसे मिलने के लिए दो एक बार अवश्य आयेगा किन्तु जब वह नहीं आया तो उन्हें यह समझते देर न लगी कि दोनों परिवारों का यह विवाह-सम्बन्ध ही आपस के विच्छेद का कारण बन गया है। उन्होंने डॉक्टर को बुलाकर पूछा—'क्या इसराज बजा सकता हूँ?'

डॉक्टर ने कहा—'आज रहने दीजिए।'

'तो कुमुद को बुला दो, वही बजा देगी। अब न जाने उसके हाथ का बाजा कब सुनने को मिलेगा?'

डॉक्टर ने कहा—'आज सुबह नौ बजे की गाड़ी से उन लोगों को बिदा करना है। नहीं तो सूर्यास्त से पहले वे कलकत्ता न पहुँच सकेंगे। कुमुद को बुलाने का अब समय कहाँ है?'

विप्रदास ने गहरी साँस लेकर कहा—'हाँ, अब उसका समय तो पूरा हो ही चुका है। इस घर में वह उन्नीस वर्ष काट चुकी है। अब एक घण्टा भी नहीं रुक सकती।'

बिदाई के समय पति पत्नी की युगल जोड़ी प्रणाम करने आई। मधुसूदन ने भद्रता के साथ कहा—'आपकी तबीअत तो सचमुच खराब

मालूम होती है।'

विप्रदास ने कुछ जवाब न देकर कहा—'भगवान् तुम दोनों का कल्याण करें।'

'भैया! अपने शरीर का बहुत ध्यान रखना!' यह कह कर कुमुदिनी फिर विप्रदास के पैरों पर सिर रखकर रोने लगी।

इसके बाद बड़ी धूमधाम से वर-वधू की विदाई हो गई।

एक दूसरे के आँचल और दुपट्टे से बँधे हुए जब दोनों जा रहे थे तब वह दृश्य न जाने क्यों विप्रदास को वीभत्स लगने लगा। इतिहास में लिखा है, तैमूर और चंगेज खाँ ने असंख्य मनुष्यों के कङ्कालों का स्तम्भ बनाया था। परन्तु इस दुपट्टे और आँचल की गाँठ का बनाया हुआ जीवन-मृत्यु का जयतोरण यदि नापा जाय तो इसकी चोटी किस नरक से जाकर लगेगी। परन्तु आज उनके मन में यह चिन्ता कैसी?

पूजा-अर्चना के सम्बन्ध में विप्रदास कभी उत्साहित न हुए, किन्तु फिर भी आज हाथ जोड़कर वे मन ही मन प्रार्थना करने लगे। एकाएक चौंककर बोल उठे—'डॉक्टर, जरा दीवान जी को बुलाना।'

विप्रदास को सहसा एक बात याद आ गई। विवाह से कुछ दिन पहले—जब सुबोध को रुपये भेजने के बारे में उनका मन अत्यन्त उद्विग्न था, हिसाब के कागज पत्र उलटने-पुलटने में बहुत व्यस्त थे, खाये बिना ग्यारह बज चुके थे, ऐसे समय एक बिलकुल फटाहाल आदमी उनके सामने आ खड़ा हुआ। बहुत दिनों की बढ़ी हुई हजामत थी, फीका उदास शुष्क चेहरा था, हाथ पैर में केवल हड्डियाँ और नसें चमक रही थीं, फटी-पुरानी मैली चादर कन्धे पर थी और छोटी सी धोती पहने था। हाथ जोड़कर नमस्कार करके बोला—'मुझे पहचाना बड़े बाबूजी!'

विप्रदास ने जरा ध्यान से देखकर कहा—'अरे! बैकुण्ठ, तुम यहाँ कहाँ!'

विप्रदास बचपन में जिस स्कूल में पढ़ते थे उस स्कूल से मिले हुए एक घर में बैकुण्ठ स्कूली किताबें, कापियाँ, पेंसिल, कलम, चाकू, बेट-बल्ला,

लड्डू और उसके साथ-साथ पुड़िया में बाँधकर मूँगफली बेचता था। उसके घर में लड़कों का काफी अभाव रहता था। दुनिया भर के हँसनेवाले अद्भुत किस्से उसे याद थे।

विप्रदास ने पूछा—'तुम्हारी यह दुर्दशा क्यों है?'

कई वर्ष हुए, बैकुण्ठ ने सम्पन्न गृहस्थ के घर अपनी बेटी ब्याही है। उन्हें दहेज की विशेष आवश्यकता नहीं थी, इसीलिए दुलहे का प्रण भी बहुत अधिक था। अस्सी तोले सोने के गहनों के अतिरिक्त बारह सौ रुपये में मामला तय हुआ। जान से भी प्यारी बेटी थी, इसी कारण वह अपनी जान पर खेलकर राजी हो गया। एक साथ रुपये न दे सका था, इसी कारण लड़की बेचारी को कष्ट देकर उन लोगों ने बाप का खून चूसा है। पूँजी सब निपट गई, बर्बाद हो चुका, फिर भी अभी ढाई सौ रुपये देने ही हैं। अब की तो बेचारी लड़की बहुत ही तङ्ग आ गई। उसके अपमान का कोई ठिकाना न रहा। जब कष्ट एकदम असह्य हो गया, तब बेचारी मायके भाग आई। जेल के कैदी ने जेल के कानून को भङ्ग करके अपने अपराध को और भी बढ़ा लिया। पहले बाकी के ढाई सौ रुपये देकर लड़की की जान बचाई जाय, फिर कहीं उसे अपने मरने की बात सोचने का समय मिले।

विप्रदास उदास हँसी हँसे। काफी सहायता की बात तो वे उस दिन सोच भी न सकते थे, टाल-मटोल करते रहे फिर उठकर सन्दूक से थैली झाड़कर दस रुपये का एक नोट निकाला और उसके हाथ पर रखकर बोले—'और भी दो चार जगह कोशिश करके देखो। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता।'

बैकुण्ठ को इस पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। पाँव घसीटता चला गया। उसके जूते की आहट अत्यन्त खेदजनक थी।

उस दिन की घटना विप्रदास प्रायः भूल ही गये थे, आज अकस्मात् उन्हें उसकी याद आ गई। दीवान जी को बुलाकर आज्ञा दी—'आज ही बैकुण्ठ को ढाई सौ रुपये भेज दीजिए।'

दीवान जी चुपचाप खड़े सिर खुजलाने लगे। जिद्द के कारण वैसे ही विवाह में बहुत रुपये खर्च हो गये थे। अब बहुत दिनों तक वैसे ही उसका हिसाब निबटाना पड़ेगा। ऐसे समय ढाई सौ रुपये बड़ी भारी रकम है।

दीवना जी के मुँह के भाव को देखकर विप्रदास ने अँगुली से हीरे की अँगूठी निकालकर कहा—'छोटे बाबू के नाम से जो रुपये जमा कर आये हैं, उनमें से ढाई सौ रुपये ले लो। उसके बदले में मेरी अँगूठी रेहन रहेगी। बैकुण्ठ को रुपये कुमुदिनी के नाम से भेजे जायँ, अच्छा।'

उन्नीसवाँ परिच्छेद

वैवाहिक लङ्का काण्ड का अन्तिम अध्याय अभी शेष है। सवेरे ही कुशकण्डिका (एक वैवाहिक अनुष्ठान, जिसमें वर वधू परस्पर प्रतिज्ञासूत्र में बँध जाते हैं।) को समाप्त करने के बाद ही वर वधू के विदा होने की बात थी। गोपाल ने इसके लिए तमाम तैयारियाँ कर रखी हैं। एकाएक विप्रदास के कमरे से निकलकर राजा बहादुर बोल उठे—'कुशकण्डिका की रस्म तो हमारी मधुपुरी में होगी।'

यह उद्दण्ड प्रस्ताव गोपाल को बुरा लगा। यदि और कोई होता तो आज फौजदारी हो जाती। किन्तु फिर भी भाषा की धींगाधींगी में गोपाल का विरोध प्रायः लड़वाजी के करीब तक पहुँचकर थम सका था।

अन्तःपुर में इस अपमान के कारण बड़ी गड़बड़ी मची। दूर दूर के सभी नाते रिश्तेदार आये हैं, जिसमें गृह-शत्रुओं की कमी नहीं। सबके सामने ऐसा अत्याचार! क्रोध के आवेश में क्षेमा बुआ मुँह फुलाकर बैठी रही। वर कन्या जब विदा लेने आये तो उनके मुँह से माना आशीर्वाद निकलना ही नहीं चाह रहा था। सभा ने कहा—'इस काम को भी कलकत्ते ही में कर लेते तो क्या कोई रोकने थोड़े ही जाता।' मायके के अपमान से कुमुद अत्यन्त ही संकुचित हो गई। उसे ऐसा प्रतीत होने

लगा जैसे अपने समस्त पुरखाओं के सामने वही अपराधिनी हो। वह मन ही मन अपने देवताओं से रूठकर बार बार प्रार्थना करने लगी—'मैंने तुम्हारे प्रति ऐसे कौन से कसूर किये हैं जिनकी इतनी बड़ी सजा है। तुम्हारे ही विश्वास पर तो मैंने सब कुछ मान लिया है।'

वर वधू की युगल जोड़ी गाड़ी पर सवार हुई। कलकत्ता से मधुसूदन जो बैण्ड लाये थे, उसने उच्च स्वर में नाच का गत बजाना आरम्भ कर दिया।

एक बड़े शामियाने के नीचे हवन की तैयारियाँ हुई। गद्दी और चौकियों पर बैठे-बैठे अभ्यागत अङ्गरेज और मेमें झुक-झुककर देखने लगे। यहीं उनके लिए चाय बिस्कुट भी आ गये। एक तिपाई के ऊपर एक बड़ा भारी 'वेडिङ्ग केक' रक्खा हुआ है। अनुष्ठान समाप्त होने पर सब लोग बधाई देने लगे, उस समय कुमुद मुँह लाल किये सिर झुकाये खड़ी रही। एक भीमकाय प्रौढ़ा मेम ने उसकी बनारसी साड़ी का आँचल उठाकर बड़े गौर से देखा। बाँहों में सोने के खूब मोटे-मोटे लटकते हुए बाजूबन्द भी घुमा घुमाकर देखने में उसे बड़ा कौतूहल मालूम दिया। उसने अङ्गरेजी भाषा में उसकी प्रशंसा भी की।

कुमुद ने इन्हीं मधुसूदन को अपने भैया तथा और रिश्तेदारों से बर्ताव करते देखा है, और आज इन्हें अङ्गरेज मित्रमण्डली में देख रही है। बड़े ही भलेमानस हैं। अत्यन्त ही गद्गद विनम्र स्वभाव है और हँसी तो मुँह में समाती ही नहीं। चाँद में जैसे एक ओर निर्मल प्रकाश और दूसरी ओर चिरअन्धकार है, ठीक वैसे ही मधुसूदन का भी चरित्र है। माधुर्य-पूर्ण चन्द्रमा के प्रकाश के समान ही उज्ज्वल तथा स्निग्ध व्यवहार उनका अङ्गरेजों के प्रति है, दूसरी ओर वह दुर्गम, कुदृश्य और जमी हुई बर्फ की निश्चलता के समान दुर्भेद्य है।

सेलून-गाड़ी में मधुसूदन और उनके अङ्गरेज मित्र हैं और दूसरे रिजर्व डिब्बे में स्त्रियों के साथ कुमुदिनी। उनमें से कोई उसका हाथ उठाकर मसल देती तो कोई ठुड्डी उठाकर उसके मुख की समीक्षा करती है, कोई

कहती 'लम्बी' है, तो कोई 'दुबली' बतलाती, और कोई बहुत ही भलमन-साहत से पूछती है—'क्यों भई, देह बदन पर कौन-सा रङ्ग लगाती हो ! तुम्हारे भाई ने विलायत से भेज दिया होगा, क्यों ठीक है न ? सभी ने मीमांसा की—आँखें बड़ी नहीं हैं, पैर तो बड़े-बड़े हैं। वे शरीर का प्रत्येक गहना घुमा-फिरा कर देखने लगीं और बोलीं—'प्राचीन-काल की चीजें हैं, वजन में भारी हैं, सोना भी पक्का है—ओह ! बलिहारी है फैशन की !'

जनाने डिब्बे की खिड़कियाँ प्लेटफार्म की विपरीत दिशा में खुली थीं। कुमुदिनी उसी ओर देखती रही। वह यह कोशिश करने लगी कि इनकी बातें उसके कानों में सुनाई न पड़ सकें। उसने देखा कि एक पैर का लँगड़ा कुत्ता इधर-उधर मिट्टी सूँघता फिर रहा है। अहा ! यदि उसके हाथ में खाने की कोई चीज होती ! किन्तु उसके पास कुछ भी न था। वह मन ही मन सोचने लगी—एक पैर कट जाने के कारण बेचारे का जो साहस था वह भी कठिन हो गया है। इतने में कुमुद के कानों में कुछ आवाज आई। सैलून गाड़ी के सामने खड़ा हुआ एक भलामानस कह रहा था—'देखिए, आरकाटी लोग इस किसान की लड़की को बहका कर आसाम के चाय-बगान को लिये जा रहे थे, बेचारी भाग आई है। ग्वालन्द तक किराया इसके पास है। डुमराँव में इसका घर है। यदि थोड़ी सी सहायता आप लोग करें तो वह बच जाय। कुमुद ने सैलून गाड़ी में से एक कड़ी घुड़की की आवाज सुनी। उससे रहा न गया। तत्काल ही दाहिनी ओर की खिड़की खोलकर उसने अपने मोतियों के बने हुए बटुए में से दस रुपये निकालकर उस लड़की के हाथ पर रख दिये और चट से खिड़की बन्द कर ली। इसे देख एक औरत बोल उठी—'हमारी बहू जी का खर्चीला हाथ देखा !' एक दूसरी स्त्री बोल उठी—'खर्चीला हाथ नहीं बहिन, दरवाजा है दरवाजा—लक्ष्मी को विदा करने का' तीसरी बोली—'रुपये उड़ाना ही सीखा है, जोड़ती तो काम आते।' उन लोगों ने उसे शेखी समझा—बाबू लोगों ने जिसे एक पैसा भी नहीं

दिया, आपने उसे झट से दस रुपये फेंक दिये इतनी ठसक काहे को !' उन्हें मालूम हुआ कि यह भी शायद उसी चटर्जी-घोष की सदैव अदावत का एक अङ्ग है।

इसी वक्त उनमें से एक मोटी ताजी लड़की जिसकी बड़ी-बड़ी आँखें, स्नेह से परिपूर्ण मुँह, कुमुद की बराबर की आयु थी—उनके समीप आकर बैठ गई और चुपके से बोली—'मन नहीं लगता, क्यों बहन ! इन लोगों की बात पर ध्यान मत देना, दो-चार दिन तक इसी भाँति मसका-मसकी, बोली-ठोली चलती रहेगी। कण्ठ से विष उतर जाने पर सब ठण्डी हो जायँगी।' यह कुमुद की मझली देवरानी है, नवीन की स्त्री। इसका नाम निस्तारिणी है, इसे सभी 'मोती की माँ' कहते हैं।

मोती की माँ ने जिक्र छेड़ा—'जिस दिन मैं नूरनगर आई, स्टेशन पर तुम्हारे बड़े भैया को देखा था।'

कुमुद चौंक उठी। उसके भैया स्टेशन पर गये थे। उसने यह खबर प्रथम ही सुनी।

'अहा ! कैसा शरीर था, मैंने कभी आँखों से ऐसा नहीं देखा था। मुझे उसी की याद आ गई !'

कुमुद का मन क्षण-मात्र में पिघल गया। वह खिड़की की ओर तिरछा मुँह किये देखती रही—बाहर का मैदान, वन, आकाश, आँसुओं की भाप से उसे सब धुँधला दिखाई देने लगा।

कुमुद के किस जगह दर्द है, इसे समझने में मोती की माँ को तनिक भी देर न लगी। इसी कारण घुमा-फिराकर वह उसके भैया की ही बातें करने लगी। उसने पूछा—'भैया का ब्याह हो गया है ?'

कुमुद ने कहा—'नहीं तो।'

मोती की माँ बोल उठी—'अरे क्या कहती हो ! ऐसा देवता के समान रूप और अभी तक घर खाली ही है ! वह घर किस भाग्यवती के भाग्य में है।'

कुमुद सोच रही थी—भैया सम्पूर्ण अभिमान को छोड़कर केवल

मेरे लिए ही स्टेशन गये थे। इसके पश्चात् ये लोग जरा देखने भी नहीं गये। केवल धन के मद में इस प्रकार के व्यक्ति की अवज्ञा करने पर उतारू हो गये। उनका शरीर शायद इसी लिए टूट-सा गया है।

कुमुद मन ही मन निरर्थक पश्चाताप के साथ बार-बार यही कहने लगी—'भैया स्टेशन क्यों गये ! अपने को छोटा क्यों बनाया ! मेरे लिए ! मैं मर क्यों न गई !'

जो बात हो चुकी है वह अब लौट नहीं सकती। इसी बात पर उसका मन सिर धुनने लगा। रोग से क्लान्त वह मुख, आशीर्वाद से परिपूर्ण स्निग्ध वे दोनों आँखें—उसे बार-बार याद आने लगीं।

बीसवाँ परिच्छेद

रेलगाड़ी जब हावड़ा पहुँची, उस समय प्रायः चार बज चुके थे। चादर और दुपट्टे में गँठजोड़ बाँधे वर-वधू ब्रूहमगाड़ी में जाकर बैठ गये। कलकत्ता नगर के दिन के प्रकाश में असंख्य आँखें उन्हें घूर रही थीं। उनके सामने कुमुद का शरीर और मन संकुचित बना रहा। इस उन्नीस वर्ष के जीवन में उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में जो महान पवित्रता गहराई के साथ व्याप्त थी, उसे वह किस प्रकार एकाएक हटा दे। बगल में जो आदमी बैठा है वह तो अब भी मन में नहीं प्रवेश कर सका। अब भी बाहर का आदमी है। अपना आदमी बनने में उसकी ओर से केवल बाधाएँ ही पड़ रही हैं। उसके भाव तथा व्यवहार में जो एक कठोरता है, उसने तो कुमुद को अभी तक केवल धक्के दे-देकर दूर ही रखा है। इस मधुसूदन के लिए भी कुमुदिनी एक नवीन आविष्कार के समान है। उसे अभी तक इस बात का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ कि वह स्त्री-जाति का परिचय प्राप्त करे। उसके व्यवसाय-जगत की भीड़ में किसी स्त्री की परछाईं भी उस पर नहीं पड़ी है जिसने उसके मन को कभी विचलित किया हो। मधुसूदन ने स्त्रियों को बहुत सूक्ष्म रूप से देखा है अर्थात् घर की बहू-बेटियों के रूप में, जो घर का काम-धन्धा करती हैं, काना-फूसी करती हैं,

कलह फैलाती हैं, ज़रा-सी बात में रोना-धोना भी शुरू कर देती है। मधुसूदन के जीवन में इन्होंने बहुत थोड़ा प्रवेश किया है। उसकी स्त्री संसार की अन्य गृहिणियों की भाँति उसके घर में जगह पायेगी और उसके इशारों पर चलकर जीवन बितायेगी। कुमुद के विषय में इससे अधिक वह कुछ न सोच सका। स्त्री के साथ व्यवहार करने का भी जो एक कला-नैपुण्य है, उसके भीतर भी मिलने या खाने की कोई कठिन समस्या हो सकती है, यह बात उसके गणितदक्ष मस्तिष्क के एक कोने में भी उदित न हुई थी। जिस प्रकार वृक्षों के लिए तितली व्यर्थ है, फिर भी तितली का संसर्ग वृक्षों को मान लेना पड़ता है, वैसा ही मधुसूदन ने अपनी-भावी पत्नी के विषय में सोचा था।

विवाह के बाद अब पहले-पहल मधुसूदन ने कुमुदिनी को देखा। एक प्रकार का ऐसा सौंदर्य है जो लगता है मानो एक दैवी आविर्भाव है, संसार की साधारण घटना की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़कर है। प्रतिक्षण मानो वह आकांक्षा से परे है। कुमुद की सुन्दरता इसी श्रेणी की है। मधुसूदन ने अपने अचेतन मन में, अपने से अगोचर में कुमुद को एक प्रकार से अपने से बढ़कर समझा। वह सोचने लगा कि इससे किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, कौन सी बात किस प्रकार करनी ठीक होगी। वह क्या कहकर बातचीत आरम्भ करे। यह सोचते-सोचते मधुसूदन सहसा पूछ बैठा—'इधर में धूप आ रही है, क्यों!'

कुमुदिनी ने कुछ भी उत्तर न दिया। मधुसूदन ने दाईं ओर का पर्दा खींचा। कुछ देर शान्ति रही किन्तु बाद में वह बोल उठा—'जाड़ा तो नहीं लगता!' यह कहकर उत्तर की प्रतीक्षा न करके सामने की सीट से विलायती कम्बल खींच कुमुद के और अपने घुटनों पर डाल उसके साथ एक आवरण की सहयोगिता स्थापित की। तन मन सभी पुलकित हो उठे। चौंककर कुमुदिनी कम्बल हटाना ही चाहती थी, सहसा उसने अपने को सँभाला और गद्दी के एक किनारे सकुचाकर बैठी रही।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत हो गया, सहसा मधुसूदन की दृष्टि कुमुद के हाथों पर पड़ी। 'देखूँ' कहते हुए उसका बायाँ हाथ अपनी ओर खींच लिया और बोला—'तुम्हारी अँगुली में यह अँगूठी काहे की है, मुझे यह तो नीलम की जान पड़ती है।'

कुमुदिनी चुप रही।

'देखो, मुझे नीलम नहीं सोहाता, इसे तुम्हें छोड़ना पड़ेगा।'

किसी समय मधुसूदन ने नीलम खरीदा था। उसी समय उसकी एक पटसन भरी नाव डूब गई थी, तभी से नीलम उसकी आँखों में गड़ता सा है।

कुमुदिनी ने धीरे से हाथ छुड़ाना चाहा। किन्तु मधुसूदन ने हाथ न छोड़कर कहा—'इसे मैं निकाल लेता हूँ।'

कुमुद चौंक पड़ी और बोली—'नहीं, रहने दो।'

भैया से शतरञ्ज खेलते समय जब उसकी जीत हुई थी, तब उन्होंने अपने हाथ की अँगूठी उतार कर उसे दी थी।

मधुसूदन मन ही मन हँस पड़ा और कहने लगा—'अँगूठी के ऊपर इतना बड़ा मोह! यहाँ पर अपने साथ कुमुद के साधर्म्य का परिचय पाकर मानो उसे कुछ सुख प्राप्त हुआ। उसने समझ लिया, वक्त-बेवक्त माँग कण्ठहार, कड़े और बाजुओं के द्वारा अभिमानिनी के साथ बातचीत करने का माँग निकट आया करेगा।' इस मार्ग में मधुसूदन का प्रभाव बिना माने दूसरी गति ही नहीं, फिर उनकी आयु चाहे भले ही कुछ अधिक हो।

मधुसूदन ने अपनी अँगुली से एक बहुमूल्य हीरे की अँगूठी उतारते तथा हँसते हुए कहा—'भाई डरो नहीं, इसके बदले में मैं तुम्हें एक और अँगूठी पहनाये देता हूँ।'

कुमुदिनी से अब रहा न गया। कोशिश करके उस हाथ को छुड़ा लिया जिससे मधुसूदन झुँझला उठा। शुष्क कण्ठ से जोर लगाकर बोला—'सुन रही हो, इस अँगूठी को तुम्हें उतारना ही होगा।'

कुमुदिनी का मुखड़ा तमतमा उठा। वह सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

मधुसूदन ने फिर कहा—'सुन रही हो, मैं कहता हूँ, अँगूठी उतार देना ठीक होगा। लाओ, मुझे दो।' कहते कहते कुमुद का हाथ अपनी ओर खींचना चाहा।

हाथ हटाते हुए कुमुद बोली—'मैं उतार लेती हूँ।' यह कहकर उसने अँगूठी उतार ली। मधुसूदन ने कहा—'लाओ उसे मुझे दो।'

कुमुदिनी ने कहा—'इसे मैं ही रख दूँगी।'

झुँझलाकर कुछ कर्कश स्वर से मधुसूदन ने कहा—'रखने से लाभ? सोच रही हो बहुमूल्य चीज है। मैं कह रहा हूँ, तुम इसे किसी भी तरह नहीं पहन सकती।'

'मैं नहीं पहनूँगी।' मोती के बटुए में अँगूठी रखते हुए कुमुदिनी बोली।

'क्यों इस एक जरा-सी चीज पर इतना दुःख क्यों है? तुम्हारा आग्रह तो कम नहीं जान पड़ता।'

मधुसूदन की कर्कश बोली कानों को खटकने वाली है, मानो मरोड़े कागज को कोई पक्की जमीन पर घिस रहा हो। कुमुदिनी की समस्त देह में फुर-फुरी सी फैल गई।

मधुसूदन ने फिर कहा—'यह अँगूठी तुम्हें किसने दी?' कुमुदिनी चुपचाप बैठी रही। मधुसूदन ने कहा—'तुम्हारी माँ ने?'

कुमुदिनी ने यह समझकर कि बिना जवाब दिये काम नहीं चलेगा अतएव उसने अर्द्धस्फुट स्वर में कहा—'भैया ने।'

'भैया ने! यह तो प्रत्यक्ष प्रकट है।' भैया की कैसी दशा है, इसे मधुसूदन भली प्रकार जानता है। यह अँगूठी उन्हीं भैया की शनि-ग्रह का सेंध मारने का शस्त्र है। इस घर में उसका प्रवेश नहीं हो सकता। किन्तु इससे भी बढ़कर उसे यह बात खटक रही है कि अभी तक कुमुद के हृदय में उसके भैया ही सबसे बढ़कर हैं यह स्वाभाविक और सब

है सो बात नहीं। पुराने जमींदार की जमींदारी यदि नया महाजन नीलाम में खरीद लेता है तो उस वक्त भक्तप्रजा प्राचीन कार्यों की बातें स्मरण करके दीर्घ निःश्वास लेती है। इस कारण अधिकारी को यह सब बातें नागवार प्रतीत होती हैं। यही दशा मधुसूदन की भी है। बहुत ही शीघ्र उसे यह विश्वास दिला देना चाहिए कि आज से मैं ही एकमात्र उसका सब कुछ हूँ। इसके अलावा तेलताई के ज्योनार में वर का जो अपमान किया गया है उसमें विप्रदास का हाथ नहीं था, मधुसूदन को इस बात पर किसी भी प्रकार विश्वास नहीं हो सकता। यद्यपि गोपाल ने विवाह के दूसरे ही दिन उससे यह कहा था—'भाई साहब, हल्खेले की आदत से चाल चलन की आमदनी जो ब्याह मण्डप में हुई थी, उसे इशारे में भी भाई साहब से न कहना। उन्हें इसके विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है और उसकी तबीअत बहुत खराब है।'

यद्यपि अँगूठी की बात स्थगित रही किन्तु वह भूली नहीं। सौंदर्य को छोड़ सहसा एक दूसरे कारण से कुमुदिनी की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई है। नूरनगर में रहते ठीक ब्याह के दिन ही मधुसूदन को तार मिला था कि इस बार जो तीसी का काम किया गया है उसमें प्रायः बीस लाख रुपये का लाभ हुआ है। अब इसमें सन्देह न था कि यह सब नई बहू के सौभाग्य से ही है। स्त्री के भाग्य से ही धन आता है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। गाड़ी में कुमुदिनी के साथ बैठे भीतर ही इसका परम सन्तोष था कि भावी मुनाफे की एक जीती जागती भाग्य की दी हुई सनद लिये हुए लौट रहा हूँ। यदि ऐसा न होता तो इस अहम गाड़ी की यात्रा में अपघात हो सकता था।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

राजा की उपाधि मिलने के बाद ही कलकत्ते के घोष भवन के द्वार पर नया नाम 'मधुसूधन' खुद गया है। इसी प्रसाद के लोहे के फाटक के एक ओर आज नौबत बैठाई गई है और बगीचे के भीतर तम्बू में

बैण्ड बज रहा है। अर्द्धचन्द्राकार फाटक में गैस के पाइपों में 'प्रजापतयेनमः।' लिखा है। सायंकाल यह लेख रोशनी की तेजी से प्रकाशमय हो जायगा। ड्योढ़ी से मकान तक जो कङ्करीली लाल सड़क गई है, उसका दोनों किनारा देवदारू की पत्तियों और गेंदे की मालाओं से खूब सजाया गया है। मकान की पहली मञ्जिल की ऊँची जमीन पर चढ़ने की सीढ़ियों पर लाल रङ्ग का कपड़ा बिछा हुआ है। वर वधू की बग्घी मकान के सामने वाले बरामदे में अपने मेहमानों के बीच होती हुई आकर ठहर गई। शङ्ख, उलुध्वनि (मङ्गल ध्वनि), ढोल, ताशा, घण्टा, नौबत घड़ियाल और बैण्ड सब एक साथ ही बज उठे। ऐसा प्रतीत होता था मानो अनेकों प्रकार की आवाज की मालगाड़ियाँ एक जगह जोर से टकरा गई हों। एक परिपक्व वृद्धा जो रिश्ते में मधुसूदन की नानी लगती है, चौड़ी लाल पाड़ की साड़ी, सोने के मोटे मोटे कड़े और शङ्ख की चूड़ियाँ पहने माँग में खूब मोटा सिन्दूर भरकर तथा हाथ में चाँदी का लोटा पानी से भरा हुआ लेकर बग्घी के सामने आ खड़ी हुई। लोटे से बहू के पैरों पर पानी छिड़क उन्हें आँचल से पोंछा। हाथ में 'नोआ' (सुहाग सूचक लोहे की पतली चूड़ी) पहनाया। तदुपरान्त बहू के मुँह में थोड़ा सा मधु देकर बोली—'अहा! हमारे नील गगन में इतने दिनों बाद पूनों का चाँद निकला और साथ ही अब नील सरोवर में सोने का कमल खिल उठा।' इसके पश्चात् दुल्हा-दुल्हन गाड़ी से उतरे। आगन्तुक युवकों की दृष्टि ईर्ष्यान्वित हो गई। एक ने कहा—'अरे! दैत्य स्वर्ग लूट लाया है, स्वर्ग-अप्सरा सोने की जञ्जीर से बँधी है।' दूसरे ने कहा—'प्राचीन-काल में ऐसी लड़कियों के लिए राजाओं में घोर युद्ध हुआ करता था। अब तो तीसी के मुनाफे से ही कार्य सफल हो जाता है। कलियुग में देवता लोग भी व्यावसायिक होते हैं। और भाग्य के ग्रह नक्षत्र भी तो सभी वैश्य वर्ण हैं ही।

शाम होते-होते वरण, स्त्री-आचार आदि वैवाहिक प्रथाएँ समाप्त होने को आईं और बड़ी मुश्किल से काल रात्रि के समय तक सब क्रियाएँ समाप्त हुईं।

कुमुद को केवल एक बड़ी बहन के ब्याह की बात साफ-साफ याद है। पर उसने किसी नई बहू को आते नहीं देखा। यौवनारम्भ के पूर्व ही से वह कलकत्ते में भैया के निर्मल स्नेह के छत्रछाया में रह रही है। बालिका का मानसिक कल्पना-जगत संसार के मोटे ढाँचे में नहीं ढल पाया है। बाल्यकाल में पति की आकांक्षा से जब वह शिवजी की पूजा करती थी, तब उसने पति के ध्यान में उसी रजतगिरिनिभ महा तपस्वी शिवजी को ही देखा है। सती-साध्वी नारी के आदर्श रूप में वह अपनी माँ को जानती थी। कैसी शान्त, स्निग्ध कमनीयता थी, कितना धैर्य दुःख और कैसी देवपूजा, मङ्गलाचरण और अथक सेवा थी। दूसरी ओर उनके (माता के) पति की ओर व्यवहार में त्रुटि थी, चरित्र में स्खलन। इतना सब होते हुए भी चरित्र-उदारता में बड़ा और पौरुष में मजबूत था। उसमें हीनता, कपटता का लेश मात्र भी नहीं था। उनमें जो एक मान-मर्यादा थी, वह मानो सुदूर-काल के पौराणिक आदर्श का था। प्राणों से मान और धन से ऐश्वर्य बड़ा है, यही प्रतिदिन उनके जीवन के अन्दर प्रमाणित होता था। उनकी बराबरी के सभी लोग तथा वे स्वयं भी बड़े पैमाने के आदमी थे। अक्षत संचय के अहङ्कार का प्रचार करना उनके बस की बात न थी किन्तु अपनी हानि करके भी अक्षत-सम्मान के गौरव की रक्षा वे पूर्णरूप से करते थे।

जिस दिन कुमुद की बाईं आँख फड़क उठी, उसी दिन वह अपनी सम्पूर्ण भक्ति को लेकर अपनी उन्नति का पूर्ण संकल्प लिये तैयार खड़ी थी। स्वप्न में भी वह यह न सोच सकी थी कि कहीं भी कुछ बाधा या ओछापन हो सकता है! दमयन्ती ने यह कैसे जान लिया था कि विदर्भ-नरेश नल को मैं वरण करूँगी। ऐसी निश्चय बात उसके मन में पहुँच चुकी थी। क्या कुमुद को ऐसी वार्ता न मिल सकी थी? वरण का सब सामान ठीक है—राजा भी आये, किन्तु मन में जिसे स्पष्ट रूप से देखा है वह बाहर कहाँ दिखाई पड़ा? रूप से भी कुछ बनता बिगड़ता न था, उम्र से भी कुछ हानि न थी। किन्तु वह सच्चा राजा कहाँ?

तत्पश्चात् जिस अनुष्ठान के द्वार से कुमुद आज इस नवीन संसार में आई है उसमें उच्च-स्वर से मङ्गल-ध्वनि क्यों न हुई, जिसमे नववधू गगन के सप्तर्षियों का आशीर्वाद-मन्त्र सुन पाती। समस्त अनुष्ठान को पूर्ण करके वन्दन-गान उच्च-स्वर से क्यों न सुन पड़ा, जिसके भीतर चिर-नारी और चिर-पुरुष अर्थ और वाक्य की तरह एकत्र हुए हैं।

बाईसवाँ परिच्छेद

जब मधुसूदन कलकत्ता में रहने के विचार से आये, तब सबसे पहले ही उन्होंने एक पुराना मकान खरीद लिया था। चौक से सटा हुआ वही मकान आज उनका अन्तःपुर या महल है। उसके बाद उसके समकक्ष कलकतिया फैशन का एक विशाल भवन इसके सामने जोड़ दिया गया है जो बैठक-खाना बन गया। यद्यपि यह दोनों भवन मिले हुए हैं किन्तु फिर भी दो प्रकार के और बिलकुल अलहदे हैं। बाहरी महल में सब जगह सङ्गमरमर बिछा है। उस पर विलायती कालीन है, दीवालों पर रङ्गीन चित्र तथा कागज टँगे हुए हैं, जिनमें कुछ तसवीरें खुदी हुई हैं। कुछ तैल-चित्र और कुछ फोटो इन्लार्ज हैं। जिनके विषय हैं—हिरणों का पीछा करते शिकारी कुत्ते, डबीं की घुड़दौड़ में जीते हुए घोड़े, विदेशी नग्न नहाती हुई औरतें इत्यादि। इसके अतिरिक्त दीवालों पर कहीं मुरादाबादी पीतल की थालें तथा चीनी के बरतन, जापानी पंखे और तिब्बती चँवर इत्यादि अनेकों प्रकार की बेसिलसिले की सामग्रियों का अव्यवस्थित समावेश है। मधुसूदन के अङ्गरेजी असिस्टेण्ट महोदय ही इन सब चीजों को पसन्द करते, खरीदते और सजाया करते हैं। इसके अतिरिक्त सोफे और मखमल तथा रेशम से मढ़ी हुई कुर्सियों की अधिकता है। काँच की आलमारियों में चमकदार जिल्द बँधी अङ्गरेजी किताबें हैं, झाड़ने-

पोंछने वाले नौकर के अतिरिक्त उन्हें कोई भी हाथ नहीं लगाता। एक तिपाई के ऊपर अलबम रक्खे हुए हैं, किसी में घरवालों की तसवीरें हैं, किसी में विदेशी अभिनेत्रियों की।

अन्तःपुर की पहली मञ्जिल के कमरों में अँधेरा रहता है। ठण्डक भी अधिक रहती है। समस्त कमरे जाले और धुएँ से काले पड़ गये हैं। आँगन में बहुत सा कूड़ा-करकट पड़ा हुआ है। पास ही नल है जहाँ बरतन माँजे और कपड़े धोये जाते हैं। अक्सर काम होने पर भी नल खुला पड़ा रहता है, ऊपरी बरामदे से साड़ियाँ नीचे तक लटकती रहती हैं और आँगन में पहाड़ी तोतों की जूठन, जो वे अड्डों पर से गिराते हैं, गिरकर इधर-उधर बिखर रही है। बरामदे की दीवार पर कहीं कहीं पान के पीक के दाग तथा अनेकों प्रकार की मलिनता के अवशेष, स्मृति-चिह्न लग रहे हैं। आँगन के पीछे जो चबूतरा है, उसके परे रसोईघर है जहाँ से रसोई की गन्ध और कोयले का धुआँ कमरे में जाकर सर्वत्र फैल जाता है। रसोईघर से बाहर चहारदीवारी से घिरी हुई थोड़ी सी जमीन है, उसके एक कोने में जले कोयले, चूल्हे की राख, फूटे हुए गमले, बेत की टूटी पुरानी टोकरियाँ और चूल्हे की पुरानी झँझरियों का ढेर लगा है, दूसरे कोने में दो-तीन गाएँ अपने बछड़े सहित बँधी हुई हैं। उनके आस पास पुआल और गोबर पड़ा है और सम्पूर्ण दीवाल कण्डों से छा गई है। एक किनारे पर नीम का पेड़ है जिसमें गायों को बाँध-बाँधकर उसकी छाल को उड़ा दिया है। और लगातार उस पर लग्गी चलाकर पत्ते झाड़ दिये गये हैं, जिससे वह छिन्न-भिन्न दशा में है। अन्तःपुर में बस केवल इतनी थोड़ी सी खाली जमीन है। शेष सब जमीन बाहर की ओर है, और लता मण्डप से विचित्र फूलों की क्यारियों से घास के छटे हुए हरे मैदान से लाल कङ्कड़ और सुर्खी के बने हुए मार्ग से लोहे के बेञ्चों और प्रस्तर-मूर्तियों से सुशोभित है।

अन्तःपुर की तीसरी मञ्जिल पर कुमुदिनी के सोने का कमरा है जिसमें महागनी काठ की एक पलङ्ग बिछी है। उसकी फ्रेम पर जालीदार मसहरी है, जिसमें रेशम की झालर लगी है। बिछावन के पायताने की ओर एक

पूरे माप की नग्न स्त्री का चित्र टँगा है। वह अपनी छातियों को दोनों हाथों से दाबे लज्जा का बहाना सा कर रही है। सिरहाने की ओर मधुसूदन का अपना तैल-चित्र है, उसमें उनके काश्मीरी दुशाले की चित्रकारी अथवा दस्तकारी ही अत्यधिक प्रकाशमान है। दीवाल से लगी हुई एक ओर कपड़ा रखने की दराजदार आलमारी है जिसमें आइना लगा हुआ है। आइने के दोनों ओर शमादान हैं, जो चीनी-मिट्टी के बने हैं। सामने चीनी मिट्टी की रकाबी पर पाउडर का डिब्बा, चाँदी की कङ्घी, तीन चार तरह के एसेन्स और उन्हें छिड़कने की पिचकारी तथा अनेकों प्रकार की और भी सामग्रियाँ रखी हैं जो कि सभी विलायती असिस्टेण्ट की खरीदी हुई हैं। गुलाबी काँच के फूलदान में अनेक शाखायुक्त फूलों का गुच्छा रखा है। दूसरी ओर लिखने की टेबिल है, उसपर कोमती पत्थर का कलमदान और कटे हुए कागज रखे हुए हैं। इधर-उधर मोटे गद्दों वाले सोफे और आराम कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं जिनके बीच बीच में तिपाइयाँ भी हैं और उन पर चाय पी जाती है, यदि चाहें तो ताश भी खेल सकते हैं। नई महारानी के लिए नया शयनकक्ष कैसा होना चाहिए इसे मधुसूदन ने ध्यानपूर्वक सोचा था। अन्तःपुर की ऊपरी मञ्जिल का यह घर उसी प्रकार दीख पड़ता था मानो किसी कथरी ओढ़े भिखारी के सिर पर रत्न-जड़ित जरीदार पगड़ी रख दी गई हो।

दिन में धूमधाम की बाढ़ के अन्त होने तथा शोर गुल के समाप्त होने पर रात को कुमुद उस कमरे में पहुँचा। मोती की माँ उसे ले आई थी, वह उसके साथ आज रात में सोयेगी, यह पहले ही तय हो चुका है। लड़कियों का एक और भी झुण्ड आ रहा था। उनके कौतूहल और मनोरञ्जन का नशा छूटना ही चाहता था—मोती की माँ ने उन्हें बिदा कर दिया है। कमरे में आकर कुमुद के गले में बाहें डालकर उसने कहा—मैं थोड़ी देर के लिए बगल के कमरे में जाती हूँ—आँखों के आँसू तुम्हारे हृदय में जमे जा रहे हैं बहन, तुम थोड़ा रो लो कहते हुए वह चली गई।

कुमुद चौकी पर सोचने लगी—मैं रोऊँगी बाद में, किन्तु अभी तो

मुझे अपने को ठीक करने की सख्त जरूरत है। अपने अपमान को समझ उसका हृदय वेदना से द्रवित हो उठा है—अपने विद्रोही मन पर वह तनिक भी शासन नहीं करने पा रही है। इतने दिनों का संकल्प उसके उल्टी ओर जा रहा है। वह कहती है—भगवान् मुझे बल दो, बल! मेरे जीवन को काला न कर देना। मैं आपकी दासी हूँ, मुझे विजयी बनाओ, क्योंकि वह विजय तुम्हारी ही है।'

एक श्यामवर्ण सुन्दरी विधवा जो सुडौल और पूरी उम्र की है, उसने घर में प्रवेश करते हुए कहा—मोती की माँ के छुट्टी दे देने पर मैं तुम्हारे पास चली आई हूँ। वह किसी को पास भी तो नहीं आने देती, वह तुम्हें सदैव घेरे ही रहती है। मालूम पड़ता है मैं सेंध मारने का हथियार लिये फिरा करती हूँ जिससे बेंड़ा काटकर तुम्हें चुरा ले जाऊँगी। मैं तुम्हारी जिठानी श्यामासुन्दरी हूँ, तुम्हारे दुल्हा मेरे देवर लगते हैं। मैंने तो सोचा था कि अन्त तक आय-व्यय की बही ही उनकी बहू होगी किन्तु उस बही में कुछ जादू है बहन! इतनी आयु में इतनी सुन्दर बहू उसी बही ही की ताकत से तो मिली है, यदि हजम हो जाय तो ठीक है। वहाँ तो बही का मन्तर नहीं चलेगा। सच बताना बहन, 'क्या हमारे बूढ़े देवर पसन्द हैं?'

आश्चर्य में डूबी कुमुद क्या जवाब दे, उसे कुछ समझ न पड़ा। श्यामा कहने लगी—'समझ गई, पर अब होता ही क्या है। पसन्द हों चाहें नहीं, जब सात फेरे लगा चुके तो उल्टे इक्कीस फेरे लगाने से भी गाँठ नहीं खुल सकती।'

कुमुद ने कहा—'क्या कहती हो, जीजी!'

श्यामा ने कहा—'क्यों, साफ-साफ कहने में कौन सी बुराई हो जाती है बहन! क्या चेहरा देखने से मालूम नहीं होता? किन्तु तुम्हें दोष न दूँगी। हमारे घर के हैं, इससे क्या आँखें थोड़े ही फूट गई हैं। बड़े कठोर व्यक्ति से पाला पड़ा है, बहू समझ-बूझकर चलना।'

इतने में मोती की माँ को अन्दर आते हुए देखकर बोली—'बकुल

फूल डरो मत, मैं जाती हूँ। सोचा कि तुम नहीं हो, इस वक्त जरा अपनी नई बहू को देख आऊँ। बात तो ठीक ही है, कजूस का धन है, होशियारी से रखना होगा। सत्तो से मैं कह रही थी कि हमारे देवर को अचकचानो दर्द समझो, बहू को उनके बाएँ ओर के पाने के कपाल ने लिया है यदि दाहिनी ओर के रखने का कपाल भी रख सके तब कहीं पूर पड़ेगी।'

यह कहते हुए तेजी से वह घर से निकल गई और तुरन्त ही लौटकर कुमुद के आगे पान की डिबिया खोलकर बोली—'लो, खाओ, तम्बाकू खाने की आदत है!'

कुमुद ने उत्तर दिया—'नहीं।'

श्यामासुन्दरी ने डिबिया में से एक चुटकी तम्बाकू निकालकर मुँह में डाल ली और धीमी चाल से बाहर चली गई।

'मैं अभी आई, थोड़ा बड़ी मोती को खिलाकर बिदा कर आऊँ। देर न करूँगी।' कहकर मोती की माँ चली गई।

श्यामासुन्दरी ने कुमुद की हृत्तन्त्री में एक बड़ी भारी स्वादहीन बात जगा दी। आज सब से अधिक जरूरत थी कुमुद को माया के आवरण की। और उसी को अपने मन में वह गढ़ने बैठी थी। साथ ही लोक-लोकान्तर में जो सृष्टिकर्ता अनेकों रङ्ग लिये रूप की लीला करते हैं उन्हें भी सहायक बनाने की कोशिश कर रही थी। इतने ही में श्यामा ने आकर उसके स्वप्निल बुरे जाल पर आघात किया। जोर से आँखें मींचकर कुमुद अपने को कहने लगी—'पति की आयु अधिक है, इस कारण उन्हें प्रेम नहीं करती, यह बात कभी सच नहीं हो सकती, शर्म आती है। यह तो तुच्छ स्त्रियों का काम है।' क्या शिवजी के साथ सती के सम्बन्ध की बात उसे याद नहीं! शिवजी के निन्दकों ने उसकी आयु के बारे में ताना मारा था, किन्तु उसे सती ने सुनी-अनसुनी कर दी थी।

कुमुद ने पति की आयु या रूप के बारे में अब तक कोई भी चिन्ता

न की थी। जिस प्रेम को लेकर पुरुष स्त्री का साधारणतः विवाह सत्य होता है यह बात कुमुद ने कभी न सोची थी। जिसमें रूप, गुण, देह, मन सभी मिला हुआ है, उसकी क्या आवश्यकता है। पसन्द करके वर लेने की बात को ही वह रङ्ग पोत कर दबा देना चाहती है।

एक छः सात वर्ष की आयु का बालक फूलदार कोट और जरी पाढ़ की धोती पहने उसी समय आकर कुमुद की देह से सट कर खड़ा हो गया। बड़ी-बड़ी मुग्धकारी आँखों से कुमुद के मुँह की ओर देखकर डरते-डरते मीठे स्वर में कहा—'ताई जी!' कुमुद ने उसे गोद में खींच कर कहा—'क्यों बेटा! तुम्हारा क्या नाम है?'

नाम के आगे पीछे एक पुछल्ला-सा लगाकर उस बालक ने कहा—'श्री मोतीलाल घोष।'

सभी उसे 'हाबलू' कहकर पुकारते हैं किन्तु अब उसने इस नाम को अनुपयुक्त और अपमानजनक समझ अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपने पिता का रक्खा हुआ नाम बताया। उस समय कुमुद के दिल में पके फोड़े की तरह टीस उत्पन्न हो रही थी। इस लड़के को छाती से लगाकर जैसे वह जी गई! उसे ऐसा जान पड़ने लगा मानो वे ही गोपाल उसकी गोद में आ बैठे हैं जिन्हें वह इतने दिनों मन्दिर में फूल चढ़ाती आई है। जिस वक्त वह उन्हें बुला रही थी ठीक उसी काल में ही आकर उन्होंने कहा—'यह देख मैं ही तो हूँ। तेरी सान्त्वना।' कुमुद ने मोती से प्यार से कहा—'गोपाल लाल लोगे?'

कुमुद के मुँह से गोपाल के अतिरिक्त कोई अन्य नाम न निकला। सहसा अपने नाम में कुछ अन्तर जान उसे आश्चर्य हुआ किन्तु ऐसे आकर्षक शब्द के कारण उसे कोई आपत्ति नहीं हुई।

कुछ ही देर बाद लड़के की बोली सुनकर मोती की माँ दौड़ी हुई आई और बोली—'क्यों रे लंगूर, तू यहाँ भी पहुँच गया!' दाहिने हाथ से ताई के आँचल को दाब अपने 'श्री मोतीलाल घोष' के नाम को खोकर शिकायत भरी दृष्टि से चुपचाप माँ की ओर ताकने लगा। हाबलू

को अपने बाएँ हाथ से घेर कर कुमुद ने कहा—'नहीं, नहीं, रहने दो।'

'नहीं बहन, रात अधिक जा चुकी है। इसे अब जाकर सोने दो। इस घर में इसके समान कोई भी लड़का तुम्हें सस्ता न दिखाई पड़ेगा। इसे इस घर में तुम बड़ी सरलता से पा जाया करोगी।' इतना कहते हुए लड़के की इच्छा न होने पर भी उसे सुलाने ले गई। केवल इतने ही से कुमुद के मन का भार हलका हो गया। उसे मालूम हुआ, मानो प्रार्थना का उसे जवाब मिल गया। इसी छोटे बच्चे की तरह जीवन-समस्या अब सरल होकर दिखाई देगी।

तेईसवाँ परिच्छेद

रात अधिक बीत चुकी थी, अचानक मोती की माँ की नींद खुल गई थी। देखा तो कुमुद उठकर अपने बिस्तर पर बैठ गई। दोनों हाथ जोड़कर गोद में रख लिये हैं। उसके ध्यानमग्न नेत्र जैसे किसी को सामने खड़े देख रहे हैं। मधुसूदन को अपने हृदय में विराजमान करने में ज्यों-ज्यों बाधा आती जाती है, त्यों-त्यों वह अपने को देवता द्वारा पति को घेरे रहना चाहती है। स्वामी को उपलक्ष्य करके वह अपने को देवता को दान करना चाहती है। यह प्रतिमा स्वच्छ नहीं है, देवता ने उसकी पूजा बड़ी कठोर कर दी है, किन्तु यही तो भक्ति की परीक्षा है। शालिग्राम की मूर्ति में कुछ दिखाता नहीं किन्तु भक्ति के कारण उसके भीतर जो वैकुण्ठनाथ का रूप प्रकट होता है, वह केवल भक्ति का फल है। मेरी यही तो साधना है कि जहाँ वह दिखाई नहीं पड़ते, वहीं देखूँगी। ईश्वर मुझे धोखा नहीं दे सकते, वे जहाँ छुपे रहेंगे, वहीं जाकर मैं उनके चरणों पर अपने को दान करूँगी।'

भैया से सीखे हुए मीराबाई के 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।' गीत को वह बार-बार मन में गाने लगी।'

मधुसूदन का अति कठोर परिचय जो उसे प्राप्त हुआ, उसे वह कुछ नहीं कहकर पानी के बुदबुदे के समान उड़ा देना चा.ती है। चिरकाल

के जो सत्य हैं वे ही तो सब कुछ आवृत किये हुए हैं 'दूसरा कोई नहीं !' इसके अतिरिक्त और एक जो दूसरी व्यथा है उसे भी यह माया ही समझती है, जो कि उसके जीवन की शून्यता है। जिसके कारण यह भी बना है तथा जिसे छोड़ देने पर उसके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं रह जाता। सो उनके साथ यह विच्छेद ! यह अपने को समझती है तथा यह शून्यता भी अपूर्ण नहीं।

माँ-बाप ने यद्यपि मुझे छोड़ दिया है किन्तु उनके भीतर जो चिर-काल के हैं, उन्होंने तो छोड़ा नहीं। प्रभु ! जो कुछ छुड़ाना चाहो छुड़वा लो। तुमने शून्यता को भरने के लिए ही यह कृत्य किया है। अब चाहे जो कुछ भी हो किन्तु मेरी लगन तो तुम्हीं में है। मन का गान उसके कण्ठ में खिल उठा—उसे इसका पता भी नहीं। साथ ही उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

शान्त भाव से मोती की माँ चुपचाप यह सब देखती रही। बहुत देर तक नमस्कार करके गहरी साँस लेकर जब कुमुद सो गई तब मोती की माँ के मन में एक चिन्ता-सी दिखाई देने लगी जिसे उसने पहले कभी सोचा न था।

वह सोचने लगी—जब मेरी शादी हुई, उस समय तो मैं छोटी-सी बच्ची थी। 'मन' कहलानेवाली कोई चीज थी ही नहीं। पति-गृहस्थी ने मुझे उसी प्रकार अपने मुँह में रख लिया जैसे छोटा बच्चा किसी फल को बिना विचारे अपने मुँह में ठूँस लेता है। मुझे तनिक भी खटका न हुआ। मैं साधना करके तो ली न गई थी, हाँ मुहूर्त शोधन भले ही आवश्यक था। 'आज सुहागरात है' यह जिस दिन कहा गया उसी दिन सुहागरात हुई। सुहागरात का अर्थ सिवा एक खेल के कुछ न था। कल ही सुहागरात है किन्तु इस लड़की के लिए यह बड़ी विडम्बना है, कारण सेठजी अभी पराये हैं, इस तक कैसे पहुँचेंगे, अपने होने में कुछ समय लगता है। यह लड़की उस अपमान को कैसे सह सकेगी। जेठ जी को धन पाने में कितना समय लग गया किन्तु मन पाने में उन्हें दो

दिन का सब्र न होगा। इस लक्ष्मी के द्वार पर तो दौड़ते-दौड़ते जान की बाजी लगा चुके हैं, किन्तु इस लक्ष्मी के द्वार पर तो एक बार हाथ ही न फैलावेंगे!

कुमुद को मोती की माँ हृदय से चाहती है। चाहे यह सब बातें मोती की माँ के मन में न आतीं किन्तु उसका यही कारण है कि कुमुदिनी को देखते ही उसने उसे अन्तःकरण से अपना लिया है। स्टेशन के ऊपर ही जब उसने विप्रदास को देखा था तभी से प्रेम की पूर्व भूमिका हो गई थी। मानो महाभारत से भीष्म उतर आये हैं, उनकी शूरवीर के समान तेजस्वी मूर्ति थी। तपस्वी के सदृश्य शान्त मुख श्री थी और साथ ही साथ एक विषाद भरी नम्रता भी उनमें मौजूद थी। मोती की माँ के मन में एक बार आया कि यदि कोई कुछ कहे न, तो वह जाकर एक बार उनके पैरों को छू आवे। वह उस रूप को आज तक न भूल सकी। इसके पश्चात् जब उसने कुमुद को देखा तो मन ही मन बोल उठी—'है तो अपने भाई की बहन!'

जाति-भेद यदि किसी प्रकार का है तो रक्त का है, वह भी समाज का नहीं, वह जाति किसी प्रकार तोड़ी नहीं जा सकती। यह जो रक्तगत जाति का असमञ्जस्य है यह स्त्री को जिस प्रकार चुभो-चुभोकर मारता है; उस प्रकार पुरुष को नहीं। अल्प-आयु में मोती की माँ की शादी हुई थी इस कारण वह अपने में इस रहस्य को न समझ सकी थी। किन्तु उसने कुमुद के भीतर जाकर इस बात का निश्चय रूप में अनुभव किया। उसकी देह में मानो फुर-फुरी सी उठने लगी, मानो उसने एक विभीषिका का चित्र देखा। जहाँ एक अपरिचित जीव अपनी लालायित जीभ लटकाये शान्त भाव से सिकुड़ा बैठा है, कुमुदिनी उसी अँधेरी गुफा के सामने खड़ी हो देवता को पुकार रही है। मोती की माँ क्रोध में आकर मन ही मन बोल उठी—'देवता के मुँह पर खाक! हाय रे! जिस देवता ने उसे आफत से घेर दिया, वही उसका उद्धार करेगा!

चौतीसवाँ परिच्छेद

कुमुद को दूसरे दिन सवेरे ही भैया का तार मिला—'भगवान् तुम्हें आशीर्वाद दें।' तार के कागज को उसने अपनी कुर्ती में छाती के पास रख लिया। इस तार में जैसे भैया के दाहिने हाथ का स्पर्श था, किन्तु भैया ने अपना कुछ भी हाल क्यों न लिखा, क्या बीमारी बढ़ गई! भैया का सब हाल प्रतिक्षण जो प्रत्यक्ष देखा करती थी आज उसे ही वह बिलकुल नहीं जान सकती।

घर में आदमियों की भीड़ से मेला-सा लगा है, क्योंकि आज सुहागरात है। घर की सभी स्त्रियाँ दिन भर कुमुद को हिलाती डुलाती रहीं। किसी भी तरह उसे थोड़ा-सा भी अकेले न रहने दिया यद्यपि आज अकेले रहने की बड़ी ज़रूरत थी।

सोने के कमरे के समीप ही स्नान-गृह है, जहाँ नहाने का नल है और स्नान के लिए उसमें झंझरी लगी हुई है। ज़रा-सा मौका मिलते ही कुमुद बक्स से भगवान् की युगल जोड़ी का चित्रपट निकाल कर स्नान-गृह में घुस गई और भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया। पत्थर की सफेद जल-चौकी पर चित्र रखकर और उसके सामने ज़मीन पर बैठकर अपने मन में बार-बार कहने लगी—'मैं तुम्हारी ही हूँ, आज तुम्हीं हो, तुम्हीं तो हो। मेरे जीवन में तुम्हारा युगलरूप प्रकट हो।'

डॉक्टरों ने कहा कि विप्रदास का इनफ्लुएञ्जा निमोनिया में बदल गया है। गोपाल सोहागरात की सौगात भेजने का इन्तज़ाम करने अकेले ही कलकत्ता आये। खूब धूमधाम के साथ सौगात भेजी गई। विप्रदास यदि स्वयं होते तो इतना आडम्बर न करते।

कुमुद के ब्याह में उसकी चारों बड़ी बहनों को बुलाया गया था किन्तु बदनामी सी फैल गई थी कि घोष खानदान वाले अच्छे ब्राह्मण नहीं हैं। इसलिए उनके घर वाले उन्हें इस ब्याह में भेजने के लिए किसी भी तरह राज़ी न हुए। कुमुद की तीसरी बहन पति से लड़-झगड़

यदि किसी प्रकार विवाह के दूसरे दिन कलकत्ते आई भी तो गोपाल ने उससे कह दिया—'उनके यहाँ यदि तुम जाओगी तो हमारी इज्जत में बट्टा लगेगा।' ब्याह में रात वाली बात को वे अभी भी भूल न सके हैं। इसी कारण निमन्त्रण की रक्षा के लिए एक बुढ़िया के साथ कुछ इधर-उधर की छोटी लड़कियों को भेज दिया। कुमुद ने समझा कि अभी तक समझौता नहीं हुआ और शायद कभी होगा भी नहीं।

कुमुद नये नये वस्त्रों और गहनों से लाद दी गई। जिनके साथ हँसी दिल्लगी का रिश्ता था; उनकी हँसी-दिल्लगी भी समाप्त हो गई। अब मेहमानों को खिलाने-पिलाने की बारी है। मधुसूदन ने पहले ही कहला रखा था कि कल हमें बहुत काम करना है; इस कारण अधिक रात न होने पावे। नौ बजते ही आज्ञानुसार नीचे के आँगन से जोर का घण्टा बज उठा। बस अब एक मिनट भी नहीं। समय को इधर-उधर करने का किसी में सामर्थ्य न था। सभा भङ्ग हो गई, आकाश से बाज की छाया देखकर जो दशा कबूतर की होती है, उसी भाँति कुमुद का हृदय काँपने लगा। उसका ठण्डा हाथ पानी से तर हो गया है, मुँह फीका पड़ गया है। वह कमरे से बाहर निकलते ही मोती की माँ का हाथ थामकर बोली—'मुझे थोड़ी देर के लिए जरा कहीं ओट में ले चलो और दस मिनट मुझे वहाँ अकेली रहने दो।' मोती की माँ झटपट उसे अपने सोने के कमरे में ले गई। बाहर से दरवाजा बन्द कर वह बाहर ही खड़े-खड़े आँचल से अपनी आँखें पोंछती हुई बोली—'तेरा ऐसा भाग्य!'

दस पन्द्रह मिनट बीत गये। आदमी आया और बोला—'दूल्हा सोने के कमरे में पहुँच गया, दुलहिन कहाँ है?' मोती की माँ बोल उठी—'इतनी जल्दी क्या है, बहू कपड़े-गहने न उतारे!' मोती की माँ यथाशक्ति उसे समय देना चाहती है। अन्त में जब वह समझ गई कि अब ठीक नहीं है तो उसने दरवाजा खोल दिया, और देखा तो बहू जमीन पर बेहोश पड़ी है। शोर गुल मच गया, सहारे से उठा कर बिस्तर पर लिटाई गई। उसके ऊपर कोई पङ्खा करने लगी; तो कोई

उसके ऊपर पानी के छींटे मारने लगी। कुछ देर पश्चात् जब कुमुद को होश आया तो वह यह न समझ सकी कि मैं कहाँ पर हूँ। पुकार उठी—'भैया!' शीघ्रता-पूर्वक उसके मुख के पास मोती की माँ ने मुँह ले जाकर कहा—'डरो नहीं जीजी, मैं तो यहाँ मौजूद हूँ।' यह कहकर उसका मुँह अपनी ओर खींच उसे छाती से चिपका लिया और सबसे कहा—'तुम लोग भीड़ न लगाओ, मैं इन्हें लेकर अभी आता हूँ!' फिर कुमुद के कान में कहने लगी—'डरो मत बहन, डरो मत!' तत्पश्चात् कुमुद धीरे से उठी और मन ही मन ईश्वर को नमस्कार किया।' पास ही दूसरे बिछौने पर मोती घोर निद्रा में पड़ा सो रहा था। उसके पास आकर कुमुद ने उसका माथा चूमा। कुमुद को मधुसूदन के कमरे तक पहुँचा मोती की माँ ने पूछा—'अब भी डर लगता है जीजी?'

हाथ की मुट्ठियों को जरा कड़ी करके कुमुद ने हँसते हुए कहा—'नहीं तो, मुझे डर नहीं लगता। और मन ही मन बोली—'मेरा यही अभिसार है, बाहर अन्धकार है और भीतर प्रकाश।'

पच्चीसवाँ परिच्छेद

इतने ही में श्यामासुन्दरी हाँफती हुई मधुसूदन के पास आई और कहने लगी—'बहू को मूर्छा आ गया है।' मधुसूदन का मन जल उठा, उसने कहा—'उसे क्या हो गया है?'

'मैं यह नहीं कह सकती, भैया-भैया करके बावली हो रही है। हाँ, तुम उसे जरा देखने चलोगे?'

'क्या होगा! मैं उसका भैया तो हूँ नहीं।'

'देवर जी, बेमतलब का गुस्सा क्यों करते हो, ये सब बड़े घर की लड़कियाँ हैं। जरा देर से वश में आयेंगी।'

'रोज-रोज वे मूर्छित हुआ करें और मैं उनके सिर पर हकीमी तेल की मालिश किया करूँ—क्यों, इसीलिए तो मैं उन्हें ब्याह के लाया

हूँ न !'

'देवर जी, तुम्हारी बात से मुझे हँसी आती है। हाँ, तो इसमें बुराई क्या है, हमारे वक्त में तो बात-बात में मानिनियों को मनाना पड़ता था। अब तो केवल मूर्छा ही छुड़ाना पड़ेगा।'

मधुसूदन शान्त भाव से चुप बैठा रहा। करुणा से विगलित हो पास में आकर श्यामासुन्दरी ने हाथ थामकर कहा—'देवर जी, इतना अप्रसन्न मत होओ, वह मुझसे सहा नहीं जाता।'

पहले श्यामासुन्दरी में इतना साहस न था कि वह मधु के पास जाकर उसे धैर्य बँधाती। वह मधुसूदन के सामने बिलकुल ही चुप रहती, वह भली प्रकार जानती थी कि उन्हें अधिक बातें सह्य नहीं हैं। स्त्री सुलभ सरल बुद्धि से उसे यह समझने में तनिक भी देर न लगी कि मधुसूदन आज वह मधुसूदन नहीं है। आज उसमें दुर्बलता है, अपने सम्मान के बारे में आज उतनी सावधानी उसमें नहीं है। देवर के हाथ में हाथ मिलाने से उसे साफ-साफ मालूम हो गया कि वह उनको बुरा नहीं लगा, उनके अभिमान पर नव-वधू ने जो एकाएक ऐसी चोट पहुँचायी है, भीतर ही भीतर मानो चिकित्सा द्वारा उन्हें आराम सा पहुँच रहा है! श्यामासुन्दरी उनका अनादर नहीं करती है, यह तो बिलकुल उनको प्रत्यक्ष ही है। श्यामा क्या कुमुद से कम सुन्दर है! यद्यपि रङ्ग उसका साँवला है किन्तु फिर भी उसकी भोली आँखें, उसके बाल और उसके रसीले ओठ!

श्यामा बोल उठी—'वह देखो, बहू आ रही है। अब मैं जा रही हूँ, किन्तु देखना, उससे गुस्सा-गुस्सी न करना। देखो, अभी बेचारी लड़की ही तो है।'

जैसे ही कुमुद घर में घुसी मधुसूदन से रहा न गया, वे बोल उठे—'क्यों, मायके से मूर्च्छा का अभ्यास कर आई हो किन्तु हमारे यहाँ इसका चलन नहीं, तुम्हें यह नूरनगरी चाल [illegible]ड़ना पड़ेगा।'

एक बात भी न कह कुमु[illegible]नी शान्त भाव से पति के मुँह को देखती

हुई खड़ी रही।

उसकी मौनता से मधुसूदन और भी क्रोधित हो उठा। उसके मन के अन्तःस्थल में इस बालिका का मन पाने के लिए एक प्रबल इच्छा सी उत्पन्न हुई है—इसी कारण उसका तीव्र निष्फल क्रोध इतना भड़क उठा है। वह बोला—'मैं काम-काज वाला आदमी हूँ, मेरे पास वक्त तथा फ़ुरसत बहुत कम है। हिस्टीरिया वाली स्त्री के लिए खिदमतगारी करने का वक्त भी मेरे पास नहीं है, मैं यह साफ-साफ बताये दे रहा हूँ।'

कुमुद धीरे से बोली—'तुम मुझे अपमानित करना चाहते हो? मुझे हार माननी पड़ेगी। तुम्हारे अपमान को मैं हृदय में न लाऊँगी।'

यह सब बातें कुमुद किससे कह रही है, उसके विस्फारित नेत्रों के सामने कौन खड़ा है? मधुसूदन दङ्ग रह गया और सोचने लगा—यह स्त्री लड़ती क्यों नहीं, इसका क्या इरादा है!'

मधुसूदन फिर बोल उठा—'तुम अपने भैया की चेली हो किन्तु भली-भाँति याद रखना मैं तुम्हारे भैया का महाजन हूँ, उसे एक बाजार से खरीद कर दूसरे में बेच सकता हूँ।'

बस मूढ़ को और कोई दूसरे शब्द न मिले जिससे वह प्रत्यक्ष प्रकट कर देता तथा कुमुद के मन में यह बात अङ्कित कर देता कि वह उसके भैया से श्रेष्ठ है।

कुमुद ने कहा—'देखो, यदि निष्ठुर बनते हो तो भले ही बनो, किन्तु छोटे मत बनो।' यह कह कर वह सोफे पर बैठ गई।

कर्कश स्वर में मधुसूदन तड़प उठा—'क्या कहा, मैं छोटा हूँ और तुम्हारा भैया मुझसे बड़ा है!'

कुमुद ने कहा—'तुम्हें बड़ा जानकर ही तो तुम्हारे घर आई हूँ।'

मधुसूदन ने फिर व्यंग्य-स्वर में कहा—'बड़ा जान अथवा रुपये के लोभ से?'

इसके बाद कुमुदिनी सोफे पर से उठ बाहर निकल गई और खुली हुई छत पर जाकर जमीन पर बैठ गई।

कलकत्ते में जाड़ों की कजूस रात होती है। वह धुएँ और कुहरे से धुँधली पड़ गई है। अप्रच्छन्न आकाश तथा तारों का प्रकाश ऐसा प्रतीत होता है मानो बैठे हुए गले का स्वर हो। कुमुद का मन अनुभूति-शून्य हो रहा था, उसे कोई चिन्ता नहीं, किसी प्रकार की वेदना नहीं, मानो वह एक घने कुहरे में विलीन-सी हो गई है।

मधुसूदन को स्वप्न में भी यह विचार न आ सका था कि कुमुदिनी इस प्रकार चुपचाप कमरे से बाहर निकल कर चली जायगी। अपनी इस हार पर उसे सबसे अधिक क्रोध कुमुद के भैया पर आया। चौकी पर बैठे हुए उसने शून्य आकाश की ओर दाहिने हाथ का घूँसा तान कर उठाया और कुछ देर बैठा रहा, किन्तु बाद में धैर्य न रख सका, भड़भड़ा कर उठ बैठा और उठ कर छत पर जा कुमुदिनी के पीछे खड़ा होकर कहा—'बड़ी बहू!'

कुमुद चौंक पड़ी और घूमकर खड़ी हो गई।

'बाहर जाड़े और ओस में यहाँ खड़ी-खड़ी क्या कर रही हो? चलो भीतर।'

कुमुदिनी बिना किसी सङ्कोच के मधुसूदन के चेहरे की ओर देखती रही। मधुसूदन में जो कुछ भी प्रभुत्व का जोर था समाप्त हो चुका था। कुमुद के बाएँ हाथ को धीरे से थाम कर बोला—'आओ, भीतर चलो।'

कुमुद के दाहिने हाथ में भैया वाला आशीर्वाद का टेलीग्राम था, उसको उसने छाती से लगा लिया। उसने पति के हाथ में से अपने हाथ को खींचा नहीं बल्कि चुपचाप धीरे-धीरे सोने के कमरे में चली गई।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन प्रातःकाल ही जब कुमुद बिछौने पर उठ बैठी, उस समय उसके पति सो रहे थे। कदाचित् मन न बिगड़ जाय; उसने उनके मुँह की ओर न देखा। बड़ी ही सावधानी से उठी। उठकर पैरों

के पास जा प्रणाम किया और फिर स्नानगृह में चली गई। नहा-धो चुकने पर खिड़वाड़े का दरवाजा खोल छत पर जा कर बैठ गई। उस समय पूर्व की ओर कुहरे को चीरकर आकाश पर एक सुनहरी रेखा चमक रही थी।

दिन चढ़ा और धूप निकल आई, कुमुद ने धीरे-धीरे चल कर सोने के कमरे में प्रवेश किया। देखा—उसके स्वामी उठकर चले गये हैं। आइने के दराज पर उसका मोती का बुना हुआ बटुआ रखा था। उसने भैया का तार रखने को जब उसे खोला तो उसने देखा कि इसमें नीलम की अँगूठी नहीं है।

प्रातःकाल मानस-पूजा के बाद उसके मुख पर जो एक शान्ति का भाव आया था, क्षण-मात्र में वह विलीन हो गया। आँखों में आग जल उठी। मोती की माँ कुछ मिठाई और दूध का कलेवा कराने के लिए जब उसे बुलाने आई तो कुमुद के मुँह से एक भी शब्द न निकला। वह जैसे कठिन पत्थर की मूर्ति-सी बन गई।

डरते हुए मोती की माँ समीप आकर बैठ गई और पूछने लगी—'क्या हुआ बहन?' कुमुद के मुँह से एक भी बात न निकली, उसके ओठ काँपने लगे।

जीजी! मुझे बताओ तो सही, तुम्हारे कहाँ पर पीड़ा पहुँची है?'

रुँधे हुए कण्ठ से कुमुद बोली—'ले गये हैं चुराकर।'

'क्या ले गये जीजी!'

'मेरी अँगूठी, मेरे भैयाके आशीर्वाद की दी हुई अँगूठी।'

'कौन ले गया!'

खड़ी होकर बिना किसी का नाम बताये ही कुमुद ने बाहर की ओर इशारा किया।

'बहन शान्त हो। तुम्हारे साथ हँसी की होगी, फिर लौटा देंगे।'

'मैं अब न लूँगी, देखूँ वे मेरे साथ कितना अत्याचार कर सकते हैं!'

'अच्छा, यह सब पीछे होगा। चलो, अभी जरा मुँह में तो कुछ डाल लो।'

'नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा। मेरे गले में यहाँ का खाना उतरेगा ही नहीं।'

'लक्ष्मी बहन ! ऐसा न कहो, मेरी खातिर से तो तुम्हें खाना होगा।'

'मैं एक बात पूछती हूँ, आज से मेरी अपनी कहने को तो कोई चीज अब रह ही नहीं गई ?'

'नहीं, नहीं रह गई। जो कुछ भी है, सभी स्वामी की इच्छा पर। क्या तुम्हें यह विदित नहीं, पत्र के अन्त में 'दासी' लिखकर हस्ताक्षर करने पड़ेंगे ?'

'सत्यवान की सावित्री क्या दासी थी ? या उत्तर रामचरित की सीता ?'

कुमुद ने कहा—'स्त्रियाँ जिनकी दासी हैं वे किस जाति के मनुष्य हैं ?'

'तुम उन्हें अभी अच्छी तरह पहचान नहीं पाई हो, वे दूसरे से ही गुलामी करवाते हैं, सो भी नहीं—वे अपनी गुलामी स्वयं करते हैं। वे जिस दिन आफिस नहीं जा सकते, उस दिन उनके अपने निजी हाथ-खर्च के रुपये कट जाते हैं। एक दिन बीमारी में महीनों हाथ खर्च बन्द रहा। उसके दो-तीन महीने तक खाने-पीने का खर्च घटाकर नुकसान बराबर कर लिया। मैं इतने दिनों से घर-गृहस्थ का काम चला रही हूँ इसी कारण मेरा भी माहवारी बँधा है। किसी को वे आत्मीय स्वजन नहीं मानते। इस घर में नौकर-नौकरानी तो गुलाम हैं ही, स्वयं मालिक भी गुलामी से नहीं छूट सके हैं।'

कुमुद कुछ देर चुप रह कर बोली—'मैं वही गुलामी करूँगी। मैं अपने खाने-पहनने के खर्च के अनुसार नित्यप्रति अपना फर्ज अदा करती रहूँगी। मैं इस घर में बिना वेतन की जो बाँदी होकर रहूँ, यह

मुझ से होना असम्भव है। चलो, मुझे काम पर भरती कर लो। घर-गृहस्थी का भार तो तुम्हारे ही ऊपर है—तुम अपनी अधीनता में मुझ से काम करा लिया करो। केवल इतना ही खयाल रखना कि कोई हमें 'रानी कह कर मेरी हँसी न उड़ाने पावे।'

कुमुद की ठोढ़ी पकड़ कर मोती की माँ ने हँसते हुए कहा—'तो फिर तुम्हें मेरी बात माननी पड़ेगी। मैं अब कहती हूँ, चलो अब खाने चलो।'

घर से निकलते हुए कुमुद ने कहा—'देखो बहन! मैं अपने को देने के लिए ही तैयार होकर आई थी किन्तु उन्होंने किसी भाँति देने ही नहीं दिया। मुझे पाना अब दूर है। वे दासी को लेकर रहें।'

मोती की माँ ने फिर कहा—'लकड़हारा पेड़ ही को काटना जानता है और उसे लकड़ी ही मिलती है, वह पेड़ नहीं पा सकता। माली पेड़ की रक्षा करना जानता है और उसे फल और फूल ही मिलते हैं। तुम लकड़हारे के पाले पड़ी हो। उनके मन में कहीं भी दर्द नहीं है, वे तो रोजगारी मनुष्य हैं।'

कुमुद ने सोने के कमरे में लौट कर देखा कि उसकी तिपाई पर 'लौजेञ्जस' की एक शीशी रखी है। यह सब हाबलू ही की करतूत थी, वही उसे यहाँ रख कहीं चुपके से दुबक गया है। यहाँ पत्थर के सङ्ग में भी फूल खिलते हैं। बालक की इस 'लौजेञ्जस' की भाषा में उसे हँसी और रुलाई दोनों आ गई। वह बच्चे को ढूँढ़ने के लिए बाहर निकली। उसने देखा बच्चा दरवाजे की आड़ में चुपचाप खड़ा है। माँ ने उसे उस कमरे में जाने से रोक रखा था। उसे यह डर था कि किसी कारण मालिक नाराज न हो जायँ। अपने निजी किसी खास काम से यदि किसी को उनके पास जाना पड़ता था तो भले ही वह उनके कमरे में जाता, नहीं तो घर के किसी भी प्राणी को हिम्मत निःप्रयोजन जाने की न पड़ती थी।

कुमुद हाबलू को पकड़कर कमरे में ले गई और उसे गोद में बैठा

लिया फिर कमरे के भीतर सजावट की चीजों में जो खिलौने के समान थे, उसे दोनों हिलाने डुलाने लगे। कुमुद समझ गई कि यह (पेपरवेट) कागज दबाने की काँच हाबलू को पसन्द है। हाबलू के मन में यह बात नहीं आ रही है कि काँच के भीतर रंगीन फूल किस प्रकार दिखाई पड़ रहा है—इसी से वह दङ्ग रह गया है।

कुमुद ने कहा—'इसे लोगे गोपाल ?'

उसने अपनी आयु में कभी भी ऐसी अचिन्तनीय बात नहीं सुनी। वह ऐसी चीज की भी क्या कभी आशा कर सकता है ? सङ्कोच तथा आश्चर्य से वह कुमुद के मुँह की ओर देखता रहा।

कुमुद ने कहा—'इसको तुम ले जाना, भला !'

मारे खुशी के हाबलू फूला न समाया—उसे उलटता हुआ हाथ में लेकर चट से भाग गया।

शाम के वक्त हाबलू की माँ ने आकर कहा—'तुमने यह क्या किया बहन; हाबलू के हाथ में जेठ जी ने पेपरवेट (कागज दबाना) देखकर तो गजब कर दिया। उन्होंने उससे वह छीन तो लिया ही, बेचारे को चोर कहकर पीट डाला। लड़का भी ऐसा है, तुम्हारा नाम तक न लिया। तुम कभी यह भी सुनोगी कि हाबलू को चोरी करना तुम्हीं सिखाती हो !'

कुमुद काठ की मूर्ति के समान कठोर बनी रही।

इतने में बाहर जूते की आवाज सुनाई पड़ी। मधुसूदन आ रहा है। मोती की माँ झटपट वहाँ से भाग गई। काँच के पेपरवेट को हाथ में लिये हुए मधुसूदन कमरे में आया और जहाँ का तहाँ सजाकर रखते हुए शान्त गम्भीर-स्वर में बोला—'हाबलू तुम्हारे घर से यह चुराकर ले गया था, चीजों को जरा सावधानी से रखना सीखो।'

तीखे स्वर में कुमुद बोली—'उसने चुराया नहीं है।'

'अच्छा न सही, किन्तु उठा ले गया था।'

'नहीं, मैंने ही उसे दिया है।'

'क्यों, इसी तरह तुम उसे बरबाद कराने बैठी हो ? एक बात याद

रखना, बिना मेरे हुक्म के किसी को कोई चीज न देने पाओगी। झिलमिले वाली किसी चीज को मैं पसन्द नहीं करता।'

खड़ी होकर कुमुद ने कहा—'मेरी नीलम की अँगूठी तुमने नहीं ली?'

मधुसूदन ने कहा—'हाँ, ली है।'

'तुम्हारे उस काँच के ढेले का दाम क्या उससे भी नहीं चुका?'

'मैंने तो कह दिया था, उसे तुम नहीं रख सकती।'

'तुम्हारी चीज तुम रख सकोगे और हमारी पर मेरा अधिकार नहीं कि मैं उसे रख सकूँ?'

'इस घर के भीतर तुम्हारी अलग समझी जानेवाली कोई भी चीज नहीं।'

'यदि कोई चीज नहीं, तो यह आपका घर, इसे सँभालिए।'

जैसे ही कुमुद कमरे से बाहर निकली, श्यामा ने कमरे में आकर पूछा—'बहू कहाँ गई?'

'क्यों?'

सवेरे ही से उसका कलेवा लिये बैठी हूँ, क्या इस घर में वह आकर खाना भी बन्द कर देगी?'

'सो हुआ क्या? नूरनगर की राजकन्या ने खाया तो न सही, क्या तुम लोग उसकी बाँदी हो?'

'अरे हटो, रहने भी दो, कहीं जरा-सी लड़की पर इस प्रकार गुस्सा भी किया जाता है? बिना खाये-पिये वह इस भाँति दिन बितावेगी, यह तो हम लोगों से नहीं देखा जा सकता। उस दिन गश क्या यों ही आ गया था?'

क्रोध में गरजकर मधुसूदन बोला—'कुछ नहीं करना होगा, जाओ यहाँ से चली जाओ! भूख लगने पर आप ही खा जायगी।'

श्यामा मानो बहुत उदास तथा खिन्न होकर चली गई।

मधुसूदन के माथे में खून चढ़ने लगा। स्नान-गृह में जाकर उसने पानी की झंझरी खोली और उसके नीचे अपना सिर लगा दिया।

सत्तासईवाँ परिच्छेद

शाम होने को आई, किन्तु कुमुद ढूँढ़ने पर भी न मिली। भण्डार घर के पास कोने में एक छोटी-सी कोठरी है, चिराग दीवट, तेल के लेम्प वगैरह रखे जाते हैं, अन्त में पता लगा कि कुमुद वहीं जमीन पर बैठी हुई है।

मोती की माँ ने आकर पूछा—'जीजी! यह तुमने क्या किया?'

कुमुद ने कहा—'मेरा यहीं पर स्थान है, मैं यहीं बत्ती साफ किया करूँगी।'

मोती की माँ ने कहा—'काम तो तुमने अच्छा ही लिया है बहन! इस घर में उजाला करने को तो आई ही हो, किन्तु इसके लिए तुम्हें बत्तियों के निरीक्षण की क्या आवश्यकता है। चलो, अब उठो।'

कुमुद किसी भी तरह वहाँ से टस से मस न हुई।

मोती की माँ ने कहा—'तो मैं भी तुम्हारे पास सोती हूँ।'

दृढ़ता के स्वर में कुमुद ने कहा—'नहीं।'

मोती की माँ ने देखा कि इस भलीमानस लड़की में हुक्म चलाने की ताकत है, अतएव उसे वहाँ से चला जाना पड़ा।

रात में सोते समय मधुसूदन ने आकर कुमुद की सुध ली। उसने जब यह सुना कि वह बत्तीघर में है तो पहले उसने सोचा—'अच्छी बात है, रहने दो, उसी घर में देखें तो कितने दिन रहती है; मनाने से जिद बढ़ जायगी।'

यह सोचकर बत्ती बुझा दी और सोने चला गया। किन्तु किसी प्रकार नींद नहीं आई! उसे प्रत्येक शब्द से यही प्रतीत होता कि शायद आ रही है। एक बार ज्ञात हुआ मानो दरवाजे के बाहर खड़ी है। बिछौने से उठकर बाहर निकला, देखा तो कहीं कोई नहीं। ज्यों-ज्यों

रात बीतने लगी, मन ही मन छटपटाने लगा। वह कुमुद की अवज्ञा करना चाहता है किन्तु इसकी शक्ति उसमें नहीं। फिर भी खुद आगे बढ़ उसके सामने हार मानना उसकी नीति के विरुद्ध था। ठण्डे पानी से मुँह धोकर फिर सो रहा किन्तु नींद नहीं आई। इधर-उधर करवट बदलते-बदलते आखिर उठ बैठा। कौतूहल को किसी भाँति सँभाल न सका। हाथ में एक लालटेन लेकर सोते हुए कमरों को पार करता हुआ अन्तःपुर में उसी बत्तीघर के सामने पहुँचा। दरवाजे के पास कान लगा कर खड़ा हो गया किन्तु बिलकुल सन्नाटा था, भीतर से कोई भी आवाज सुनाई न पड़ी। धीरे से दरवाजा खोलकर देखा तो कुमुद जमीन पर एक चटाई बिछाये पड़ी सो रही थी। उसी चटाई के एक पल्ले को जरा लपेट कर उसने तकिया बना लिया है। मधुसूदन का आँखों में जैसे नींद नहीं, उसी भाँति कुमुद की आँखों में नींद न होनी चाहिए थी; किन्तु उसने देखा—वह पड़ी आराम से सो रही है। यहाँ तक कि लालटेन के सीधे प्रकाश पड़ने पर भी उसकी निद्रा भङ्ग न हो सकी। इतने में जरा असकसाकर कुमुद ने करवट बदली। जिस भाँति चोर गृहस्थ के जागने का लक्षण देखकर भागता है ठीक वही दशा उस समय मधुसूदन की भी हुई। जल्दी से वह वहाँ से भागा और साथ ही डर भी गया कि कहीं कुमुद उसकी इस पराजय को देखकर हँस न पड़े।

बत्तीघर से निकलकर मधुसूदन बरामदे से होता जा रहा था कि श्यामा मिल गई। उसके हाथ में चिराग था।

'अरे! यहाँ पर तुम कहाँ से आये देवर जी?'

इसका कुछ जवाब न देकर मधुसूदन ने कहा—'तुम कहाँ जा रही हो, भाभी?'

'कल मेरा व्रत है, ब्राह्मणों को भोजन कराना है, उसी के लिए जा रही हूँ—भैया तुम्हारा भी निमन्त्रण है, किन्तु तुम्हें दक्षिणा देने योग्य मुझमें शक्ति नहीं है।'

मधुसूदन को इसका जवाब ठीक समझ में आ गया था, किन्तु उसने

जबान रोक ली।

रात्रि के दूसरे पहर में चिराग की रोशनी में श्यामा बड़ी सुन्दर दीख रही थी। श्यामासुन्दरी ने धीरे से हँसते हुए कहा—'मेरा आज का यह दिन बड़ी अच्छी तरह बीतेगा तथा व्रत भी सफल होगा क्योंकि आज बिछौने से उठते ही मैंने तुम जैसे सौभाग्यशाली का मुँह देखा है।'

मधुसूदन को भाग्यवान शब्द विडम्बना के समान जान पड़ा, कारण कि शब्द पर जोर दिया गया था। श्यामा की हिम्मत न पड़ी कि वह कुमुद के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ पूछती। वह केवल इतना कहकर चली गई—'अच्छा तो कल हमारे यहाँ जीमने आना, तुम्हें सौगन्ध है।'

मधुसूदन अपने कमरे में पहुँच बिस्तर पर लेट गया। बाहर इस ख्याल से लालटेन रख दी कि शायद कुमुद आवेगी। कुमुदिनी के सोते हुए मुख को वह किसी भी भाँति भुला न सका और बार-बार उसे उसके उस अतुलनीय हाथ की याद आने लगी जो दुशाले से बाहर निकला हुआ था। विवाह के समय जब उसने उस हाथ को अपने हाथ में लिया था तब वह उसे अच्छी तरह न देख सका था किन्तु उसे देखते-देखते आज उसकी आशा ही नहीं मिटती। सोचने लगा इन हाथों पर उसे अधिकार कब मिलेगा ? उसे कल न पड़ी, उठ पड़ा और बत्ती जला कर उसने कुमुद के डेस्क का दराज खोला। उसने भीतर से कुमुद का मोतियों से बुना बटुआ निकालकर देखा उसमें विप्रदास का टेलिग्राम मिला—'ईश्वर तुम्हें आशीर्वाद दें!' उसके बाद निकला एक फोटोग्राफ, कुमुदिनी के दोनों भाइयों की फोटो, तथा एक कागज का टुकड़ा जिसमें कि विप्रदास का लिखा एक श्लोक था। ईर्ष्या से मधुसूदन का दिल घायल होने लगा। विप्रदास के अस्तित्व को उसने दाँत पीसकर ही मिटा दिया तथा उसे पूर्ण भरोसा है कि मिटने का वह दिन कभी न कभी आवेगा जरूर। धीरे-धीरे नष्ट करना होगा किन्तु विप्रदास के सम्पर्क का उन्नीस वर्ष जितने दिन कुमुदिनी उनके यहाँ रह चुकी है वह अधिकार यदि एक ही क्षण में छीन ले तभी उसके मन को शान्ति मिल सकती है। और

सिवा जबर्दस्ती के उसे कोई दूसरा रास्ता भी नहीं मालूम। हिम्मत करते हुए भी वह आज मोतियों के बटुए को फेंक न सका. अंगूठी चुराने वाले दिन उसका साहस और ही था। मधुसूदन को यह पहले विश्वास था कि अन्य स्त्रियों की भाँति यह भी शासन के अधीन रहेगी, यहाँ तक कि स्त्रियों के स्वभावानुसार उसे शासन ही पसन्द आयेगा, किन्तु उसे आज यह मालूम हो गया कि कुमुदिनी क्या कर सकती है और क्या उससे नहीं हो सकता। कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

यदि कुमुदिनी को कठिन बन्धन में लपेटने का कोई उपाय है तो वह केवल यही कि उसे एक बच्चे की माँ बना दिया जाय। बस उसकी सान्त्वना इसी कल्पना में ही है।

घड़ी ने टनाटन करके पाँच बजाये, किन्तु जाड़े की रात अभी अन्धकार दूर न हुआ था। आज की रात व्यर्थ हो जायगी और अभी उजाला भी हो जायगा। मधुसूदन घर से झटपट निकल कर पैरों से जरा कुछ आवाज सा करता हुआ बत्तीघर के सामने पहुँचा। दरवाजे को भी धक्का देकर आवाज के साथ खोला। किन्तु देखा तो वहाँ कुमुद थी ही नहीं, वह कहाँ है?

आँगन में नल से पानी गिर रहा था जिससे साफ आवाज आ रही थी। बरामदे में खड़े होकर देखा, तमाम पुरानी जङ्ग से सनी और बेकार दीवटें निकालकर उन्हें इमली की खटाई से माँज रही है। जानबूझ कर यह केवल काम को बढ़ाने की कोशिश जाड़े की रात्रि में निद्राहीन प्रातः काल दुःख को बढ़ाना मात्र है।

मधुसूदन आश्चर्य में पड़कर ऊपरी बरामदे में से खड़े-खड़े देखता रहा। अबला के बल को परास्त करने के सोच में वह पड़ गया। घर के सभी लोग सवेरे उठकर जब उसे दीवटें माँजते पायेंगे तो क्या कहेंगे और माँजने धोनेवाले नौकर अपने मन में क्या सोचेंगे? उसे समस्त घर वालों के सामने हास्यास्पद न बनना पड़ेगा और क्या होगा।

मधुसूदन के मन में पहले तो आया कि अभी ही समझा लें किन्तु

फिर सोचा कि नहीं यह ठीक नहीं, प्रातःकाल ही बीच आँगन में दोनों में कहा-सुनी होगी तो सभी लोग बिस्तर छोड़ तमाशा देखने आवेंगे इसी प्रहसन की कल्पना कर वह पीछे हट गया। मझले भाई नवीन को बुलाया और कहा—'घर में चाहे जो भी वारदात हो जाय किन्तु तुम किसी भी बात की खबर नहीं रखते।'

नवीन घर का मैनेजर जो था। बेचारे ने डरते हुए कहा—'क्यों, क्या हुआ भैया!'

नवीन को यह भली-भाँति मालूम है कि भैया जब क्रोधित होते हैं, तो अपने गुस्से को वे किसी न किसी पर अवश्य ही उतारा करते हैं। अतएव यदि दोषी उनके हाथ से बचकर निकल भी जाय तो निर्दोष होने से भी काम चल जाता है। यदि ऐसा न हो तो नियन्त्रण खत्म हो जाय अथवा गृहस्थी पर राजतन्त्र का गौरव ही समाप्त हो जाय।

मधुसूदन ने कहा—'बड़ी बहू जो पागलों की तरह ऊटपटाँग काम कर रही है, क्या तुम जानते हो इसका कारण मुझे मालूम ही नहीं है!'

नवीन में इतना साहस न था कि पूछता कि बड़ी बहू क्या पागलपन कर रही हैं! तथा उसने इससे भी न पूछा कि न जानना ही कहीं उसके लिए अपराध न समझा जाय।

मधुसूदन ने कहा—'इसमें शक नहीं कि मँझली बहू ही उसके दिमाग को खराब कर रही है।'

नवीन ने बड़े सङ्कोच के साथ कहा—'नहीं तो...मँझली बहू तो...।'

मधुसूदन गरज उठा—'मैंने अपनी आँखों से देखा है।'

इसके ऊपर कोई बात चल ही नहीं सकती।' अपनी आँखों से देखने' के भीतर उस काँच के पेपरवेट का इतिहास मौजूद था।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

मोती की माँ ने जब अपने अगाध अकृत्रिम प्रेम के साथ कुमुदिनी को अपनाना शुरू किया, उसी समय नवीन समझ गया था कि इसका निभना कठिन है। इसके विरुद्ध घर की स्त्रियाँ बिना कान भरे न रहेंगी। नवीन ने क्षण ही भर में सोच लिया कि अवश्य ही ऐसी कोई बात हुई होगी किन्तु मधुसूदन के कोरमकोर अन्दाज पर स्थिर अभियोग के प्रतिवाद से कोई लाभ नहीं, इससे और जिद् बढ़ जायगी।

मधुसूदन ने यह साफ साफ न बताया कि असल में बात क्या हुई। शायद कहने में शर्म भी लगती थी। क्या करना होगा यह भी पता न चल सका। यदि कुछ साफ मालूम पड़ रहा था तो केवल इतना ही कि सारी जिम्मेदारी मँझली बहू ही पर है अतएव नवीन ही के भाग्य में दाम्पत्य के अपेक्षित सम्मान के अनुसार जवाबदेही का सबसे भारी हिस्सा आ पड़ता है।

नवीन ने मोती की माँ के पास जाकर कहा—'एक फसाद और भी उठ खड़ा हुआ।'

'क्यों, यह कैसे?'

'यह तो अन्तर्यामी ईश्वर के सिवा और कौन जान सकता है। इसे यह भाई साहब जानें या कदाचित थोड़ा बहुत तुम भी जानती होगी, किन्तु डाँट फटकार तो मेरे ही ऊपर पड़ी है।'

'क्यों, वह कैसे?'

'वह इस प्रकार कि मेरे द्वारा तुम्हारी गलती सुधर जाय और तुम्हारे

द्वारा सुधरे उनके नये व्यवसाय की आमदनी।'

'अच्छा तो अब तुम मुझ पर अपना सुधार शुरू करो—देखूँ तो सही; बड़े भाई से बढ़कर तुम क्या करामात करते हो।'

विनम्र हो दीन स्वर में नवीन ने कहा—'भाई साहब की कीमती डिनर सेट का एक पिरिच उनके उड़िया नौकर द्वारा टूट गया था, यह तो तुम्हें विदित ही है कि उसके जुर्माने का अधिकांश भाग मुझे ही देना पड़ा था। उसमें कारण केवल यही है कि मैं सब चीजों का जिम्मेदार हूँ। किन्तु इस बार जो घर में चीज बाहर से आई है, क्या उसका भी मैं जिम्मेदार हूँ? किन्तु फिर भी चाहे जो कुछ हो, हमें तुम्हें मिलकर वह जुर्माना देना ही पड़ेगा। अतः जो कुछ भी करना हो करो। मँझली बहू, अब मुझे अधिक न सताओ।'

'जुर्माने से मतलब? जरा मैं भी तो सुन लूँ।'

'बीच बीच में मुझे ऐसा डर दिखाते हैं—रजबपुर को चालान कर देंगे।'

'जो तुम डरा करते हो, इसी से डराया करते हैं। एक बार भेज तो दिया था किन्तु बाद में उन्हें स्वयं ही रेल भाड़ा भेज कर बुलाना पड़ा था न? गुस्से के समय भी तुम्हारे भाई साहब हिसाब करना नहीं भूल जाते; उन्हें यह भली भाँति मालूम है कि मुझे बरखास्त करने में उन्हें किसी भाँति किफायत न होगी और साथ ही उन्हें एक पैसे का भी नुकसान सह्य नहीं।'

'यह तो मैं समझ गया किन्तु यह तो बताइए, इस वक्त क्या करना चाहिए?'

'अपने भाई साहब से बोलना कि वे चाहे कितने ही बड़े राजा क्यों न हों पर वे तनख्वाह देकर और आदमी रखकर रानी के मान को भङ्ग नहीं कर सकते। उन्हें खुद ही मान का बोझा सिर रखकर उतारना पड़ेगा। सुहाग कुटीर के मामले में जो भाड़े के मजदूर बुलाये जायँ उन्हें मना कर देना।'

मँझली बहू, हमें उनको उपदेश देने की आवश्यकता नहीं, वे स्वयं ही कुछ दिन बाद होश सँभाल लेंगे। उस समय तक दूती काम करती रहे, फल चाहे न हो। कम से कम यह तो दिखा देंगे कि नमक खाकर चुपचाप ही हजम नहीं करते।'

मोती की माँ कुमुद को ढूँढ़ने चली, वह जानती थी कि सवेरे के वक्त वह छत पर मिलेगी। छत के चारों ओर ऊँची दीवार है जिसमें गोल-गोल छोटे झरोखे से बने हैं। बिना पौदों के कुछ गमले भी यत्र-तत्र पड़े हैं। एक कोने में लोहे की जाली का एक बड़ा भारी चौखूटा टूटा हुआ पिंजड़ा पड़ा है। उसमें लकड़ी का पेंदा है जो बिल्कुल सड़-सा गया है। किसी वक्त उसमें कबूतर या खरगोश पाले जाते थे किन्तु आज कल यह अचार अमावट वगैरह के धूप में सूखने को डाले जाने पर कौओं से रक्षा के लिए उसी पर रख दिया जाता है। इस छत पर से केवल सिर के ऊपर का आकाश ही दिखाई देता है। चारों ओर की दिशाएँ नहीं दीख पड़तीं। पश्चिम दिशा में आकाश पर एक लोहे की चिमनी दिखाई देती है जो किसी कारखाने की है। दो दिन से कुमुद छत पर जाकर बैठती और उसी चिमनी का काला निकलता हुआ धुआँ ही मानो उसके देखने की एकमात्र वस्तु है। समस्त आकाश पर मानो वह किसी एक आवेग से फूल-फूल कर चक्कर लगा रहा है।

अँधेरे ही में दीवट वगैरह माँज-मूँज कर कुमुद नहा-धो चुकी और छत पर जाकर पूरब की ओर मुँह करके बैठ गई। उसने भीगे बाल पीठ पर बिखरा दिये। शृङ्गार का तो आभास तक न था। काली पतली किनारीदार मोटे सूत की सफेद साड़ी पहनी हुई थी और सर्दी से बचने के लिए एक मोटी अरण्डी (रेशमी चादर) ओढ़े हुए थी।

अपने......प्रियतम के कल्याणरूपी आदर्श को हृदयपट में रख कर कुमुद इधर कुछ दिनों से अपने हृदय की क्षुधा शान्त करने बैठी थी। उसी पूजा-अर्चना तथा सभी व्रत और सभी पुरानी कहानियां इत्यादि से इस काल्पनिक मूर्ति को सजीव बना रखा था। वह भी

अपने मानस वृन्दावन में प्रातःकाल उठ कर ही कुछ न कुछ गाया भी करती।'

जिस पुरुष के लिए वह अपने आत्मनिवेदन का अर्घ्य देना चाहती है, मानो उसके सामने आने के पूर्व ही उसके प्रति वह दिन प्रति दिन अपना प्याला भेजती रही हो। पीछे के बगीचे के वृक्षों ने अपने पल्लव द्वारा मानो एक रागिनी सी छेड़ दी। उसका उदास मन झन-झन करता हुआ हर कदम पर नूपुर सा बजाता है। वह उद्देश्यहीन मार्ग पर चल पड़ा है, यदि कभी घर को लौटेगा भी तो किस भाँति ? वह जिसे रूप में देखना चाहती थी, ज्ञात नहीं वह कब से उसे गाने के स्वर में देख रही थी। आनन्द की इसी उमड़ती धारा में यदि वह इसी काल्पनिक रूप को अकस्मात् पा जाती तो उसके हृदय में समस्त गूँजते हुए गानों को उसी समय रूप में प्राण मिल जाते। कोई भी पथिक द्वार पर आकर खड़ा न हुआ। वह काल्पनिक निकुञ्ज में बिलकुल ही अकेली यहाँ तक कि उसकी समवयस्क सहेलियों में से कोई न थी। इसी से इतने तक उसके रुके हुए प्रेम ने श्यामसुन्दर के पैरों के पास अपने लापता प्रेमी को फूल के आकार में ढूँढ़ा है। इसलिए जब विवाह सम्बन्धी बात करने घटक आया था तभी उसने अपने देवता से आज्ञा माँगी थी और यह पूछा था—'अब तो तुम्हें ही पाऊँगी ?' अपराजित के फूल ने कहा—'यह लो पा तो गई।'

उसके हृदय की इतनी दिनों की तैयारियाँ सब व्यर्थ ही गईं। एकाएक पत्थर के ठनक उठने के कारण भरी नाव क्षणमात्र में ही डूब गई। व्यथित यौवन आज फिर ढूँढ़ने चला है कहाँ वह अपने फूल को चढ़ावे। थाली में सजा अर्घ्य का सामान आज उसे बोझ सा प्रतीत होने लगा। इसी से तो वह आज जी-जान से गिरधर गोपाल का गीत गाने लगी। किन्तु आज वह गान शून्य में घूम रहा है, वह कहीं भी पहुँचा नहीं। कुमुद का मन इस शून्य में भय से डर गया। आज से लेकर जीवन के अन्तिम दिनों तक मन की गहरी इच्छा भी क्या उस धुँएँ की कुण्डली

की ही तरह अकेली निःश्वास के रूप में निकलती रहती ?

कुमुद के पीछे थोड़ी ही दूर पर मोती की माँ बैठी रही। प्रातःकाल के निर्मल प्रकाश में शून्य छत के ऊपर इस अपरिचित सुन्दरी की महिमा ने उसे आश्चर्य में डाल दिया है। वह सोचने लगी—'इस घर में इसकी कैसे शोभा बढ़ेगी। यहाँ की सभी स्त्रियाँ इसकी तुलना में किस जाति की हैं ? वह स्वयं इससे अलग जा पड़ी है। इस पर गुस्सा तो होती हैं, किन्तु इससे मेल करने की भी किसी में हिम्मत नहीं पड़ती।'

सहसा बैठे ही बैठे मोती की माँ ने देखा कि चादर के आँचल को मुँह पर दबाकर कुमुद रो रही है। उससे अब रहा न गया ! वह पास जा कुमुद के गले में बाँह डालकर कहने लगी—'मेरी जीजी ! कैसी हो लक्ष्मी बहन ! जरा बताओ तो सही तुम्हें क्या हुआ ?'

कुमुद कुछ देर तक तो कुछ न बोली किन्तु बाद में सँभल कर बोली—'भैया को न मालूम क्या हो गया, मेरी समझ में नहीं आता कि आज भैया की चिट्ठी क्यों न मिली ?'

'बहन ! क्या चिट्ठी पाने का वक्त हो गया ?'

'जरूर हो गया। मैं तुम्हें देख करके आई थी और उन्हें यह भी ज्ञात है कि समाचार पाने के लिए मैं किस प्रकार लालायित हूँ और मेरा मन तड़प रहा है।'

मोती की माँ ने कहा—तुम सोच मत करो। समाचार विदित करने के लिए मैं कोई न कोई उपाय कर रही हूँ।'

कई बार कुमुद ने तार देने की सोची किन्तु वह किसके हाथ भेजती। मधुसूदन ने जिस दिन अपने को उसके भैया का महाजन कह कर अपनी बड़ाई मारी थी उसी दिन से भैया के विषय में बातचीत करने से उसकी जबान तक रुक जाती थी। मोती की माँ से आज कुमुद ने कहा—'यदि भैया को तुम मेरे नाम से तार भिजवा सको, तो मैं जी जाऊँ।'

मोती की माँ ने कहा—'इसमें डर किस बात का ! बहुत अच्छा

मैं भिजवा दूँगी।'

कुमुद ने कहा—'यह भी तो तुम जानती ही हो कि मेरे पास एक रुपया भी नहीं है।'

'जीजी, तुम इस प्रकार की बातें करती हो जिसका ठीक नहीं। मेरे पास घरेलू खर्च के लिए जो रुपये रहते हैं, वे सब तुम्हारे ही तो हैं। मैं आज से तुम्हारा ही नमक खा रही हूँ।'

कुमुद जोर से बोल उठी—'न न न, मेरा इस घर में कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि मैं एक छदाम की भी मालिक नहीं।'

'अच्छा बहन! न सही, मैं अपने रुपयों ही से तुम्हारे लिए कुछ खर्च करूँगी—चुप क्यों हो रहीं! इसमें कौन सी बुराई? यदि मैं रुपया घमण्ड से देती तो अभिमान से तुम्हारा न लेना उचित होता, किन्तु यदि मैं प्यार से दे रही हूँ तो भला तुम प्यार से क्यों नहीं ले सकती?'

कुमुद ने कहा—'लूँगी।'

मोती की माँ ने पूछा—'जीजी, क्या तुम्हारा सोने का कमरा आज भी सूना रहेगा?'

कुमुद ने कहा—'वहाँ मेरे लिए जगह नहीं।'

मोती की माँ ने अधिक दबाव न डाला। उसका मानसिक भाव यह था कि दबाव डालना उसका काम नहीं। यह जिसका काम है, वह स्वयं करेगा। केवल धीरे से कहा—'तुम्हारे लिए थोड़ा-सा दूध ला दूँ!'

कुमुद ने कहा—'अभी नहीं, और थोड़ी देर बाद।' अभी उसका अपने देवता के साथ फैसला होना बाकी है। इस समय तक वह अपने मन में कोई जवाब नहीं पा सकी है।

मोती की माँ उठकर अपने कमरे में गई, वहाँ उसने नवीन को बुला कर उससे कहा—जरा एक बात तो सुनो, जेठ जी के बाहर वाले कमरे में उनके डेस्क के ऊपर जरा देख तो आओ, जीजी की कोई चिट्ठी आई है या नहीं, दराज खोल करके भी देख लेना।'

नवीन ने कहा—'मार डाला !'

'यदि तुम न जा सकी तो मैं ही जाऊँ।'

'देवी जी, यह तो झाड़ी के भीतर से भालू के बच्चे का पकड़वाना है।'

भाई साहब ऑफिस गये हैं, उन्हें लौटते-लौटते एक बजेगा, इस बीच में ··· ।'

'देखो, असल बात यह है कि दिन में तो यह काम करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है, अभी चारों ओर आदमियों का आना-जाना लगा है। आज रात के समय भले ही मैं तुम्हें खबर दे सकता हूँ।'

मोती की माँ ने कहा—'अच्छा, ऐसा ही सही, किन्तु नूरनगर को अभी तार भेज कर पूछना है कि विप्रदास बाबू की तबीअत कैसी है ?'

'अच्छी बात है, तो यह भैया को बता कर करना होगा न ?'

'नहीं।'

'मँझली बहू, मुझे तो यही जान पड़ता है कि तुम जान पर खेल कर छटना चाहती हो। बिना मालिक के हुक्म के इस घर में छिपकली की भी इतनी हिम्मत नहीं कि वह मक्खी को पकड़ ले और मैं ··· ।'

'तार तो जीजी के नाम से जायगा, इसमें तुम्हें डरने की कौन-सी बात है ?'

'किन्तु जायगा तो मेरी ही मार्फत !'

'दरबान के हाथ जेठ जी के ऑफिस से ढेरों तार तो रोज जाया करते हैं, उन्हीं में एक इसको भी रख देना। यह लो रुपया, जीजी ने दिया है।'

नवीन का मन यदि कुमुद के प्रति करुणा से भर न गया होता तो इस प्रकार के खतरनाक काम का भार वह अपने ऊपर कदापि नहीं ले सकता था।

उनतीसवाँ परिच्छेद

अपने नियमानुसार दोपहर को एक बजे मधुसूदन अन्तःपुर में खाने आया। घर की स्त्रियाँ नित्य प्रति जैसे घेर कर बैठा करती हैं, उसे घेर कर बैठ गईं। पंखे से कोई मक्खी उड़ाने लगी तो कोई भोजन परोसने लगी। हम ऊपर ही वर्णन कर चुके हैं कि मधुसूदन की अन्तःपुर व्यवस्था में ऐश्वर्य का किसी भी भाँति आडम्बर या दिखावा नहीं था। उसके खाने का सभी आयोजन प्राचीनकाल के अभ्यास के अनुसार ही है। यदि मोटे चावलों का भात न हो तो उसे रुचता ही नहीं और न पेट ही भरता है, किन्तु सभी बरतन कीमती हैं—थाली, कटोरा तथा गिलास सभी चाँदी के बने हुए हैं। साधारण चने की दाल, मछली का झोर, इमली की चटनी तथा भुजिया आदि यही उसका भोजन है। भोजन समाप्त करने के बाद एक बड़े कटोरे भर निरा दूध जिसे वह पीकर तथा पान के डण्ठल में चूना लगाकर एक पान मुँह में तथा दूसरा डिब्बे में रखकर पन्द्रह मिनट तक हुक्का पीते हुए आराम करता है फिर तुरन्त ही उठकर उसका काम ऑफिस चल देने का है। अपेक्षाकृत गरीबी अवस्था से लेकर आज इस समय तक उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। उसके भोजन में लाभ नहीं बल्कि भूख है।

श्यामासुन्दरी दूध से भरे कटोरे में मीठा घोल रही थी। उसका श्यामवर्ण हृष्ट-पुष्ट शरीर है। वह एक सफेद साड़ी के अतिरिक्त और कुछ न पहने थी किन्तु देखने से यही प्रतीत होता था कि सदैव सफाई से रहती है। यौवनावस्था का अन्त हो चुका था किन्तु मानो जेठ के अपराह्न की तरह दिन छिपना चाहता है किन्तु गोधूलि की छाया अभी नहीं पड़ी है। घनी भौंहों के नीचे तीक्ष्ण काली आँखें हैं मानो वे सामने से किसी को देखती ही नहीं। किन्तु वे थोड़ा-सा देखकर सबको सब देख लेती

हैं। उसके रसीले ओठों में एक प्रकार का भाव है मानो बहुत सी बातें उन्होंने दबा रक्खी हों। गृहस्थी के कारण उन्हें कुछ अधिक सुख प्राप्त नहीं किन्तु फिर भी वे भरे हुए हैं। वे अपने को कबूल नहीं बल्कि कीमती ही समझते हैं किन्तु उनकी बहुमूल्यता काम में न आ सकी। इसी कारण उन्हें अपने आस-पास पर एक अश्रद्धा सी हो गई। मधुसूदन के ऐश्वर्य- वृद्धि के समय में ही श्यामासुन्दरी ने इस घर को सुशोभित किया था। उसने ऐसा सङ्कल्प भी कर लिया था कि गृहस्थी के शिखर पर वह अपने लिए स्थान खोज लेगी। यह भी नहीं कहा जा सकता कि मधुसूदन का मन अडिग हो रहा हो, किन्तु मधुसूदन ने किसी भाँति हार न मानी। इन सबका कारण केवल यही है कि मधुसूदन की जमींदारी केवल बुद्धि से नहीं बल्कि प्रतिभा के जोर से ही उसने अपनी सम्पत्ति बनाई है और उसी के परम आनन्द में वह गहरे समुद्र में डूबा हुआ है। इसी प्रतिभा के जोर से ही वह यह भी जानता था कि धन-सृष्टि की जिस तपस्या में वह लगा है, इन्द्रदेव ने उसे भङ्ग करने को प्रबल विघ्न भेजे हैं उसे प्रतिक्षण तपोभङ्ग के धक्के भी लग चुके हैं, किन्तु उसने अपने को सँभाला है। केवल उस वक्त सुविधा इतनी ही थी कि वह व्यापार का मध्याह्न-काल था, मरने तक का वक्त न था। ऐसे कठिन परिश्रम के बीच आँखों से देखने तथा कानों में सुनने से, श्यामा को जो कुछ भी एकान्त में साथ मिल जाता था, उससे मानो मधुसूदन की थकावट दूर हो जाती थी, उत्सवों में लेने-देने के विषय में श्यामा की तरफ उसके पक्षपात का भार शायद कुछ अधिक झुका हुआ सा प्रतीत होता था, किन्तु किसी भी दिन उसने श्यामा को प्रश्रय नहीं दिया, जिससे अन्तःपुर में उसकी स्पर्धा बढ़ जाती। मधुसूदन के मन के झुकाव को श्यामा ने भली भाँति जान लिया किन्तु फिर भी उसका भय किसी भाँति उसकी ओर से दूर न हो सका।

नित्य प्रति की भाँति मधुसूदन के जीमते वक्त श्यामासुन्दरी आज भी उपस्थित है, वह अभी नहाकर आई—उसकी काली नागिन सी लटें

पीठ पर लहरा सी रही है। उसके ऊपर से सफेद साड़ी जो सिर के ऊपर तक खिंची हुई है, उस भीगे हुए बालों से सुवासित तेल की मृदु-गन्ध सुगन्ध कमरे को भर रही है।

दूध के कटोरे पर बिना नजर उठाये ही श्यामा ने मन्द स्वर में कहा—'देवर जी, बहू को बुला दूँ!'

मधुसूदन एक भी शब्द बिना मुँह से निकाले अपनी भौजाई की ओर गम्भीर दृष्टि से देखने लगा। उसकी भौजाई श्यामा कुछ डर-सी गई। प्रश्न की व्याख्या करते हुए वह बोली—'जीमते वक्त यदि वह आकर तुम्हारे पास बैठे, तो अच्छा है, थोड़ी बहुत सेवा टहल···।'

मधुसूदन के चेहरे के भाव का कोई भी अर्थ न समझ कर श्यामा-सुन्दरी इस वाक्य को पूरा करने में असमर्थ रही। फिर मधुसूदन सिर नीचा किये जीमता रहा।

थाली पर से बिना मुँह उठाये नीची निगाह किये उसने पूछा—'बड़ी बहू है कहाँ!'

श्यामासुन्दरी ने तपाक से कहा—'मैं अभी देखकर आती हूँ।'

भौंहें सिकोड़ अँगुली हिलाते हुए मधुसूदन ने मना कर दिया। उसका मन प्रश्न का उत्तर पाने को उत्सुक है, किन्तु इसके मुँह से सुनना उसे सह्य नहीं। साथ ही मन में एक कौतूहल भी है। भोजन के पश्चात् जब वह तिमंजिले पर अपने सोने के कमरे में पहुँचा तब उसके मन में एक क्षीण आशा थी, एक बार छत के ऊपर घूम आया। स्नान-गृह में जहाँ बिलकुल शान्ति विराज रही थी, चुपके से आकर वहाँ कुछ देर खड़ा रहा। उसके बाद बिस्तर पर लेटा हुक्का पीने लगा। पन्द्रह मिनट बीत गये, बीस मिनट पार होकर जब आध घण्टा होने को आया, तो ऊपर की जेब से घड़ी निकालकर समय देखा। वर्ष पर वर्ष व्यतीत हो गये, किन्तु ऑफिस पहुँचने में कभी उसे पाँच मिनट की भी देर न हुई थी। ऑफिस के रजिस्टर में सब के आने-जाने का वक्त तथा साथ ही ही वेतन की चढ़ती-उतरती आदि का हिसाब उसमें लिखा हुआ है।

मधुसूदन के जुर्माने की रकम अन्य कर्मचारियों की बनिस्बत सब से कम है और साथ ही इस विषय में उसे अपने प्रति कोई पक्षपात भी नहीं। वास्तव में अपने से वह अन्य कर्मचारियों की अपेक्षा डबल जुर्माना वसूल करता है। उसने आज से प्रतिज्ञा कर ली है कि शाम के समय जब ऑफिस-टाइम समाप्त हो जायगा, उस समय वह अपने काम की क्षतिपूर्ति कर देगा, किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया काम से उसकी तबीअत हटती गई, साथ ही आज आध घण्टे पहले ही ऑफिस से घर लौट आया। उसका मन बार-बार यही चाहता था कि एक बार बेवक्त ही सोने के कमरे में हो आऊँ शायद किसी से भेंट हो जाय, दिन में वह सोने के कमरे में न जाता था, किन्तु आज उसने अन्तःपुर में ऑफिस के कपड़े पहने ही प्रवेश किया।

उस समय मोती की माँ छत के ऊपर ही थी। वह सूखती हुई आम की खटाइयों को उठाकर टोकरी में रख रही थी। सोने के कमरे में मधुसूदन को असमय घुसते देख उसने घूँघट खींच लिया और उसके भीतर खूब हँसने लगी। मझली बहू के सामने जो उसकी अनियमित कार्रवाई पकड़ी गई इस पर उसे बड़ी लज्जा तथा गुस्सा आया। उसने मन में यह तरकीब सोच रखी थी कि बहुत ही सावधानी से घर में घुसूँगा। हाँ, कहीं डरी हुई हिरणी की भाँति वह भाग न जाय, सो नहीं हुआ। वह तेजी से घर में घुस गया किन्तु उसने देखा कि उसका ऑफिस से चला आना नितान्त व्यर्थ हुआ। न तो उस समय कमरे में वहाँ कोई था और न बाद में वहाँ किसी के आने के लक्षण ही दिखाई देते थे। उसका रहा-सहा धैर्य भी बिलकुल जाता रहा। यद्यपि वह जेठ लगता है, और आज तक किसी भी दिन उसने मझली बहू से बातचीत नहीं की है, किन्तु फिर भी आज उसे बुलाकर उससे कुमुद के विषय में कुछ कहने के लिए उसका मन छटपटाने लगा। उसके मुँह से एकाएक एक बार निकल भी आया किन्तु तब तक मोती की माँ नीचे चली गई थी।

असमय, अकारण तथा अकेले आने के सम्मान की रक्षा पाने के लिए वह नई बहू द्वारा छोड़े हुए कमरे से होता हुआ बाहर के कमरे में तेजी से लपकता हुआ चला गया। एक बड़े जरूरी काम का बहाना करते हुए वह डेस्क पर झुककर बैठ गया और सामने पड़े छोटे रजिस्टर को जिसे ऑफिस का हेड-बाबू देखा-भाला करता था, उठा लिया। वह उसे और कभी भी न देखता था किन्तु आज लोगों को आँखों को धोखा देने के लिए वह उसे उलटने लगा। इस रजिस्टर में उसके घर की चिट्ठी-पत्री और तारों की रवानगी की तारीख दर्ज रहती है। रजिस्टर खुलते ही आज की तारीख में तारोंवाली लिस्ट में उसने विप्रदास का नाम पढ़ा—भेजने वाली हैं स्वयं मालकिन साहबा—कुमुदिनी।

'बुलाओ दरबान को।'

दरबान हाजिर हुआ।

'इस तार को भेजने के लिए किसने दिया था?'

'मझले बाबू ने।'

'बुलाओ मझले बाबू को।'

अपने फीके और मुर्झाये मुख को लिये हुए मँझले बाबू हाजिर हुए।

'मेरी आज्ञा बिना तार भेजने को किसने कहा?'

जिसने कहा था, मधुसूदन के सामने वह बात कह देनी मामूली न थी। नवीन व्याकुल होकर सोचने लगा कि क्या कहे और क्या न कहे। ऐसे जाड़े के दिन में भी उसके माथे से पसीने की बूँदें झलकने लगीं।

नवीन को चुप देख कर मधुसूदन ने खुद ही पूछा—'क्यों, क्या मँझली बहू ने दिया था?'

शान्त-भाव से मुँह नीचे किये खड़े रहने से ही उत्तर स्पष्ट हो गया। तुरन्त ही माथे का खून खौलने लगा और मुँह लाल सुर्ख पड़ गया। इस प्रकार क्रोध आया कि मुँह से एक बात भी निकलनी

मुश्किल हो गई। जोर से हाथ हिलाकर उसे नवीन को घर से निकल जाने का इशारा किया और स्वयं कमरे में जल्दी-जल्दी इधर से उधर टहलने लगा।

तीसवाँ परिच्छेद

नवीन ने अपना सूखा-सा मुँह लिये भीतर मोती की माँ के निकट जाकर कहा—

'सुन रही हो, अब जल्दी करो, बाँधो अपना बोरिया बिस्तर।'

'क्यों, क्या हुआ?'

'बस अब चलने की तैयारी करो।'

'यदि मैं तुम्हारी अकल पर भरोसा करके बाँधूँ तो शायद कल ही फिर खोलना पड़ेगा। क्यों, क्या तुम्हारे भाई साहब का मिजाज ठीक नहीं है?'

'मैं तो उन्हें जानता हूँ। इस बार ज्ञात होता है हमीं लोगों पर चोट है।'

'तो चले चलना, वहाँ चलने से कुछ पानी में थोड़े ही डूब जाओगे इतनी सोच किस बात की है!'

'हमें चलने के लिए क्यों कहती हो, इस बार तो हुक्म होगा, मँझली बहू को देश भेज दो।'

'मैं जानती हूँ कि तुम उस हुक्म को नहीं मान सकते।'

'तुमने कैसे जाना?'

मैं अकेली ही क्यों, घर के सब प्राणी तो तुम्हें समझते हैं। मर्द किस भाँति हो सकते हैं, इसे अब तक तुम्हारे भाई ने अपने दिमाग में सोचा ही न था। अब उनकी बारी आई है। अतः वे स्वयं समझ जायँगे।'

'सचमुच !'

'मैं देख रही हूँ यह रोग तुम्हारे वंश भर में पाया जा रहा है। अब तक बड़े भाई पकड़ में नहीं आये। बहुत दिनों से इकट्ठा होने के कारण उनमें तीखापन अधिक होगा, मैं जो कह रही हूँ, इसे आगे चलकर देख लेना। जिस भाँति दुनिया को भूलकर वे रुपये की थैली को जकड़े हुए हैं, उसी भाँति अब उनका सम्पूर्ण जोर बहू पर ही पड़ेगा।'

'बहुत अच्छा है, पड़ने भी दो। बड़े तो अपना रक्त जमावें किन्तु छोटे के प्राण कैसे बचें !'

'इसका भार मैं अपने ऊपर लेती हूँ, किन्तु जो मैं कहूँ उसे तुम्हें करना होगा। तुम्हें उनकी दराज खोलकर देखनी होगी।'

हाथ जोड़कर नवीन ने कहा—'मँझली बहू मैं तुम्हारी दुहाई देता हूँ। यदि तुम साँप के बिल में हाथ डालने को कहती तो मैं डाल सकता था किन्तु दराज में नहीं।'

'यदि साँप के बिल में हाथ डालना होता तो मैं स्वयं डाल देती। मगर दराज तुम्हें ही देखनी होगी। तुम तो यह जानते ही हो कि घर की सब चिट्ठियों को पहले वे ही देखा करते हैं, बिना उनके हुक्म के किसी को नहीं दी जातीं, मन कहता है कि चिट्ठी अवश्य आ गई है किन्तु उन्होंने उसे रोक ली है।'

'मेरा मन भी यही कहता है किन्तु साथ ही साथ यह भी कह रहा है कि यदि उस चिट्ठी में हाथ लगाया तो भाई साहब को सम्भव है कोई दफा ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा। सम्भव है सात वर्ष की कड़ी फाँसी का हुक्म हो जाय।'

'तुम्हें कुछ करना नहीं है। तुम्हें चिट्ठी में हाथ भी न लगाना पड़ेगा ! सिर्फ इतना भर देख आओ कि जीजी के नाम से कोई चिट्ठी आई है या नहीं।'

मँझली बहू के ऊपर नवीन की अगाध भक्ति है, यहाँ तक कि वह अपने को अपनी पत्नी के अयोग्य ही समझता है। अतएव यदि उस पर

कभी कोई असाध्य काम भी आ पड़ता है तो वह डरता है परन्तु उसके करने में उसे प्रसन्नता काफी होती है।

मँझली बहू के द्वारा ही नवीन को खबर मिली कि कुमुद के नाम का एक तार और एक चिट्ठी दराज में है।

पहले-पहल कुमुद जिस प्रकार उत्तेजित होकर सोने के कमरे से उठ कर दासी के काम को करने में लग गई थी, अब वह उत्तेजना उसमें नहीं रह गई है। उसका जो अपमान हुआ उसे भी ध्यान में नहीं लाती, साथ ही विषाद की मलीनता से भी उसका मन स्वच्छ बन गया है। उसकी समझ में यह आ गया है कि यह व्यवस्था सदैव की नहीं, फिर भी उस प्रकार की कोई भी व्यवस्था हुए बिना कुमुद जी कैसे सकती है। संसार में मौत के दिन तक, रातों दिन किसी काम में लगा रहना भी तो सम्भव नहीं!

बत्तीघर का किवाड़ बन्द किये कुमुदिनी यही सोच रही थी। यह कोठरी बरामदे के एक कोने में है और काठ के बेड़ों से घिरी हुई है। प्रवेशद्वार को छोड़कर समस्त कोठरी चारों ओर से बन्द है। दीवारों पर भी काठ के तख्ते लगे हुए हैं, जिनके ऊपर बत्ती जलाने वाले अद्भुत सामान रखे हुए हैं। तेल तथा मैल के कारण समस्त कोठरी चिपचिपा रही है। दरवाजे की ओर वाली दीवार पर किसी नौकर ने मोमबत्ती के बण्डल के ऊपर वाली तस्वीरें काट कर चिपका दी हैं। इससे ज्ञात होता है कि अवश्य ही उसने अपने सौंदर्य-बोध की तृप्ति के लिए ऐसा किया होगा। एक कोने में एक टीन का बक्सा रक्खा हुआ है, जिसमें खरिया मिट्टी भरी हुई है। पास ही कुछ सूखी इमलियाँ तथा झाड़ने पड़े हैं। दीवार से सटे हुए मिट्टी के तेल के ढेरों कनस्तर पड़े हुए हैं। इन कनस्तरों में बहुत से खाली ही पड़े हैं, केवल दो ही तीन में तेल भरा हुआ है।

कुमुद आज प्रातःकाल ही से अपने काम में लगी हुई है। कठोर काम को समाप्त करने के बाद मोती की माँ ने कुमुद के ऊपर आये हुए घोर

सङ्कट को खड़े होकर ध्यानपूर्वक देखा। वह तुरन्त ही समझ गई कि दो एक क्षणभंगुर वस्तुओं का अपघात तुरन्त होने वाला है। इस घर में अब छोटी से छोटी और ज़रा-सी भी निकम्मी वस्तु निगाह से नहीं छूट सकती जिसका कि सुधार न हो जाय।

मोती की माँ में अब इतनी सहन करने की शक्ति न थी, वह बोल उठी—'मेरे पास काम-काज था नहीं, इसी से सोचा कि चलकर जीजी के काम में ही कुछ मदद करूँ। इससे पुण्य तो होगा ही।' यह कहकर उसने काँच के ग्लोब तथा चिमनियों की टोकरी को अपनी ओर खींच लिया और उन्हें पोंछने लगी।

कुमुद मोती की माँ को ऐसा करने से रोकने में असमर्थ रही। कारण यह था कि इस बीच में अपनी दुर्बलता के विषय में उसका रहा-सहा धैर्य जाता रहा। मोती की सहायता पाकर वह जी गई। लेकिन मोती की माँ भी इन समस्त कामों में दक्ष नहीं है। वह मिट्टी के तेलवाले लैम्पों में ठीक हिसाब से बत्ती डालने की शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकी है, यद्यपि यह सब काम उसी की देख-रेख में होता है, नियम के अनुसार तेल वग़ैरह देने के माप उसी के हाथ में हैं किन्तु फिर भी आज तक उसने अपने हाथों बत्ती तक नहीं काटी है। इन्हीं सब कारणों से उनसे बक्कू फर्राश को बुलाने की बात छेड़ी है।

उसे हार माननी पड़ी, बक्कू फर्राश आया और अपने तेज हाथों से उसने जल्दी से काम को खत्म कर दिया। बक्कू ने पूछा—'शाम होने के पूर्व ही सब बत्तियाँ प्रत्येक घर में पहुँचा दी जाती हैं। क्या उस काम के लिए मुझे नियमपूर्वक यथासमय उपस्थित होना पड़ेगा या नहीं?' यद्यपि बक्कू सरल प्रकृति का मनुष्य है, किन्तु फिर भी उसके इस प्रश्न में मानो कुछ व्यङ्ग्यात्मक भाव भरा था। कुमुदिनी के कान की लोलकियाँ लाल हो उठीं।

इससे पहले ही कि वह कुछ कहे, मोती की माँ बोल बोल उठी—

'आयेगा नहीं तो क्या ?' कुमुदिनी को ऐसा समझने में तनिक भी देर न लगी कि मोती की माँ काम करने के अतिरिक्त केवल काम में विघ्न डाल रही है !

इकतीसवाँ परिच्छेद

दोपहर को भोजन कर चुकने के बाद कुमुद किवाड़ बन्द करके प्रतिज्ञा-सी करने लगी। मन के भीतर अब क्रोध की अग्नि किसी भी भाँति जलने न देगी। वह मन ही मन कहने लगी—'केवल आज ही का दिन मन को स्थिर करने में लगेगा। कल ही ईश्वर के आशीर्वाद द्वारा अपनी गृहस्थी के सच्चे मार्ग में लग जाऊँगी, अब तो वह भोजन के अन्त में काठ की कोठरी का किवाड़ बन्द करके अपने साथ समझौता करने बैठ गई। उसके इस कार्य में उसके भैया की स्मृति अधिक सहायक थी। उसने अपने भैया के धैर्य की आश्चर्यजनक गम्भीरता देखी है। जो उनके अन्तर की महत्त्वपूर्ण छाया थी तथा उनके मुँह का विषाद था सो भैया भी कैसे उस जमाने के व्यक्ति थे, जिनका एक निराला ही धर्म था। देवता को बाहर से नमस्कार करने की उनकी आदत ही न थी, किन्तु फिर भी देवता आप ही उनके जीवन को पूर्ण करके आविर्भूत होते थे। तीसरे पहर बङ्कू फर्राश आया और उसने दरवाजा खटखटाया, उस समय कुमुद घर खोलकर बाहर चली गई और मोती की माँ से जाकर बोली—'आज रात को खाऊँगी नहीं।' मन को शुद्ध करने के लिए उसने यह उपवास किया है। मोती की माँ ने जब कुमुद का मुँह देखा तो उसे आश्चर्य हुआ। उसके मुँह पर आज वह रक्त-छटा विराजमान न थी। उसके ललाट और नेत्रों में प्रशान्त स्निग्ध दीप्ति झलक रही थी। अभी ही ज्ञात होता था मानो वह तीर्थस्थान तथा पूजा

समाप्त करके आई है। मानो अन्तर्यामी देवता ने उसके सम्पूर्ण अभिमान को हर लिया है। वह जैसे अपने हृदय-पट में निर्माल्य फूल रख लाई है और उसी की सुगन्धि ने मानो उसे घेर रखा है। इसी कारण जब कुमुद ने उपवास करना चाहा, तभी मोती की माँ समझ गई कि यह अभिमान का आत्म-पीड़न नहीं है। इसी कारण उसने कुछ आपत्ति भी नहीं की।

अपने हृदयपट में देवता की मूर्ति को विराजमान करके वह छत पर जाकर एक कोने में बैठ गई। स्पष्ट रूप से उसकी समझ में आज यह आ सका है, कि यदि दुःख उसे इस भाँति धक्का न देता तो वह अपने देवता के इतने समीप कभी न आ सकती। सायंकाल सूर्य की क्षीण आभा की ओर हाथ जोड़कर कुमुद ने कहा—'प्रभु! अब कभी भी तुमसे मेरा विच्छेद न हो। तुम रुला कर मुझे अपनी बना कर अपना बना लो।'

देखते-देखते जाड़े का दिन म्लान हो गया। धूप, कुहरा तथा मिलों के धुँएँ आदि के मिल जाने से सन्ध्या-काल की मलिनता गम्भीर हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश सम्पूर्ण मलिनता का बोझ लेकर जमीन पर उतर पड़ा है। ठीक उसी भाँति भैया के लिए एक दुश्चिन्ता के दुःसह भार से कुमुदिनी ने मन को नीचे की ओर खींच लिया है।

इस प्रकार कुमुदिनी ने एक ओर तो अभिमान के बन्धन से छुटकारा पाने से मुक्ति के आनन्द का और दूसरी ओर भैया के लिए चिन्ता से पीड़ित हृदय का भार लिये फिर उसी कोठरी के अन्दर प्रवेश किया। उसकी हार्दिक इच्छा यह है कि वह इस बिना उपाय वाली चिन्ता को भी अपने दृढ़ विश्वास द्वारा भगवान् ही पर छोड़ दे किन्तु बारम्बार अपने को धिक्कारने पर भी उसे किसी तरह भी सहारा नहीं मिल रहा है। तार तो अवश्य ही पहुँच गया होगा, उसका जवाब क्यों नहीं आ रहा है यह प्रश्न उसके मन में बराबर उदय हो रहा है।

मधुसूदन स्त्री-हृदय के आत्म-समर्पण की सूक्ष्म बाधा पर कहीं से

भी हाथ नहीं लगा सकता है। जिस स्त्री के मन और शरीर पर उसका पूर्ण अधिकार है, उसके लिए वह भी दुर्गम-सा हो गया है। भाग्य के ऐसे विडम्बनापूर्ण षड्यन्त्र पर वह किस ओर से धावा करे, उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। किसी भी कारणवश मधुसूदन का ध्यान आज तक अपने व्यवसाय से नहीं हटा था। किन्तु उसके भी बुरे लक्षण दिखाई देने लगे। किसी समय उसकी माँ बीमार थी और उसकी मृत्यु हुई उस समय भी मधुसूदन के किसी भी कार्य में तनिक भी बाधा न आई; इसे सभी जानते हैं। उस समय उसके इस दृढ़चित्त की—जो कि विचलित न होता था, लाखों ने प्रशंसा की थी, किन्तु आज वह अपने इस नये परिचय को पाकर एकाएक दङ्ग-सा रह गया है। उसकी समझ में यह बात नहीं आ रही है कि बँधे हुए रास्ते के बाहर जो शक्ति उसे इस भाँति खींच रही है, वह आज उसे किस ओर ले जायगी!

रात में भोजन करने के पश्चात् मधुसूदन ऊपर सोने आया, उसे यद्यपि विश्वास न था किन्तु फिर भी आशा थी, कि शायद आज वहाँ कुमुद से भेंट हो जायगी। इसी कारण वह नियन्ति समय के बाद ही सोने के कमरे में आया। उसका सोने का ठीक टाइम है, एक मिनट भी इधर-उधर नहीं होता। कहीं आज उसे समय पर नींद आ जाय, नहीं तो कुमुद आकर भी लौट जायगी। इसी आशंका के कारण वह पलङ्ग पर नहीं लेटा। कुछ देर तक सोफे पर बैठकर बाद में छत पर जाकर टहलने लगा। ठीक नौ बजे मधुसूदन के सोने का टाइम है किन्तु आज जब उसने ड्योढ़ी के घड़ियाल में ग्यारह बजते सुना तो चौंक पड़ा। उसे शरम सी लगी। किन्तु फिर भी वह बार-बार पलङ्ग के समीप जाता और चुपचाप खड़ा रहता, वह सोने की इच्छा ही नहीं करता। तब उसी रात उसने बाहर के कमरे में जाकर नवीन से निपट लेने की सोची।

बाहर के घर के सामने के बरामदे में जाकर उसने देखा तो भीतर बत्ती जल रही है। जैसे ही वह भीतर घुसने को हुआ कि इतने ही में

नवीन को हाथ में लालटेन लिये बाहर निकलते देखा। यदि दिन होता तो स्पष्ट रूप से यह दिखाई पड़ता कि नवीन का मुँह किस भाँति फक पड़ गया है।

मधुसूदन ने कहा—'इतनी रात को तुम यहाँ कैसे?'

नवीन के मस्तिष्क में तुरन्त एक बहाना सूझ आया, बोला—'मैं सोने के पूर्व ही तो घड़ी में चाभी दिया करता हूँ और तारीख के कार्ड भी ठीक किया करता हूँ।'

'अच्छा, भीतर आओ, सुनो।'

यद्यपि नवीन घबराहट में आ गया किन्तु कटघरे के असामी की भाँति शान्त भाव से खड़ा रहा।

मधुसूदन ने कहा—'मैं इसे तनिक भी सहन नहीं करता कि बड़ी बहू के कानों में कोई मन्त्र फूँके। मेरे घर की बहू मेरी इच्छा अनुसार चलेगी, नियम ऐसा ही है कि वह दूसरे की सलाह पर न चले।'

गम्भीरता से नवीन ने कहा—'यह तो ठीक ही बात है।'

'इसलिए मैं यही कहता हूँ कि मँझली बहू को देश भेज दिया जाय।'

नवीन ने ऐसा भाव दिखलाते हुए मानो वह निश्चिन्त हो गया है, कहा—'यह तो बहुत ठीक है। मैं तो इसे पूछना ही चाहता था किन्तु यह सोचकर रह गया कि शायद आपकी इसमें सलाह न हो।'

मधुसूदन ने विस्मित होकर कहा—'इसके मानी?'

नवीन ने कहा—'कई दिनों से मँझली बहू देश जाने के लिए आग्रह कर रही है, केवल साइत भर देखना शेष रह गया है।'

यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि यह बात बिलकुल बनाई हुई है। मधुसूदन अपने घर में जिसे चाहे बिदा कर सकता है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि कोई चाहे तो स्वेच्छा से चला जा सकता है। यह नितान्त बेदस्तूर की बात है। उसने क्रुद्ध स्वर में कहा—'क्यों, जाने के लिए उन्हें इतनी जल्दी किस बात की है?'

नवीन ने कहा—'घर की मालकिन घर में आ गईं, अब इस घर का समस्त भार उन्हें ही लेना चाहिए। मँझली बहू कहती हैं कि उनके रहने पर न मालूम किस समय कौन सी बात खड़ी हो जाय।'

मधुसूदन ने कहा—'इन समस्त बातों के विचार का भार क्या उसी के ऊपर है?'

नवीन ने भलेमानस की तरह कहा—'क्यों कहें, औरतों की जिद है, सम्भव है उसने सोचा हो कि किसी बात पर तुम्हीं किसी दिन अचानक उसे हटा दो, वह उस अपमान को सहन न कर सकेगी। इसी से उसने बिलकुल प्रण कर लिया है कि जरूर चली जायगी, आनेवाली तेरस को अच्छी साइत है। इसी बीच में वह सब हिसाब-किताब तथा सब काम-काज की चीजों से निपट जाना चाहती है।'

मधुसूदन ने कहा—'देखो नवीन, मँझली बहू को सिर पर चढ़ाकर तुम्हीं ने बिगाड़ दिया है, अतएव कड़ाई के साथ कहना कि उसका जाना हरगिज नहीं हो सकता। तुम मर्द हो, यह मुझसे नहीं देखा जाता कि घर के भीतर तुम्हारा शासन न चल सके।'

नवीन ने सर खुजलाते हुए कहा—'मैं कोशिश करके देखूँगा, परन्तु···।'

'अच्छा, मेरा नाम लेकर कह देना, उसका जाना अभी नहीं हो सकता। जब जाने का समय उपयुक्त समझूँगा तो मैं स्वयं ही निश्चित कर दूँगा।'

नवीन ने कहा—'तुम्हीं ने तो कहा था कि मँझली बहू को देश भेज दो, इसी से तो मैं सोच रहा था···।'

उत्तेजित होकर मधुसूदन ने कहा—'मैंने क्या कहा था, अभी इसी घड़ी भेज दो?'

नवीन धीरे-धीरे वहाँ से चला आया। मधुसूदन गैस की बत्ती जला कर लम्बी आराम-कुर्सी पर जाकर बैठ गया। मकान का चौकीदार रात को घरों के सामने से कभी-कभी बीच-बीच में टहल जाया करता है।

मधुसूदन को जरा उँघाई-सी आ गई थी, अचानक उसने चौंककर देखा घर में घुसकर चौकीदार लालटेन ऊँची किये हुए उसके मुँह की ओर ध्यानपूर्वक देख रहा है। यह स्पष्ट था कि उसके मन में यह बात आ गई थी कि चाहे महाराज को मूर्छा आ गई हो अथवा वे एकदम से खतम ही हो चुके हों मधुसूदन लज्जा के मारे कुर्सी से एकदम भड़भड़ा कर उठ बैठा। उसका इस भाँति बाहर के ऑफिस रूम में बैठकर रात व्यतीत करना और उस शोकजनक दृश्य का चौकीदार द्वारा देखा जाना, मधुसूदन के लिए बड़ी भारी दुर्घटना थी। इस प्रकार के असम्मान का ध्यान आते ही वह मर-सा गया। उठने के साथ ही उसने क्रोध के स्वर में कहा—'घर बन्द करो। मानो घर के बन्द न होने में उसी का अपराध था। ड्योढ़ी के घड़ियाल में दो बज गये।

घर से निकलने के पूर्व ही मधुसूदन ने फिर एक बार टेबिल की दराज खोली। इधर-उधर करते हुए उसने कुमुद के नाम का तार जेब में डाल लिया और अन्तःपुर की ओर चल पड़ा। फिर तीसरी मञ्जिल के जीने के सामने जाकर कुछ देर खड़ा रहा।

गहरी रात्रि में प्रथम नींद के खुलने पर मनुष्य अपनी शक्ति को पूर्ण नहीं पाता। इसी कारण उसके दिन के चरित्र में बनिस्बत रात के चरित्र से अन्तर पड़ता है। रात्रि में दो बजे के समय जब कि चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ है और संसार में वह अपने अतिरिक्त किसी और का जिम्मेदार भी नहीं है—उस वक्त कुमुद के सामने मन ही मन हार मान लेने में उसके लिए कोई असम्भव बात नहीं रही।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

मधुसूदन जीने के नीचे से लौट आया। उसकी छाती का रक्त खौलने लगा। बन्द कमरे के सामने लालटेन जल रही थी। वह चुपके से उसे हाथ में लेकर बत्तीघर के सामने जाकर खड़ा हो गया। धीरे से दरवाजे को ढकेला,

भिड़े हुए किवाड़ खुल गये। बायाँ हाथ छाती पर रखे हुए कुमुद उसी चटाई पर चादर ओढ़े घोर निद्रा में पड़ी हुई है। दीवाल से सटाकर लालटेन को एक कोने में मधुसूदन ने रख दी और वह स्वयं कुमुद के मुँह के बाईं ओर बैठ गया। वह मुँह जो अपनी प्रबल शक्ति द्वारा मन को अपनी ओर खींचता है, इसका कारण मुँह के अन्दर की एक अनिर्वचनीय सम्पूर्णता ही समझना ठीक होगा। कुमुद को अपने अन्दर अपना विरोध कभी प्रतीत ही न हुआ। भैया की गृहस्थी में वाह्य अवस्था के कारण ही वह अभाव के दुःख से दुखित हुई है। उससे उसकी प्रकृति पर कोई धक्का नहीं पहुँचा। जिस गृहस्थी में वह थी, वह उसके स्वभाव के सर्वथा अनुकूल ही थी। अविच्छिन्न सरलता इसी कारण उसके मुँह पर विराजमान है। उसके व्यवहार तथा चलने-फिरने में ऐसी अक्षुण्ण मर्यादा है। जिस मधुसूदन को जीवन की साधना में केवल लड़ाई ही लड़नी पड़ी है, प्रतिदिन की उपस्थित आशङ्का के कारण सदैव जिसे सतर्क रहना पड़ता है, उसके लिए कुमुद का यह सम्पूर्ण सुपरिणति की अपूर्व गम्भीरता अत्यन्त ही आश्चर्य का विषय है। वह स्वयं तनिक भी स्वाभाविक नहीं, किन्तु कुमुद मानो देवता है और उसी की भाँति सहज है। कुमुदिनी की यह प्रतिकूलता ही उसके साथ इस प्रकार तेजी से खींच रही है। ब्याहोपरान्त बहू के पहले ससुराल आते ही जो घटनाएँ हुईं, उसका सम्पूर्ण चित्र जब वह अपने मन में सोचता है तो उसे व्यर्थ ही अपनी ओर क्रुद्ध की अक्षमता दिखाई देती है और दूसरी ओर बहू के मन में अनमनीय आत्म-सम्मान का सहज प्रकाश। उसके व्यवहार में साधारण स्त्रियों की भाँति थोड़ी-सी भी अशोभन प्रगल्भता दिखाई नहीं देती। यदि ऐसा न होता तो उसे अपमानित करने का स्वामित्व उसमें मौजूद है, उस अधिकार को काम में लाने में मधुसूदन को रत्ती भर भी द्वैविध्य करने की आवश्यकता न होती। किन्तु उसे न मालूम क्या हो गया है, उसकी समझ में कुछ आता ही नहीं। न मालूम किस अद्भुत कारणवश कुमुदिनी उसके पकड़ने, छूने में नहीं आती।

मधुसूदन ने निश्चय कर लिया कि वह बिना कुमुद को जगाये ही सम्पूर्ण रात्रि उसके पास बैठे ही बैठे जाग कर बिता देगा। कुछ देर बैठे रहने के पश्चात् वह अधीर हो गया—धीरे से कुमुद का हाथ उसकी छाती पर से उठा कर अपने हाथ में ले लिया। कुमुद नींद की खुमारी में हाथ खींच स्वामी की उल्टी ओर करवट लेकर सो गई।

मधुसूदन से अब न रहा गया, कुमुद के कान के पास मुँह ले जाकर वह बोला—'बड़ी बहू, तुम्हारे भैया का तार आया है।'

कुमुद के कान में भनक पड़ते ही उठकर बैठ गई और आश्चर्य से यों ही आँखें खोल कर मधुसूदन के मुँह की ओर ताकती रह गई। सामने तार रख कर मधुसूदन ने कहा—'तुम्हारे भैया ने इसे भेजा है।' और यह कहते हुए उसने कोने से लालटेन उठा ली।

कुमुदिनी ने तार को पढ़ा, उसमें अङ्गरेजी में लिखा है—'मेरे लिए घबराना मत। धीरे-धीरे आराम हो रहा है, तुम्हें मेरा आशीर्वाद।'

अत्यन्त कठिन उद्वेग के इस महान् दुःख में ऐसी सान्त्वना की बात पढ़ कर उसकी आँखों में पानी भर आया। आँखों को पोंछ कर उसने तार को आँचल में यत्नपूर्वक बाँध लिया। इससे मानो मधुसूदन के दिल में मोच आ गई। उसके बाद उसकी समझ में यह न आया कि वह क्या कहे। कुमुद ही बोल उठी—'क्या भैया की चिट्ठी नहीं आई?'

मधुसूदन से अब यह किसी भी भाँति कहा न जा सका कि चिट्ठी आई है। तुरन्त ही उसने कह दिया—नहीं—तो, चिट्ठी नहीं आई है।

अर्धरात्रि में मधुसूदन के साथ कुमुद को इस कोठरी में बैठे रहने में सङ्कोच-सा मालूम होने लगा। वह उठना ही चाहती थी कि इतने में सहसा मधुसूदन बोल उठा—'बड़ी बहू, मुझ पर क्रोधित मत हो।'

यह तो प्रभु का आदेश नहीं है, यह तो प्रणयी की प्रार्थना है और मानो उसमें अपराधी की आत्मग्लानि भरी हुई है। कुमुद आश्चर्य में आ गई और वह सोचने लगी कि यह दैव जानता है। क्योंकि बारम्बार उसने भी तो यही कहा है। तू गुस्सा मत हो। वही बात आजी

रात के समय आज किसी ने अप्रत्याशित भाव से मधुसूदन से कहलवा ली।

मधुसूदन ने उससे फिर कहा—'क्या तुम अब भी मुझ पर नाराज हो?'

कुमुद ने कहा—'नहीं तो, बिलकुल नहीं, मैं नाराज नहीं हूँ।'

उसके मुँह की ओर देखकर मधुसूदन आश्चर्य में आ गया। मानो वह मन ही मन किसी से बातें कर रहा है। किसी के साथ उसकी बातें हो रही हैं।

मधुसूदन ने कहा—'तो, फिर यहाँ से चलो, उठो, अपने कमरे में चलो।'

आज रात्रि के लिए कुमुदिनी तैयार न थी। नींद से जागने पर सहसा मन को बाँध लेना मुश्किल है। उसने निश्चय कर लिया था कि कल प्रातःकाल नहा-धोकर देवता के सामने प्रतिदिन का प्रार्थना मन्त्र पढ़ कर तब कहीं दूसरे दिन से गृहस्थी के कामों में वह हाथ लगावेगी। उसने फिर सोचा—'देवता ने मुझे समय नहीं दिया, आज अर्धरात्रि में बुलाया है, मैं इस अवसर पर नहीं कैसे कहूँ। मन के भीतर की अनिच्छा को उसने अपराध समझ ठुकरा दिया और उठ खड़ी हुई तथा बोली—चलो!'

ऊपर सोने के कमरे के सामने पहुँच कर वह ठिठक कर खड़ी हो गई और बोली—'मैं अभी आती हूँ, देर न करूँगी।'

यह कहते हुए वह आगे छत की ओर बढ़ गई और एक कोने में जाकर बैठ गई। उस समय कृष्ण पक्ष का खण्डचन्द्र मध्य आकाश में विराजमान था। कुमुद बार-बार अपने मन में यही कहने लगी—'प्रभु! तुमने मुझे बुलाया है। मुझे तुम भूले नहीं, शायद इसी से बुलाया है! हे प्रभु! मुझे कँटीले तारों में ले जाने वाले क्या तुम्हीं हो और कोई तो नहीं?'

कुमुद सभी को लुप्त कर देना चाहती है, सभी माया है और सब

यदि काँटे भी हों तो वे मार्ग के काँटे हैं और वे उन्हीं के मार्ग के हैं। साथ ही उसके भैया का आशीर्वाद भी आज ही मिला है। उस आशीर्वाद को अपने आँचल में बाँध लिया है। इसी बँधे हुए आशीर्वाद को उसने अनेकों बार माथे से लगाया। इसके पश्चात् बहुत देर तक जमीन से सिर लगाये नमस्कार करती रही। पीछे से मधुसूदन बोल उठा—'बड़ी बहू, सर्दी पड़ रही है। ठण्ड न लग जाय, कमरे में चलो।' वह चौंक उठी। कुमुद अन्तःकरण में जिस वाणी को सुनना चाहती थी, उसमें और इसके स्वर में अन्तर है उसकी यही तो परीक्षा है। आज देवता उसे भी न बुलावेंगे। वे आज छद्मवेश में रहेंगे।

तैंतीसवाँ परिच्छेद

कुमुद जहाँ से व्यक्तिगत मानव है, वहाँ ज्यों-ज्यों उसका मन धिक्कार, घृणा, तृष्णा आदि से भरता जाता है। गृहस्थी अपने रूढ़ अधिकार द्वारा ज्यों-ज्यों उसे अपमानित करती जा रही है, त्यों-त्यों वह अपने चारों ओर एक आवरण बनाती जा रही है, वह ऐसा आवरण है जो उसकी निजी अच्छे लगने, बुरे लगने की सच्चाई को लुप्त कर देता है। अर्थात् अपने विषय में उसकी चेतना को घटा देता है, यह क्लोरोफार्म का विधान है जो कि केवल तीन-चार ही घण्टे की व्यवस्था नहीं है। समस्त दिन-रात वेदना बोध को अरुचि की अनुभूति को दूर रखना होगा। अगर ऐसी अवस्था में स्त्रियों को किसी भाँति एक गुरु मिल जाय तो उनकी आत्म-स्मृति की दवा सहज ही हो जाये, सो यह तो हुआ नहीं, इसी से उसने पूजा-गीत को बार-बार रटने का सङ्कल्प-सा कर लिया। उसका दिन-रात का यही मन्त्र था—

हे मेरे पूजनीय, तुम्हारे समक्ष अपने सम्पूर्ण शरीर को अर्पण करके यह प्रसाद चाहती हूँ कि तुम उसी भाँति मुझे सह सको तथा माफ कर सको जैसे पिता पुत्र को तथा सखा अपने दूसरे को तथा हे देव!

प्रिय जिस भाँति अपनी प्रिया को सह सकते हैं। तुम जो अपने प्रेम द्वारा मुझे सह सकते हो उसका प्रत्यक्ष प्रमाण इसके सिवा और दूसरा क्या है कि मैं तुम्हारे प्रेम से सब कुछ क्षमा कर सकती हूँ। कुमुदिनी ने आँखें मींच मन ही मन उन्हें पुकार कर कहा—'तुम्हीं ने तो कहा है, जो मनुष्य मुझे सब जगह और मुझ में सब कुछ देखता है वह मुझे त्यागता नहीं और मैं भी उसे नहीं त्यागता। इस साधना में मैं ज़रा भी शिथिल न होऊँ।'

आज सवेरे नहा-धोकर कुमुदिनी ने चन्दन के पानी से अपने शरीर को सींचा और अपनी ओर छिड़का। शरीर को निर्मल तथा सुगन्धित करके उसने उन्हीं पर समर्पित कर दिया। एकाग्रता के साथ ही साथ मन में विचार करने लगी कि प्रत्येक क्षण उसके हाथ में उनका हाथ है। उसके शरीर में उनका सर्वव्यापी अविराम स्पर्श विराजमान है। सत्य एवं सम्पूर्ण रूप से यह शरीर उन्हीं को मिला है, उनके मिलने के बाहर जो शरीर है वह नितान्त झूठा है। वह माया तथा मिट्टी है जो कि मिट्टी में मिल जायगा। मैं उनके स्पर्श का जब तक अनुभव करती हूँ, तब तक यह शरीर कभी अपवित्र नहीं हो सकता। इस बात को सोचते सोचते आनन्द के कारण उसकी आँखें सजल हो उठीं—उसके शरीर को मानो मांस के स्थूल-बन्धन से मुक्ति मिल गई। पुण्य-मिलन के विस्तृत क्षेत्र को समझ कर मानो उसे अपने शरीर से भक्ति हो गई। यदि उसे कुन्द फूल की माला अपने हाथों में मिल जाती तो उसे वह अपने गले में पहन लेती और जूड़े में भी बाँध लेती। नहा चुकने पर उसने एक लम्बे-चौड़े लाल पाड़ की श्वेत साड़ी पहन ली। वह जब छत के ऊपर जाकर बैठी तो उसे विदित हुआ, मानो सूर्य के प्रकाश के रूप में ऊपरी एक स्पर्श ने उसके शरीर को अभिनन्दित किया।

कुमुद ने मोती की माँ के पास आकर कहा—'तुम मुझको अपने काम में लगा दो।'

हँसते हुए मोती की माँ बोली—'तो फिर आ न जाओ, तरकारी

बनाओ।'

बड़े बड़े कठौते, पीतल की बड़ी-बड़ी नाँदें, टोकनियों के ऊपर टोकनी भरी साग-सब्जी, कुटुम्ब की दस-पन्द्रह स्त्रियाँ गप्प मारती हुईं बैठ लगे हँसियों को लेकर बहुत तेजी से हाथ चलाकर तरकारी काट रही हैं। वहाँ चारों ओर कटी हुई तरकारियों का ढेर-सा लगा जा रहा है। एक जगह उन्हीं के बीच कुमुदिनी जाकर बैठ गई। सामने के झरोखे से कुमुद की निगाह पड़ोस में खड़े हुए एक पुराने इमली के वृक्ष पर पड़ी। इसकी चञ्चल पत्तियों से सूर्य की किरणें छिन्न-भिन्न होकर बिखर रही हैं।

बीच-बीच में मोती की माँ कुमुद के मुँह की ओर देखती जाती और सोचती जाती—'जाने क्या कर रही है, या उनकी अँगुलियों की चाल के सहारे उनका मन किसी एक तीर्थ के मार्ग पर चला जा रहा है! उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह पालदार नाव हो, जिसकी मस्तूल पर के पाल में हवा आकर लग रही है और नाव मानो उस स्पर्श ही में मग्न है! उसके दोनों ओर आ-आकर जो पानी लग रहा है उसका उसे ध्यान तक नहीं है। घर की अन्य स्त्रियाँ जो वहाँ काम कर रही हैं, वे कुमुद से बातचीत करना चाह रही हैं किन्तु वह कोई बातचीत करने का सरल रास्ता ही न पा रही हैं। श्यामासुन्दरी ने एक बार कहा— बहू तुम सवेरे ही नहाया करती हो, कह क्यों नहीं देती हो, पानी गरम हो जाया करे, कहीं ठण्ड न लग जाय ?'

कुमुद ने कहा 'मुझे इसकी आदत पड़ गई है।'

बातचीत आगे न बढ़ सकी। कुमुद की हृदतन्त्री में उस समय एक नीरव जप की माला चल रही थी।

तरकारी बघारने और सामान देने का सब काम समाप्त हो गया। सब औरतों ने नल के नीचे जाकर आँगन में धूम मचा दी।

कुमुद ने मोती की माँ को अकेले में पाकर कहा—'भैया का तार मिल गया।'

मोती की माँ ने आश्चर्य में आकर कहा—'कब मिला ?'

कुमुद बोली—'कल रात्रि में !'

'रात्रि में !'

'हाँ, बहुत रात्रि में। उन्होंने आकर स्वयं मेरे हाथ में दिया।'

मोती की माँ ने कहा—'तो चिट्ठी भी जरूर मिली होगी ?'

'कौन-सी चिट्ठी ?'

'तुम्हारे भैया की चिट्ठी ?'

कुमुद घबरा कर बोल उठी—'नहीं तो, मुझे कहाँ मिली, क्या भैया की चिट्ठी भी आई है ?'

मोती की माँ चुप रही।

उत्कण्ठित हो कुमुद ने मोती की माँ के हाथ को मसलते हुए कहा—'भैया की चिट्ठी कहाँ है, मुझे ला दो न !'

मोती की माँ ने चुपके से कहा—'मैं उस चिट्ठी को दे नहीं सकती, वह जेठ जी के कमरे में जो बाहर है, दराज के भीतर रखी है।'

'मेरी चिट्ठी मेरे पास लाने में डर किस बात का ?'

'यदि उन्हें किसी भाँति यह मालूम हो गया कि उनकी दराज खोली गई है तो अनर्थ हो जायगा।'

कुमुद ने घबराकर कहा—'तो क्या मैं भैया की चिट्ठी भी नहीं पढ़ सकती ?'

'जेठ जी जब ऑफिस चले जायँ, उसी वक्त उसे पढ़कर फिर उसी दराज में रख देना।'

क्रोध को वह रोक न सकी। गरम होकर बोल उठी—'क्या अपनी भी चिट्ठी चुराकर पढ़नी होगी ?'

'किसे अपनी कहें और किसे बेगानी। इस बात का फैसला तो घर के मालिक ही के हाथ में है।'

कुमुद अपनी प्रतिज्ञा भूली जा रही थी, सहसा उसके मन ने भीतर से अँगुली उठाकर कहा—'गुस्सा न करना।' क्षण भर के लिए कुमुद ने

आँखें मींच लीं। उसके ओंठ काँपने लगे।

कुमुद ने कहा—'यदि मेरी कोई चिट्ठी चुराना चाहे, चुरावे, उसे चुराकर मैं उसका बदला लेना नहीं चाहती।'

यह सब कह चुकने के बाद ही कुमुद को ज्ञात हुआ कि अवश्य ही उसके मुँह से कोई बड़ी बात निकल गई है, समझ गई की जो भीतर क्रोध है, वह उसके अगोचर में अपने को प्रकट कर रहा है, उसे उखाड़ फेंकना होगा। वह उसके साथ लड़ना चाहती है, किन्तु सदैव वह वहाँ तक तो पहुँच भी नहीं पाती। वह गुफा के भीतर किला बनाया करता है, वहाँ बाहर से घुसने का रास्ता कहाँ! प्रेम की एक ऐसी बाढ़ लानी होगी जो रुद्ध को मुक्त करके बद्ध को बहा ले जाय। सङ्गीत ही उसके हाथ में एक ऐसा उपाय था जो उसके मन को भुला सकता था, किन्तु इस घर में उसे इसराज बजाने में शर्म-सी लगती है। वह अपने साथ इसराज लाई भी नहीं। कुमुद गाना गा सकती है, किन्तु उसके कण्ठ में उतना जोर नहीं है। गाने की धारा से आकाश को बहा देने की इच्छा हुई। अभिमान का गीत, जिसमें वह कह सकती है—मैं तो तुम्हारी ही पुकार से आई हूँ, फिर तुम छुप क्यों गये?' मैंने तो क्षणमात्र के लिए दुविधा नहीं की फिर भी आज मुझे ऐसे संशय में क्यों डाल दिया है?' इन सब बातों को वह गाने में गला खोलकर खूब जोर से कहना चाहती है। तभी उसे मानो उस आवाज में जवाब मिल गया।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

कुमुदिनी के भागने की केवल एक ही जगह है—मकान की छत। वह वहीं चली गई। दिन चढ़ आया है, समस्त छत कड़ी धूप से भर गई है, केवल जीने की दीवार के पास थोड़ी-सी जगह है, जहाँ धूप नहीं पहुँच पाई है। वह वहीं जाकर बैठ गई। उसे असावरी नामक रागिनी

बार-बार याद आने लगी। जिसका प्रारम्भ है—'बाँसुरी हमारी रे !' किन्तु उसका शेष भाग और लोगों का मुँहजबानी भी याद होगा। इसका अर्थ समझ में नहीं आता। कुमुदिनी उस थोड़े से अंश को अपनी स्वेच्छा से नई-नई तानों में उलट-पुलट कर गाने लगी। वह थोड़ी सी बात अर्थों से परिपूर्ण हो उठी। वह वाक्य मानो कह रहा है—'अरी मेरी बाँसुरी तू लबालब तानों से भर क्यों नहीं जाती ! जहाँ दरवाजा बन्द है और जहाँ अभी नींद नहीं टूटी, वहाँ तू अँधेरे को चीर कर पहुँच क्यों नहीं जाती !—बाँसुरी रे, बाँसुरी हमारी रे !'

जब मोती की माँ ने आकर कहा—'चलो बहन खाने चलो।' उस समय वह रही-सही छाया भी समाप्त हो चुकी थी। किन्तु कुमुद का मन तान से भरा है। संसार में उसके ऊपर किसने अन्याय किया है इसे वह नितान्त तुच्छ समझती है। उसकी चिट्ठी के विषय में मधुसूदन ने जो तुच्छता की थी, उससे उसके मन में तीव्र अवज्ञा उदित हो उठी थी। मानो वह इस धूप से परिपूर्ण आकाश के बीच न जाने कहाँ पतङ्ग की भाँति विलीन हो गई। उसकी क्रोध भरी प्रतिध्वनि असीम आकाश में लुप्त हो गई। किन्तु चिट्ठी के भीतर के स्नेह वाक्य को प्राप्त करने में तो उसके मन का आग्रह किसी भी भाँति शान्त नहीं होता।

उसके मन में यह व्यग्रता लगी ही रही। भोजन करने के बाद उससे रहा न गया। मोती की माँ ने उससे कहा—'मैं बाहर के कमरे में जाकर चिट्ठी पढ़ आती हूँ।'

मोती की माँ ने कहा—'जरा थोड़ी देर और ठहर जाओ, नौकर-चाकर जब छुट्टी पाकर चले जायँ तब पढ़ आना।'

कुमुद ने कहा—'नहीं, नहीं, वह तो बिलकुल चोर की भाँति जाना होगा। मैं तो खुल कर जाना चाहती हूँ, बाद में जिसके जी में चाहे जो आवे, वह समझा करे।'

मोती की माँ बोली—'चलो मैं भी साथ चलती हूँ।'

कुमुद कहने लगी—'नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। तुम मुझे केवल इतना भर बता दो कि किधर से जाना होगा !'

अन्तःपुर के झरोखेदार बरामदे में से मोती की माँ ने कुमुद को वह कमरा दिखा दिया। कुमुद बाहर की ओर चल पड़ी। सभी नौकर-चाकर चकित होकर उठ खड़े हुए और उसे प्रणाम करने लगे। कमरे में घुस कर जब कुमुद ने डेस्क की दराज खोली तो उसमें उसका पत्र मिला। उसे हाथ से उठाने लगी—लिफाफा खुला हुआ है। छाती के भीतर से असहनीय तूफान-सा उठने लगा। जिस घर में कुमुद का लालन-पालन हुआ है, वहाँ इस भाँति के अपमान की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। उसके उमङ्ग की तेज प्रचण्डता ही ने उसे ठोकर मार-मार कर सचेत कर दिया है। उसके मन का तूफान रुकता ही नहीं, न जाने वह क्या-क्या सोचने और कहने लगी। बाहर जो अरदली खड़ा था ऑफिस-रूम में अकेली बहूरानी को मन ही मन मन्त्र-सा पढ़ते देख वह दंग रह गया। देर तक अध्ययन करते करते कुमुद का मन शान्त हो गया, इसके पश्चात् वह पत्र को सामने रखकर हाथ जोड़ चुपचाप चौकी के ऊपर बैठी रही। वह पत्र चुरा कर नहीं पढ़ेगी, उसने ऐसा प्रण कर लिया है।

इतने में मधुसूदन आ गया। वह चौंक कर अचकचाते हुए खड़ा हो गया, कुमुद ने उसकी ओर देखा तक नहीं। जब वह पास आया तो उसने देखा कि डेस्क पर विप्रदास का पत्र पड़ा हुआ है। उसने पूछा—'तुम यहाँ कैसे?'

चुपचाप शान्त दृष्टि से कुमुद ने मधुसूदन के मुख की ओर देखा। उसकी दृष्टि से शिकायत का भाव उदित न होता था, मधुसूदन ने फिर कहा—'तुम इस कमरे में क्यों आई?'

नितान्त निःप्रयोजनीय प्रश्न के विषय में कुमुद ने अधैर्यस्वर में कहा—'मेरे नाम से भैया की भेजी चिट्ठी आई है या नहीं, इसे ही देखने मैं यहाँ आई थी।'

'मुझ से पूछा क्यों नहीं, इस प्रश्न के रास्ते को मैं कल रात्रि में ही स्वयं बन्द कर चुका था।' अतएव बोला—'इस चिट्ठी को मैं स्वयं ही

तुम्हारे पास ले जा रहा था। इसके वास्ते तुम्हें यहाँ आने की कोई जरूरत नहीं थी।'

कुछ देर तक कुमुद शान्त बैठी रही। फिर मन को शान्त करके बोली—'तुम्हारी यह इच्छा नहीं है कि मैं इस चिट्ठी को पढ़ूँ, इसी से मैं इसे न पढ़ूँगी। यह देखो मैंने फाड़ डाला किन्तु इस प्रकार का कष्ट अब मुझे कभी न देना। इससे बढ़कर मेरे लिए और दूसरा कष्ट क्या हो सकता है!'

मुँह के ऊपर आँचल डालकर इस वाक्य को समाप्त कर चुकने के बाद दौड़ती हुई वह भीतर चली गई।

इससे प्रथम आज दोपहर के भोजन के उपरान्त मधुसूदन के मन में उथल-पुथल मच रही थी। उस आन्दोलन को वह किसी भी भाँति रोक न सका। कुमुद के भोजन करने के पश्चात् मधुसूदन उसे बुलाना चाहता था। उसने आज सिर के बाल काढ़ने में विशेष ध्यान दिया है। आज प्रातःकाल ही उसने एक अङ्गरेज नाई की दूकान से स्पिरिट मिला सुगन्धित तेल और कीमती एसेन्स मँगा लिया था। जीवन में ऐसी चीजों का व्यवहार आज उसने सर्वप्रथम ही किया है। सुगन्धित परिपूर्ण हो वह सुसज्जित तैयार बैठा था। ऑफिस के वक्त को आज पैंतालीस मिनट चूक गया था।

मधुसूदन जीने के ऊपर पैरों की आहट पाकर चौंककर बैठ गया, हाथ के पास और कुछ न पाकर एक पुराना अखबार लेकर उसके विज्ञापन को इस भाँति देखने लगा, मानो वह उसके दफ्तर के काम का ही अङ्ग हो। यहाँ तक कि जेब के भीतर से एक मोटी नीली पेन्सिल निकालकर उसने उस पर दो-एक निशान लगा दिये।

श्यामासुन्दरी ने इतने ही में कमरे में प्रवेश किया। भौंहों को सिकोड़ते हुए मधुसूदन ने उसकी ओर देखा। श्यामा बोली—'तुम यहाँ बैठे हो, बहू तुम्हें ढूँढ़ती फिर रही है।'

'ढूँढ़ती फिर रही है! कहाँ?'

'अभी तो देख कर आ रही हूँ। बाहर तुम्हारे ऑफिस वाले कमरे में गई है सो इसमें ताज्जुब काहे का ?—उसने शायद यह समझा है कि तुम वहीं ···।'

मधुसूदन झटपट वहाँ से निकलकर चला गया। उसके बाद ही चिट्ठी वाली घटना हुई।

पालदार नाव की, अचानक पाल के फट जाने से जो दशा होती है, वही दशा मधुसूदन की भी हुई। उस समय तनिक भी देर करने का अवसर न था, अतएव दफ्तर चल दिया। किन्तु सभी कामों में भीतर ही भीतर उसकी असम्पूर्ण टूटी-फूटी चिन्ता की तीव्र नोक बारम्बार मानो उचक-उचक कर छेदने लगी। इस मानसिक भूकम्प के भीतर हृदय से जमकर काम करना उसके लिए नितान्त असम्भव हो उठा। उसने ऑफिस में यह कह दिया कि मेरे सिर में बड़े जोर से दर्द हो रहा है और वह ऑफिस के काम खत्म होने के पूर्व ही घर लौट आया।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

इधर नवीन और मोती की माँ ने समझ लिया कि अब सीमा टूट गई, अब भाग करके जान बचाने का ठिकाना कहीं भी नहीं है। मोती की माँ ने कहा—'जिस प्रकार यहाँ मेहनत-मजदूरी करके मैं अपना पेट भरती हूँ; उसी तरह मुझे अन्यत्र भी संसार में तमाम जगहें अपनी गुजर बसर करने योग्य मिल जायँगी। दुःख मुझे केवल इतना ही है कि मेरे चले जाने पर इस घर में जीजी की देख-भाल करने वाला कोई भी न रह जायगा।'

नवीन बोल उठा—'तो सुनो मँझली बहू, मैं यहाँ बहुत सह चुका हूँ। इस घर के अन्न-जल से मुझे अरुचि-सी उत्पन्न हो गई है; किन्तु अब असह्य हो रहा है। भैया ने इस तरह की बहू पाकर भी कदर न जानी, रखना न जाना, समस्त बने-बनाये खेल को चौपट कर दिया। अच्छी वस्तु के फूटे हुए टुकड़ों ही से दरिद्रता अपना घर बनाती है।'

मोती की माँ बोली—'इस के समझने में अब तुम्हारे भाई साहब को तनिक भी देर न लगेगी, किन्तु तब इस टूटे हुए को जोड़ना असम्भव होगा।'

नवीन ने कहा—'लक्ष्मण-देवर होने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त न हो सका, केवल मुझे इसी बात का दुःख है। यहाँ तो जब जिसका वक्त आ जाता है फिर उसे देर नहीं लगती। खैर, तुम्हें चीज वस्तु तो बाँध ही लेनी चाहिए।'

मोती की माँ चली गई। नवीन से अब रहा न गया, वह शनैः शनैः अपनी भाभी के कमरे तक पहुँचा। उसने पहुँचकर देखा तो कुमुद अपने कमरे में जमीन के ऊपर बिछौना बिछा कर पड़ी हुई है। जिस चिट्ठी को उसने फाड़कर फेंका है उसकी वेदना से वह अपने मन को किसी भी प्रकार धैर्य नहीं बँधा सकती।

नवीन को देखकर वह झटपट उठ बैठी। नवीन ने कहा—'भाभी! पैर छूने आया हूँ, जरा मुझे अपने पैरों की धूल दो।'

भाभी के साथ नवीन की यह प्रथम ही बातचीत है।

कुमुद बोल उठी—'आओ, आओ, बैठो!'

नवीन जमीन पर बैठ गया और कहने लगा—'मैं तुम्हारी सेवा कर सकूँगा इस प्रसन्नता के कारण मेरी छाती फूल उठी थी; किन्तु नवीन के सौभाग्य में यह कहाँ बदा है? तुम्हें अल्पकाल ही के लिए पाया सो भी कुछ मुझसे हो न सका, इस बात का अफसोस मन में ही रह गया।'

कुमुद ने कहा—'तुम कहाँ जा रहे हो?'

नवीन ने कहा—'हम लोगों को भैया देश भेजेंगे, फिर बाद में शायद तुमसे मिलने का अवसर न मिले। इसी कारण प्रणाम करके विदा लेने आया हूँ।'—कहकर प्रणाम किया। इतने ही में मोती की माँ दौड़ती हुई आई, बोली—'जल्दी आओ! 'बड़े' तुम्हें ढूँढ़ रहे हैं।'

नवीन तुरन्त ही उठकर खड़ा हो गया और चल पड़ा, मोती की

माँ भी उसके साथ हो ली।

बाहर के कमरे में डेस्क के पास ही बड़े भाई साहब बैठे हैं, नवीन सामने आकर खड़ा हो गया। और दिनों उसके मुख पर आशङ्का का भाव वर्तमान रहता था, आज वह आशङ्का उसमें लेश-मात्र भी न रह गई थी।

मधुसूदन ने पूछा—'इस बात को बड़ी बहू से किसने कहा कि डेस्क में चिट्ठी है?'

नवीन ने कहा—'मैंने ही कहा था।'

'तुम्हारा साहस इस भाँति एकाएक कैसे बढ़ गया?'

'बड़ी बहूरानी ने मुझसे पूछा कि उनके भैया की चिट्ठी आई है या नहीं। घर की सम्पूर्ण चिट्ठियाँ प्रथम तो तुम्हारे ही पास आकर इसी में जमा होती हैं, इसी कारण मैं देखने आया था।'

'तुम में मुझसे पूछने तक का धैर्य अथवा सब्र न हुआ?'

'वे घबरा रही थीं इसी से…।'

'इसी से मेरा हुक्म उड़ा दिया, क्यों?'

वे भी तो इसी घर की मालकिन हैं, उनके हुक्म को टाल मैं यह कैसे समझता कि उनका हुक्म यहाँ न चलेगा? वे जो कहें, मैं उसे न मानूँ, इतना साहस मुझ में नहीं है। आप से एक बात और कह देता हूँ, वे केवल मालकिन ही नहीं हैं प्रत्युत मेरी पूज्य भी हैं। उनके हुक्म को मैं केवल इसलिए नहीं मानता कि मैं उनका नमक खाता हूँ, बल्कि उन पर मेरी भक्ति है, इसलिए उनका हुक्म मेरे सिर-माथे पर है।'

'नवीन, मैं तो तुम्हें बचपन ही से देख रहा हूँ, यह बुद्धि तुम्हारी नहीं जान पड़ती। मुझे सब ज्ञात है कि तुम्हें बुद्धि कहाँ से मिलती है। खैर, कुछ भी हो, आज तो वक्त निकल गया। कल ही प्रातःकाल की गाड़ी से तुम लोग देश रवाना हो जाना।'

'जी हाँ'—बिना कुछ कहे सुने ही केवल इतना ही भर कह कर

वह जल्दी से वहाँ से चला गया।

संक्षेप में केवल 'जी हाँ' कहना मधुसूदन को बिलकुल ही अच्छा न लगा। नवीन को कुछ दुःख प्रकट करना चाहिए था, यद्यपि उससे मधुसूदन के विचार पर किसी भी प्रकार का कोई असर न पड़ता। फिर से नवीन को बुलाकर कहा—'तनख्वाह चुकता करके ले जाओ, साथ ही यह भी जान लो कि अब तुम लोगों को खर्च न दे सकेंगे।'

नवीन ने कहा—'यह मैं जानता ही हूँ, देश में जो मेरे हिस्से की जमीन है, उसमें खेती करके मैं अपना निर्वाह कर लूँगा।'

यह कहकर तथा बिना किसी बात की प्रतीक्षा किये हुए वह वहाँ से चला गया।

भिन्न-भिन्न प्रकार की धातुओं से मनुष्य की प्रकृति बनाई गई है, इस बात का एक प्रमाण यह है कि नवीन के प्रति मधुसूदन का अगाध प्रेम है। मधुसूदन के और दो भाई रजबपुर में गाँव के जमीन-जायदाद के काम से पड़े हुए हैं, मधुदसून उनकी कभी कोई खोज-खबर भी नहीं लेता। उसने पिता की मृत्यु के बाद ही नवीन को कलकत्ते बुला लिया और पढ़ा-लिखा कर उसे अपने पास बराबर रखा। घर के सम्पूर्ण कामों में नवीन दक्ष है। उसका मूल कारण उसके सच्चे होने का ही है। साथ ही साथ बातचीत तथा व्यवहार आदि में भी वह सब का प्यारा है। यदि कभी घर में किसी से झगड़ा लड़ाई हो जाती तो नवीन ही बड़ी आसानी के साथ निबटाता। नवीन सभी बातों में हँसना जानता है, वह अपने आदमियों के साथ केवल न्याय ही नहीं करता बल्कि इस प्रकार का व्यवहार करता है जिससे सभी यह समझा करते हैं कि नवीन का उसके प्रति विशेष पक्षपात है।

मधुसूदन नवीन को हृदय से चाहता है, इसका प्रबल प्रमाण यही है कि मोती की माँ को मधुसूदन देख नहीं सकता। जिसके ऊपर उसका प्रेम है, उसके ऊपर उसका आधिपत्य होना ही चाहिए। मधुसूदन सिर्फ इसी कारण कल्पना किया करता है कि मोती की माँ [illegible]न के दिल को

झाड़ा करती है। छोटे भाई के ऊपर जो उसका पैतृक अधिकार है, उस पर एक पराये घर की लड़की आकर विघ्न डाला करती है। यदि मधुसूदन का नवीन के ऊपर घना प्रेम न होता तो मोती की माँ के लिए निर्वासन का दण्ड कभी का पक्का हो गया होता।

मधुसूदन ने सोच रखा था कि इतने काम को समाप्त कर चुकने के पश्चात् वह एक बार अवश्य ही आवेगा, किन्तु उसके मन में किसी भी भाँति इतनी ताकत नहीं आ सकी। कुमुद जो चिट्ठी फाड़ कर चली गई थी, उसकी तसवीर उसके मन पर खिंच गई, वह एक आश्चर्यजनक दृश्य था जिसकी उसने स्वप्न में कल्पना भी न की थी। अपने सदैव की संदिग्ध आदत के कारण उसने यह समझ लिया था, चिट्ठी कुमुद ने अवश्य ही पहले पढ़ ली होगी। परन्तु कुमुद के मुख पर सत्य की जो एक निर्मल आभा है उससे मधुसूदन उसके ऊपर अविश्वास न कर सका।

कुमुदिनी के ऊपर कड़ा शासन रखना मधुसूदन देखते-देखते गँवा चुका है। इस समय उसकी अपनी ओर की त्रुटियाँ ही उसे कष्ट पहुँचा रही हैं। वह उम्र में ज्यादा है, इस बात को वह भुलाना चाहता है किन्तु उसे भूलती नहीं। यहाँ तक कि अब उसके बाल जो सफेद हो रहे हैं, उन्हें भी वह किसी भाँति छिपाना चाहता है। उसका रंग काला है, ईश्वर के इस प्रकार के अन्याय पर उसे दुःख होता है। मधुसूदन में रूप और यौवन का अभाव अवश्य ही है, इसी कारण वह निगाह तथा दुर्बल है। इसमें सन्देह नहीं कि इसी से कुमुद का मन बार-बार उसकी मुट्ठी से बाहर हो जाता है। उसने चटर्जी खानदान की लड़की से शादी करने का विचार अवश्य किया किन्तु इस बात को वह स्वप्न में भी न सोच सका था, कि उसे वहाँ से ऐसी लड़की मिलेगी, जिसके समक्ष ईश्वर ने प्रथम ही से उसकी हार निश्चित कर दी है। साथ ही उसके दिल में यह भी नहीं कि वह कह देता कि उसके लिए एक साधारण कोटि की लड़की होती तो अच्छा था जिसके ऊपर कि उस का

शासन चल सकता।

यदि मधुसूदन कुमुद की किसी बात में टक्कर ले सकता था तो वह केवल धन से। आज जबकि प्रातःकाल ही जौहरी आया था उसने तीन अँगूठियाँ खरीद ली हैं, वह यह देखना चाहता है कि इनमें से कुमुद को कौन सी पसन्द है। अँगूठियों की डिबियों को जेब में डालकर वह ऊपर सोने के कमरे में जा पहुँचा। उनमें से एक हीरे की है, एक चुन्नी की तथा एक पन्ने की है। काल्पनिक संसार में उपस्थित होकर मधुसूदन एक दृश्य देखने लगा मानो उसने चुन्नी की अँगूठी वाली डिबिया को धीरे से खोली, कुमुद की लोभ भरी आँखें चमक उठीं। उसके बाद पन्ने की निकाली जिससे उसकी आँखें फट सी गईं। सबसे पीछे उसने हीरे की अँगूठी खोली। उसकी बहुमूल्य उज्ज्वलता से कुमुदिनी के आश्चर्य की सीमा न रही। मधुसूदन ने गम्भीर होकर राजसी रोब से कहा—'तुम्हें जो पसन्द हो छाँट लो।' उनमें से हीरे की अँगूठी कुमुद को पसन्द आई। मधुसूदन उसके लुब्ध साहस को देखकर मुस्करा पड़ा। उसने तीनों अँगूठियाँ निकाल कर कुमुद की तीन अँगुलियों में पहना दीं। इसके पश्चात् ही रात्रि को सोने वाले मञ्च का पर्दा उठा।

मधुसूदन का मतलब यह था कि यह बात आज रात्रि में खाने-पीने के पश्चात् की जायगी, किन्तु दोपहर वाली दुर्घटना के कारण मधुसूदन से फिर भी न रहा गया। रात की भूमिका को वह आज दोपहर ही में तय कर डालने के लिए भीतर गया।

भीतर पहुँचकर उसने देखा कि कुमुद एक टीन के ट्रङ्क में अपने कपड़े लत्ते तथा सभी वस्तुओं को सँभाल-सँभाल कर रख रही है। आस-पास कपड़े-लत्ते तभी वस्तुएँ बिखर रही हैं।'

'एँ! यह क्या? कहीं जा रही हो?'

'हाँ!'

'कहाँ?'

'रजबपुर।'

'इसका क्या मतलब ?'

'तुमने अपने दराज खोलने के कसूर में देवर जी को सजा दी है, वास्तव में वह सजा मुझे मिलनी चाहिए।'

मधुसूदन के स्वभाव के प्रतिकूल यह बात थी कि वह उससे 'मन जाओ' कहकर अनुनय-विनय करता। उसका मन पहले ही बोल उठा— 'जाने भी दो, देखूँ तो वह कितने दिन वहाँ रहता है।' क्षण भर भी देर न करके वह तेजी के साथ बाहर चला गया।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

बाहर वाले कमरे में पहुँचकर मधुसूदन ने नवीन को बुलाया और कहने लगा—'बड़ी बहू को तुम लोगों ने भड़का दिया है।'

'भाई साहब, हम लोग तो अब कल जा ही रहे हैं, इस कारण अब डर से हिचकते हुए आपसे बातें न करूँगा। मैं साफ-साफ कह रहा हूँ, बड़ी बहू को भड़काने के लिए घर में किसी व्यक्ति को भड़काने की जरूरत न होगी—तुम अकेले ही काफी हो। हम लोगों के रहने पर शायद वह कुछ शान्त भी रहती किन्तु तुमसे यह न सहा जा सका।'

गरजते हुए मधुसूदन ने कहा—'बस ज्यादा बुजुर्गी न छाँट, रजबपुर जाने की बात उसे तुम्हीं लोगों ने सिखाई है।'

'इसे मैं सोच भी नहीं सकता, सिखाना तो बहुत दूर है।'

'देख, यदि इसी बात पर उसे नाच नचाया तो अच्छा न होगा, यह मैं साफ-साफ कहे देता हूँ।'

'भाई साहब, इन बातों को किससे कह रहे हो ? कहने से जहाँ इसका कुछ परिणाम निकले, वहीं आपको कहना चाहिए।'

'तुम लोगों ने कुछ भी नहीं कहा ?'

'कसम खाकर कहता हूँ, मैंने कल्पना भी नहीं की।'

'यदि बड़ी बहू ज़िद कर बैठेगी, तो तुम लोग क्या करोगे ?'

'तुम्हें बुलाऊँगा। तुम्हारे पास हरकारे बर्कन्दाज और पियादे हैं, तुम रोक सकते हो। किन्तु फिर भी बाद में यदि तुम्हारे निरर्थक-शत्रु इस युद्ध की खबर अखबारों में छपवावें तो मँझली बहू पर सन्देह न कर बैठना।'

धमकाते हुए मधुसूदन ने नवीन से फिर कहा—'चुप रह! यदि बड़ी बहू रजबपुर जाना चाहती है तो मैं उसे रोकूँगा नहीं।'

'हम लोग उन्हें कहाँ से खिलायेंगे ?'

'अपनी बहू के गहने बेचकर। जा-जा-जा, यहाँ से निकल जा।'

नवीन निकल गया। माथे में ओ-डि-क्लोन की पट्टी बाँधकर मधुसूदन ने एक बार फिर ऑफिस जाने का दृढ़ सङ्कल्प किया।

मोती की माँ नवीन के मुख द्वारा सब बातें सुनकर कुमुद के कमरे में पहुँची। उसने देखा, वह अभी तक कपड़े-लत्ते सँभाल रही है। उसने कहा—'बहू रानी, क्या कर रही हो ?'

'तुम्हीं लोगों के साथ मैं भी चलूँगी।'

'हम लोगों में यह सामर्थ्य कहाँ, जो हम लोग अपने साथ लिवा ले चलें।'

'क्यों ?'

'जेठ जी फिर हम लोगों का मुँह भी तो न देखेंगे।'

'तो फिर मेरा भी न देखेंगे।'

'खैर, मैं इसे मानता हूँ, किन्तु हम लोग बड़े गरीब हैं।'

'मैं भी कुछ कम गरीब नहीं, मेरी भी तुम्हारे साथ गुजर हो जायगी।'

'जेठ जी की बात में सभी लोग हँसी उड़ावेंगे।'

'इससे क्या, मैं तो इसे सहन नहीं कर सकती कि तुम लोग सजा पाओ और वह भी मेरे कारण।'

'किन्तु जीजी, तुम्हारे लिए क्यों ? यह तो हम लोगों के अपने पापों का ही फल है।'

'तुम लोगों ने कौन-सा पाप किया है ?'

'हम ही लोगों ने तुम्हें खबर दी है।'

'मैं यदि अपनी खबर जानना चाहूँ, और तुम उस खबर को मुझ तक पहुँचाओ, तो क्या यह भी अपराध है ?'

बिना मालिक से बताये खबर देना अपराध ही है।'

'अच्छा, यही सही। किन्तु अपराध तुम लोगों द्वारा भी हुआ है और मैंने भी किया है, अतएव हम लोग एक साथ ही फल भोगेंगे।'

'बहुत अच्छा, तो कहलवाये देती हूँ, तुम्हारे लिए पालकी आ जायगी और जेठ जी का भी तो हुक्म हो चुका है कि तुम्हें रोका नहीं जायगा। लाओ, मैं तुम्हारी सभी चीज-वस्तुओं को ठीक से लगा दूँ, तुम पसीने से भीगकर एकदम लथपथ हो गई हो।'

दोनों चीज-वस्तु सँभालने में लग गईं।

इतने ही में किसी के मच-मच करते हुए जूते की आवाज सुनाई पड़ी, मोती की माँ भागकर चली गई।

कमरे में घुसते ही मधुसूदन ने कहा—'बड़ी बहू, तुम वहाँ नहीं जा सकती हो।'

'क्यों नहीं जा सकती ?'

'इसलिए कि मेरी आज्ञा है।'

'अच्छा तो नहीं जाऊँगी, इसके पश्चात् कौन-सी आज्ञा है, बताओ ?'

'अपना सामान पैक करना बन्द करो।

'यह लो बन्द कर दिया।' कहते हुए कुमुद कमरे से बाहर चली गई। मधुसूदन ने कहा—'सुनो, सुनो!

कुमुद ने तत्क्षण ही लौटकर कहा—'कहो, क्या कह रहे हो ?'

कहने को कुछ अधिक तो था नहीं। किन्तु कुछ सोचकर बोला—'तुम्हारे लिए अँगूठी लाया हूँ।'

'मैं जिस अँगूठी को पहनने की जरूरत समझती थी, उसे तो तुमने पहनने से मना कर दिया है। अब मैं अँगूठी पहनने की जरूरत नहीं समझती।'

'एक बार आँखों से देख तो लो।'

मधुसूदन ने प्रत्येक डब्बे को बारी-बारी से खोलकर दिखलाया, मगर कुमुद ने अपने मुँह से कुछ न कहा।

मधुसूदन ने कहा—'इनमें जो-जो पसन्द हो पहन सकती हो।'

'जिन-जिन चीजों के पहनने की आज्ञा दोगे, पहन लूँगी।'

'मेरे खयाल में तीनों चीजें तीन अँगुलियों में बहुत अच्छी लगेंगी।'

'यदि आज्ञा होगी तो, तीनों पहन लूँगी।'

'मैं पहनाये देता हूँ।'

'लो, पहना दो।'

मधुसूदन ने अँगूठी पहना दी। इसके बाद कुमुद ने कहा—'और कुछ आज्ञा है?'

'बड़ी बहू, तुम इतना गुस्सा क्यों होती हो?'

'मुझे जरा भी गुस्सा नहीं आ रहा है।' इतना कहकर कुमुद बाहर चली गई।

मधुसूदन चञ्चल गति से कहने लगा—'अरे, तुम जाती कहाँ हो, जरा सुनो तो!'

कुमुद वापस आकर बोली—'कहो, क्या कह रहे हो?'

मधुसूदन की समझ में कुछ भी न आया कि वह क्या कहे। उसका मुँह लाल हो गया और अपने को धिक्कार कर कहने लगा—'अच्छा, जाओ।'

फिर क्रोध में भर कर बोला—'लाओ, अँगूठियाँ लौटा दो।'

तीनों अँगूठियाँ खोलकर कुमुद ने तिपाई पर रख दीं।

तड़पते हुए मधुसूदन ने कहा—'जाओ, चली जाओ।'

कुमुद उसी समय चली गई।

मधुसूदन इस बार यह दृढ़ निश्चय कर बैठा कि वह ऑफिस अवश्य ही जायगा। उस समय प्रायः कार्य का वक्त समाप्त हो चुका था। सभी अङ्गरेज कर्मचारी टेनिस खेलने चले गये थे। बड़े बाबुओं का दल उठने की तैयारी में था कि मधुसूदन वहाँ इसी वक्त पहुँचा और जाते ही डटकर काम में लग गया। छः बजे, सात बजे, जब आठ बजने को हुए तब उसने रजिस्टर बन्द कर दिया और उठ खड़ा हुआ।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

मधुसूदन के जीवन-काल में कभी किसी बात का सिलसिला अब तक टूट न सका था। प्रतिदिन का हर एक क्षण निश्चित नियम के साथ बँधा था, एकाएक आज किसी एक अनिश्चित वस्तु ने आकर उसके काम में बाधा उत्पन्न कर दी। ऑफिस से लौटकर घर जाने पर आज की रात को वह किस ढङ्ग से बितावेगा, यह नितान्त अनिश्चित था। डरते-डरते मधुसूदन घर पहुँचा धीरे-धीरे भोजन किया। भोजनोपरान्त उसमें इतना साहस न था कि वह सोने के कमरे में पहुँच जाता। पहले तो वह बाहर वाले दक्षिण के बरामदे में टहलता रहा, किन्तु जब नौ बज गये और सोने का वक्त हो गया तब वह भीतर पहुँचा। उसने आज दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी कि वक्त पर जाकर बिस्तर पर सोऊँगा, उसमें किसी भी प्रकार की उलट फेर न होगी।

सूने कमरे में पहुँचकर मसहरी उठाई और बिस्तर पर जाकर पड़ रहा, किन्तु आँखों में नींद नहीं। रात्रि ज्यों-ज्यों व्यतीत होने लगी, त्यों-त्यों अन्धकार में हृदय का उपवासी जीव बाहर निकलने लगा। उस समय सभी पहरेदार थके-माँदे पड़े थे, कोई भी उसका पीछा करने वाला नहीं था।

घड़ी ने टन से एक बजाया, किन्तु आँखों में नींद नहीं थी। उससे रहा न गया, कुमुद कहाँ है ? वह बिछौने पर उठ खड़ा हुआ। कड़ा हुक्म होने के कारण बक्कू फराश ने बत्तीघर में ताला लगा रखा था। वह घर की छत पर घूम आया, किन्तु वहाँ कोई भी न था। पैर के जूते निकालकर वह धीरे-धीरे नीचे के बरामदे में चलने लगा। मोती की माँ के घर के समीप पहुँचने पर उसने अपने कानों में कुछ भनक का-सा अनुभव किया। कल जानेवाले हैं, सम्भव है पति-पत्नी में सलाह हो रही हो। अतएव वह बाहर कान लगाये खड़ा रहा। दोनों गुन-गुनाकर बातचीत कर रहे हैं, कोई बात स्पष्ट सुनाई न देती थी किन्तु इतना अवश्य ही जान पड़ता था कि दोनों की आवाजें हैं। उसने मन में कहा, बेखिल-खिले पूर्वरात्रि में कुमुद तथा मोती की माँ के मन की बातें हो रही हैं। क्रोध तथा क्षोभ से उसकी प्रबल इच्छा हुई कि लात से ठोकर मारकर दरवाजे को खोल एक दुर्घटना उपस्थित कर दे किन्तु इस समय नवीन कहाँ। वह अवश्य ही कहीं बाहर होगा।'

दोनों ओर झिलमिल से घिरे हुए अन्तःपुर से बाहर जाने वाले रास्ते में एक बत्ती जल रही है। वहाँ पहुँचते ही मधुसूदन ने देखा कि श्यामा सुन्दरी लाल दुशाला ओढ़े खड़ी है। लज्जा के कारण क्रोध में भरकर मधुसूदन बोल उठा—'इतनी रात में तुम यहाँ खड़ी होकर क्या कर रही हो ?'

श्यामा ने कहा—'मैं तो सो रही थी। बाहर पैरों की आहट के कारण मेरे मन में शङ्का उत्पन्न हो गई—शायद कोई···?'

क्रोध के वेग से तड़पते हुए मधुसूदन बोल उठा—'देखता हूँ, तुम इधर बहुत सिर चढ़ गई हो। मैं तुम्हें सावधान करके कहता हूँ, मेरे साथ चालाकी की चाल न चलो। जाओ, जाकर सो जाओ।'

इधर कई दिनों से श्यामासुन्दरी का साहस कुछ बढ़ता जा रहा था। किन्तु आज उसकी समझ में आ गया कि असमय में बुरी जगह पैर पड़ा है। मधुसूदन की ओर सकरुण मुँह बनाकर उसने एक बार देखा। इसके

बाद मुँह फेरकर उसने आँचल से आँसू पोंछा। यद्यपि वह जाने को तैयार थी किन्तु पीछे मुड़कर खड़ी हो गई, और बोली—'देवर जी, चालाकी मैं न करूँगी किन्तु जो कुछ देख रही हूँ, उससे आँखों में नींद नहीं आ रही है। मैं आज की तो यहाँ आई नहीं हूँ, मेरा कितने दिनों का सम्बन्ध है अतएव हम लोगों से यह कैसे सहा जाय?' श्यामा यह कहकर तीव्रगति से वहाँ से चली गई।

मधुसूदन कुछ देर तो वहाँ खड़ा रहा किन्तु कुछ देर बाद बाहर की ओर चल पड़ा। आगे आने पर चौकीदार से उसकी भेंट हो गई। वह उस वक्त गश्त लगा रहा था। कानूनी जाल उसने फैला रक्खा है कि चुपचाप वह स्वयं भी अपने घर में घूम-फिर नहीं सकता। चारों ओर सतर्क दृष्टि का व्यूह है। यह नितान्त अभूतपूर्व बात थी जो कि अर्धरात्रि में महाराज बिछौने को छोड़ भूत की तरह नंगे पैर दालान में चले आये। दूर से पहचान न होने के कारण पहले तो वह बोल उठा—'कौन है?' किन्तु जब बाद में नजदीक पहुँचा तो राजा साहब को खड़े पाया। दाँतों तले जीभ दाबकर लम्बा सलाम करते हुए बोला—'क्या हुकम है हजूर!'

मधुसूदन ने कहा—'कुछ नहीं, यही देखने आया हूँ कि प्रबन्ध ठीक है न?' मधुसूदन के लिए यह बात किसी भी भाँति असङ्गत नहीं थी। घूमते हुए मधुसूदन बैठकखाने में पहुँचा। वहाँ उसने वही बात देखी जो सोची थी—नवीन गद्दी के ऊपर एक लम्बे तकिये से लिपटकर सो रहा है।

मधुसूदन ने कमरे की गैस बत्ती जला दी, किन्तु इससे उसकी नींद न खुली। बाद में हाथ से पकड़कर उसे हिलाया जिससे वह भड़भड़ाकर उठ बैठा। बिना किसी भाँति की बातचीत किये ही मधुसूदन ने उससे कहा—'जा, अभी बड़ी बहू से जाकर कह कि मैं उसे ऊपर बुला रहा हूँ।' यह कहकर वह उसी समय भीतर चला गया।

कुछ देर बाद कुमुदिनी सोने के कमरे में आई। मधुसूदन ने

उसके मुँह की ओर देखा। वह एक लाल किनारी की मामूली साड़ी पहने हुए थी। माथे पर जरा सा साड़ी का पल्ला खिंचा हुआ था। सूने तथा निर्जन घर के इस मन्द प्रकाश में सोफे के ऊपर कुमुद बैठ गई।

मधुसूदन तुरन्त ही उसके पैरों के पास आकर बैठ गया। कुमुदिनी सङ्कोच से वहाँ से उठने को जैसे ही तैयार हुई, मधुसूदन ने हाथ पकड़ कर उसे बिठा लिया और कहने लगा—'उठो नहीं, जरा मेरी बात तो सुनो। मैंने कसूर किया है। मुझे अब माफ करो।'

कुमुदिनी ने इसका कभी स्वप्न में भी विचार न किया था, मधुसूदन के ऐसे विनयपूर्ण भाव से वह दङ्ग हो गई। मधुसूदन फिर कहने लगा—'मझली बहू तथा नवीन को रजबपुर जाने की मनाही कर दूँगा, ये लोग यहीं तुम्हारी सेवा में रहेंगे।'

कुमुद कुछ भी सोच न सकी कि वह क्या कहे। मधुसूदन सोचने लगा—मैं अपने मान को खो बड़ी बहू का मान भङ्ग करूँगा! हाथ पकड़ विनम्र होकर बोला—'बताओ तुम चली तो न जाओगी, मैं अभी आता हूँ।'

कुमुद बोली—'नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।'

मधुसूदन नीचे चला गया। वह जब नीच के समान बन जाता है और कठोर हो जाता है, तब उस समय भी कुमुद अपने लिए कठिन अवस्था नहीं समझती। किन्तु आज उसकी यह नम्रता उसका इस भाँति अपने को छोटा बनाना—इन सब बातों में कुमुद को क्या करना चाहिए वह स्वयं ही इसे नहीं समझ पा रही है। हृदय के जिस दान को लेकर वह आई थी वह तो खाली होकर अब समाप्त हो गया, उसे धूल से उठा कर अब काम में तो लगाया नहीं जा सकता। इसके बाद वह अपने देवता को स्मरण करने लगी।

मधुसूदन कुछ देर के बाद ही मोती की माँ तथा नवीन को साथ में लिये आया और दोनों को उसने कुमुद के सामने पेश किया, उन

लोगों की ओर घूमकर कहने लगा—'मैंने तुम लोगों को कल रजबपुर जाने का हुक्म दिया था, अब वहाँ जाने की कोई भी जरूरत नहीं। कल से तुम लोग बड़ी बहू की सेवा में नियुक्त किये गये।'

पहले तो उन लोगों को ऐसे हुक्म की कोई उम्मीद न थी, इन बातों को सुन कर वह दोनों दङ्ग रह गये। साथ ही आश्चर्य की यह भी बात थी कि इस मामूली बात के लिए इतनी रात में उन लोगों को जाकर खुद लिवा लाया था।

अपने धैर्य को मधुसूदन स्वयं रोकने में असमर्थ था। वह आज ही रात्रि में कुमुद के मन को फेरने के लिए सङ्कोच तथा कृपणता को छोड़ अनेकों यत्न करने लगा। जीवन में इस भाँति की सम्मान हानि उसने और कभी भी न की थी। जिस चीज को वह पाना चाहता था, उसके प्राप्त करने में वह अपना सब से बड़ा दुःसाध्य मूल्य दे चुका था। कुमुद को उसने अपनी भाषा में समझा दिया कि मैं तुम्हारे सामने बिना किसी संकोच के हार मानता हूँ।

संकोच में आकर कुमुद बार-बार यही सोचने लगी कि इस चीज को वह किस भाँति अपनावे। बदले में वह उसे क्या दे सकती है! जीवन में जिस समय बाहरी बाधा उपस्थित होती है, उस समय लड़ने को बल प्राप्त होता है और देवता भी आकर स्वयं सहायक बनते हैं। सहसा उस बाहरी विरोध के रुक जाने पर लड़ाई खत्म हो जाती है किन्तु सन्धि नहीं होती और उसी वक्त हृदय के विरुद्ध बातें निकल पड़ती हैं। एकाएक कुमुद ऐसा अनुभव करने लगी कि जब मधुसूदन उद्धत था उस समय यद्यपि उसका व्यवहार अप्रिय था किन्तु उसके साथ सहज अवश्य ही था। परन्तु जब मधुसूदन विनम्र बनता है उस समय उसके साथ व्यवहार करना कुमुद के लिए बहुत ही कठिन हो जाता है, उस समय उसका क्षुब्ध अभिमान मिट जाता है। उसका वह फराशखाने का आश्चर्य समाप्त हो जाता है और फिर देवता के समक्ष हाथ जोड़ने से कुछ नहीं होता।

यदि किसी बहाने कुमुद मोती की माँ को रोक पाती तो वह बच जाती। किन्तु नवीन के उठकर चले जाने के बाद ही उसके पीछे-पीछे हतबुद्धि-सी चुपचाप मोती की माँ भी चल पड़ी। दरवाजे के पास पहुँच कर उद्विग्नता के साथ उसने मुँह फेर कर मधुसूदन की ओर देखा और फिर चली गई। स्वामी की खुशी के चंगुल से अब इस युवती को कौन बचावे!'

मधुसूदन ने कहा—'बड़ी बहू, अब तो कपड़े बदल कर सोओगी न!' कुमुद धीरे से उठी, पास ही के एक नहाने के कमरे में घुसकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। जितनी हो सके मुक्ति की मियाद को आज बढ़ा लेना चाहिए। स्नान-गृह में दीवार के निकट ही एक चौकी पड़ी हुई थी, वह उसी पर बैठी रही। मानो उसका व्याकुल शरीर अपने ही भीतर अपने लिए ओट ढूँढ़ने लगा। बीच बीच में दीवाल घड़ी की ओर नजर घुमाकर मधुसूदन हिसाब लगाता कि कपड़ों के बदलने में कितने वक्त की जरूरत है। इस बीच में आईना उठाकर अपना मुँह देखा और सिर के बीचोबीच एक जगह जहाँ बाल बुरी तरह खड़े रहते हैं, बेमतलब ही उसने उस पर कई बार ब्रश घुमाया और कपड़ों के ऊपर उसने लवेंडर की शीशी ही उँड़ेल दी।

पन्द्रह मिनट बीत गये। इतना वक्त कपड़े बदलने को काफी है। दरवाजे के पास जाकर मधुसूदन कान लगा कर खड़ा हो गया, किन्तु भीतर से किसी के हिलने डुलने तक की आवाज न आई। मन में सोचने लगा—'सम्भव है बालों को सँवारने में लगी हो क्योंकि औरतों को शृङ्गार बड़ा ही प्रिय होता है। इस बात को मधुसूदन भली भाँति समझता था। इसी से सब्र करना पड़ा। आधा घण्टा व्यतीत हो जाने पर मधुसूदन ने फिर दरवाजे से जाकर कान सटाया किन्तु फिर भी कोई शब्द नहीं। लौटकर बेंत की कुर्सी पर बैठ गया, पलङ्ग के सामने ही विलायती चित्र लटक रहा था; बैठे हुए वह उसी ओर ताकता रहा। कुछ देर बाद एकाएक भ[illegible]ड़ा कर खड़ा हो गया और

उस बन्द कोठरी के पास जाकर बोला—'बड़ी बहू, अभी निबट नहीं सकीं।'

कुछ देर बाद धीरे से दरवाजा खुल गया। कुमुदिनी बाहर निकली जैसे उस पर स्वप्न सवार हो। जिन कपड़ों को पहने थी वे सभी बदले नहीं गये हैं और वे रात को सोने की पोशाक में शामिल भी नहीं किये जा सकते। उसके शरीर पर सर्जे की खाकी पूरी बाँह की फतूही है, उसके ऊपर से लाल रङ्ग की किनारी का दुशाला है जिसका पल्ला माथे पर खिंचा हुआ है। बायें हाथ को दरवाजे के एक पल्ले पर टेक कर न जाने किस दुविधा में वह इस भाँति खड़ी रह गई, मानो कोई विचित्र तसवीर हो। गोल हाथों में पुराने ढङ्ग के घुण्डीदार चिकने कड़े हैं। शायद वह किसी समय माँ के थे। उसके सुकुमार हाथों को इन मोटे-भारी कड़ों द्वारा जो सम्मान प्राप्त है, उसके लिए वह अलङ्कार उसके शरीर में तनिक भी आडम्बर प्रतीत नहीं होता। मधुसूदन ने मानो उसे फिर से नये रूप में देखा। उसकी महिमा से वह फिर विस्मित हो गया। मधुसूदन इस बात पर बिना घमण्ड किये न रह सका कि उस पुराने युग की बिखरी हुई सम्पत्ति ने इतने दिनों बाद फिर शोभा प्राप्त कर ली है। मधुसूदन का विचित्र स्वभाव यह है जिन लोगों से उसका हमेशा का मेल जोल है प्रायः उन लोगों में भी वह सबसे बढ़कर अपने धन तथा गौरव को समझता है। दरवाजे के पास गैस की रोशनी में चुपचाप खड़ी युवती को देखकर मधुसूदन को ऐसा जान पड़ने लगा मानो मेरे पास धन काफी नहीं है। उसे विदित होने लगा, यदि मैं चक्रवर्ती सम्राट होता, तभी कुमुद इस घर में शोभा प्राप्त करती। उसे मानो यह साफ-साफ जान पड़ने लगा कि जन्म से ही इसका स्वभाव किसी विशुद्ध वंश मर्यादा के भीतर पला-पनपा है। या तो मानो यह अपने जन्म के प्रथम अति दीर्घकाल पर अधिकार पाकर खड़ी है। वहाँ बाहर से कोई ऐरा-गैरा मनुष्य प्रवेश कर ही नहीं सकता। वहीं अपने स्वाभाविक सत्य को लिये विप्रदास विराजेंगे।

उनको भी कुमुद ही की तरह एक आत्मविस्मित सहज गौरव सदैव घेरे हुए है।

यह बात मधुसूदन से कभी भी सही न जा सकती। विप्रदास में दूरत्व का विशेष अंश पाया जाता है, औद्धत्य उनमें छू भी नहीं गया है! घनिष्ठ से घनिष्ठ आत्मीय या निकट सम्बन्धी की भी ऐसी हिम्मत नहीं, कि वह आकर कहे, कहो जी, क्या कर रहे हो?—कहता हुआ उसकी पीठ ठोंक सके। उसे मन ही मन इसी बात के ऊपर चिढ़ है कि विप्रदास के सामने उसे दिल में छोटा बनना पड़ता है केवल उसी एक सूक्ष्म कारण से कुमुद के ऊपर उसका ज़ोर पूर्णरूप से चल नहीं पाता। जहाँ उसे अपनी गृहस्थी में सबसे ज्यादा कार्य करने का अधिकार है वहीं उसे मानो सबसे ज्यादा हट-सा जान पड़ा है किन्तु उसे यहाँ क्रोध नहीं आता, उसका आकर्षण कुमुद के प्रति तीव्र वेग से प्रबल हो उठता है। कुमुद को देखते ही आज मधुसूदन ने साफ साफ समझ लिया कि वह तैयार नहीं होकर आई है। किसी अदृश्य आड़ के परे खड़ी है। मगर वह कितनी सुन्दर है! उसमें कितनी दीप्तिमान सफाई और शुभ्रता है! मानो निर्जन बर्फ की चोटी के ऊपर निर्मल उषा दिखाई दे रही हो!

और भी निकट आकर मधुसूदन ने मन्द स्वर में कहा—'बड़ी बहू, सोओगी नहीं?'

कुमुद आश्चर्य में पड़ गई। उसने पूर्णरूप से समझ रखा था कि मधुसूदन गुस्सा होगा और इसको अपमान की बात समझेगा। एकाएक उसे एक चिरपरिचित कण्ठस्वर की याद आ गई। उसके पिता की माँ को कितने स्निग्ध भाव से 'बड़ी बहू' पुकारते थे, इसके साथ ही साथ माँ की याद आ गई। माँ उसके पिता को निकट आने में बाधा डाल किस भाँति चली गई थीं। उसकी आँखें क्षण मात्र में डबडबा आईं। ज़मीन पर मधुसूदन के पैरों के समीप बैठकर बोली—'मुझे क्षमा करो।'

तीव्रता से मधुसूदन ने हाथ बढ़ाकर कुमुद को उठा चौकी पर बिठाते

हुए कहा—'तुमने कौन-सा क़सूर किया है जो क्षमा करूँ!'

कुमुद ने कहा—'अभी मेरा मन तैयार नहीं, मुझे ज़रा समय देने की कृपा कीजिए।'

मधुसूदन का दिल कठोर हो उठा, वह बोला—'समय किस लिए देना होगा, मुझे तनिक समझा तो दो!'

'अच्छी तरह कहते नहीं बनता। किसी को कैसे समझाऊँ!'

रस-विहीन कण्ठ-स्वर से मधुसूदन ने कहा—'कठिन कुछ भी नहीं है। तुम कहना चाहती हो कि मैं तुम्हें अच्छा नहीं लगता।'

अब कुमुद के लिए कठिनाई हुई। बात सत्य असत्य दोनों है। दिल में नैवेद्य चढ़ाने भर को यह प्रण कर चुकी है किन्तु अभी तक नैवेद्य आ नहीं सका है। मन कहता है—'देर हो, सो भी नहीं। धैर्य धरने ही से, मार्ग में बाधा न देने ही से आ जायगा। किन्तु यह बात माननी ही होगी कि थाल अभी खाली है।'

कुमुद ने कहा—'मैं तुम्हें धोखे में नहीं डालना चाहती, उसी कारण कहती हूँ कि मुझे थोड़ा वक्त दो।'

धीरे-धीरे मधुसूदन असहिष्णु बनने लगा, वह कड़ाई के साथ बोला—'वक्त देने से लाभ! अपने भाई से सलाह करके फिर पति के साथ रहने की ख्वाहिश है!'

मधुसूदन का यही विचार है, उसने सोच लिया है कि विप्रदास की याद में ही कुमुदिनी का सब कुछ रुका है। जिस भाँति भैया चलावेंगे, उसी प्रकार बहन चलेगी। व्यंग्य में वह बोल उठा—'तुम्हारे भैया तुम्हारे गुरु हैं।'

तपाक से उठकर कुमुद खड़ी हो गई, बोली—हाँ, भैया मेरे गुरु हैं।'

'आज उनकी आज्ञा बिना कपड़े न बदलोगी, बिस्तर पर न सोओगी क्यों? मुझे क्या मालूम था! ऐसी बात!'

हाथ की मुट्ठी को दृढ़ करते हुए कुमुद वहाँ पत्थर की भाँति खड़ी रही।

'तो तार द्वारा आज्ञा मँगाऊँ क्या? रात अधिक बीत चुकी है।' कुछ जवाब न देकर कुमुद छत पर जाने के लिए दरवाजे की ओर बढ़ी।

मधुसूदन ने कड़क कर धमकी के साथ कहा—'यह कह दे रहा हूँ; जाना मत!'

कुमुद उसी वक्त घूम कर खड़ी हो गई और बोली—'कहो क्या कहते हो?'

'अभी बहुत ही जल्द कपड़े बदल कर आओ।' घड़ी निकाल कर कहने लगा—'केवल पाँच मिनट समय दिया जाता है।'

कुमुद तत्क्षण ही समीप के स्नान-गृह में चली गई। कपड़ों को उतार साड़ी के ऊपर एक मोटी-सी चादर ओढ़ आई। अब वह दूसरे ऑर्डर के इन्तजार में खड़ी हुई। उसे इस भाँति खड़े देख मधुसूदन को यह समझने में देर न लगी कि यह भी युद्धावेश है। क्रोध भड़क उठा, किन्तु क्या करे, कोई बात दिमाग में नहीं आती, क्रोध के तेज होने पर भी मधुसूदन की व्यवस्था कार्य करती रहती है। इसी से वह बढ़ते-बढ़ते झट रुक गया और बोला—'अब तुम क्या करना चाहती हो, मुझे बताओ तो सही।'

'तुम्हारे हुक्म को मैं अवश्य मानूँगी।'

मधुसूदन हताश होकर चौकी पर चुपचाप बैठ गया। चादर से लिपटी हुई यह स्त्री विधवा-सी दीख पड़ने लगी। उसके और उसके स्वामी के बीच मानो मृत्यु का एक निस्तब्ध समुद्र आ पड़ा है।

इस समुद्र को डाँट-फटकार द्वारा पार करना नितान्त असम्भव है। पाल में किस हवा के चलने से नाव चल सकती है?—क्या वह किसी दिन चलेगी?

घड़ी के टिक-टिक के अतिरिक्त घर में और कोई दूसरा शब्द सुनने में नहीं आया था। वह भी शान्त बैठा रहा। कुमुद घर से बाहर नहीं

निकली। वह फिर लौट आई और चित्र की तरह खड़ी छत के अन्धकार की ओर टकटकी लगाये देखती रही। बाहर चौराहे पर किसी शराबी के गद्‌गद कंठ की गाने की आवाज सुनाई पड़ रही है और समीप के पड़ोसी के अस्तबल में एक कुत्ते का पिल्ला बँधा रात की शान्ति में अपनी कर्कश आवाज द्वारा खलल डाल रहा है।

समय मानो एक अथाह गड्ढे की भाँति शून्य होकर मुँह बाये खड़ा है। मधुसूदन की घर-गृहस्थी वाली मशीन के सभी पहिए मानो बन्द हैं। उसे ऑफिस में कल बहुत काम है। डायरेक्टरों की मीटिंग है। बहुत से कठिन प्रस्ताव, बहुतों का विरोध होते हुए भी अपनी होशियारी से पास करा लेने हैं। वे समस्त आवश्यक कार्य उसकी दृष्टि में नितान्त छाया से प्रतीत हो रहे हैं। पहले तो एक दिन पूर्व ही रात को कल की कार्य प्रणाली को अपनी नोट बुक में अङ्कित कर लिया करता था। आज उसकी समस्त चिन्ताएँ निर्जीव हो गई। संसार में उसके लिए जो कठिन सत्य दीखता है वह वही स्त्री है, जो कि चादर से ढकी हुई कमरे के रास्ते में शान्त भाव से खड़ी है। थोड़ी देर के बाद मधुसूदन ने एक गहरी साँस ली। कमरा मानो अपनी ध्यानभङ्गिमा को त्याग रहा हो। तेजी से चौकी पर से उठा और कुमुद के पास पहुँच कर बोला—'बड़ी बहू, क्या तुम्हारा दिल पत्थर का बना हुआ है?'

कुमुद के दिल में यह 'बड़ी बहू' शब्द मन्त्र की भाँति काम कर जाता है। अपने में अपनी माँ की जीवन अनुभूति एकाएक उज्ज्वल हो उठती है। इस सम्बोधन के ऊपर उनकी माँ ने कितनी ही बार अनेकों दिन उसे उत्तर दिया था। उसी का अभ्यास मानो कुमुद के खून में उपस्थित है। इसी कारण वह तराक से मुँह फेर कर खड़ी हो गई। बड़े कष्ट के साथ मधुसूदन ने कहा—'मैं तुम्हारे अयोग्य हूँ, किन्तु क्या मुझ पर दया न करोगी?'

कुमुद सिटपिटा-सी गई, बोली—'छिः! छिः! ऐसा न कहो।' जमीन पर पड़कर मधुसूदन के पैरों की मिट्टी सिर से लगा कर वह बोली—

'मुझे तुम हुक्म दो, मैं तुम्हारी दासी हूँ !'

मधुसूदन ने उसका हाथ पकड़ कर उठा लिया और उसे छाती से लगाते हुए बोला—'नहीं, तुम्हें कैसे हुक्म दूँ, तुम स्वेच्छा द्वारा मेरे पास आओ।'

मधुसूदन के बाहु-बन्धन में कुमुद हाँफने लगी, किन्तु वह स्वयं अपने को छुड़ाने की चेष्टा न कर सकी। रुँधे हुए कण्ठ से मधुसूदन बोला—'नहीं, तुम्हें हुक्म न दूँगा, किन्तु फिर भी तुम मेरे पास आओ।' इतना कहते हुए उसने कुमुद को छोड़ दिया।

कुमुदिनी का गौरवपूर्ण मुँह सुर्ख हो गया। उसने नीची निगाह किये हुए कहा—'तुम हुक्म दो तो मेरा कार्य सिद्ध हो जाय। मुझसे स्वयं कुछ करते नहीं बनता।'

'अच्छा, तुम यह अपनी चादर उतार दो, यह हमें अच्छी नहीं लग रही है।'

कुमुदिनी ने बड़े सङ्कोच से चादर उतार डाली। बदन पर डोरिया की एक साड़ी रह गई जिसका किनारा पतला था, उसी पतली धारियों से कुमुद का शरीर ढका हुआ है। मानो रेखाओं के अनिश्चल झरने लगातार झर रहे हों। मानो कोई एक काली दृष्टि अपनी अश्रान्त गति को छोड़-छोड़ कर उसके प्रत्येक अङ्ग को घेर-घेर कर उसकी प्रदक्षिणा कर रही हो और किसी भी प्रकार पूरी नहीं कर पाती हो। मधुसूदन मुग्ध हो गया और उसका ध्यान क्षणमात्र उसी साड़ी पर चला गया। वह यहाँ की दी हुई नहीं थी। कुमुद के बदन पर वह चाहे जितनी भी खिल रही हो किन्तु उसका मूल्य कुछ भी न था। वह थी भी तो उसके मायके की ही। नहाने के कपड़े बदलने के कमरे में दराजों वाली महोगिनी की बड़ी आलमारी जिसके पल्ले आइनेदार हैं, वह ब्याह के पहले ही अनेकों प्रकार के बहुमूल्य कपड़ों से भरी पड़ी है। इस स्त्री का इतना घमण्ड ! उन पर इतना भी लोभ नहीं। उसे उन तीन अँगूठियों की बात याद आई। उसका एक तुच्छ नीलम की

अँगूठी के लिए कितना घोर आग्रह था। उन सब अँगूठियों को कुमुद ने असह्य उपेक्षा से नहीं लिया था।

मधुसूदन तथा विप्रदास के बीच कुमुद के प्रेम का कितना मूल्य भेद है। इन सब बातों ने कुमुद के चादर उतारते ही आँधी की झपेट की भाँति गहरा धक्का दिया। किन्तु हाय! कितनी सुन्दर है! और उसकी यह दर्प भरी अवज्ञा, वह भी मानो उसका अलङ्कार है। यही युवती ऐश्वर्य की भी अवज्ञा कर सकती है। स्वाभाविक धन से महीप सी होकर इसने जन्म लिया है। उसे रुपये पैसों के जोड़ने से कोई मतलब नहीं, हिसाब नहीं रखना पड़ता, फिर मधुसूदन उसे किस वस्तु का लालच दिखा सकता है।

मधुसूदन ने कहा—'चलो, तुम सोने चलो।'

कुमुदिनी स्वामी के मुखड़े की ओर निहारती रही। वहाँ पर नीरव प्रश्न था कि 'तुम पहले पलङ्ग पर न जाओगे?'

दृढ़-स्वर में मधुसूदन बोल उठा—'चलो, अब देर न करो।'

कुमुद के पलङ्ग पर पहुँच जाने के बाद मधुसूदन सोफे पर बैठकर बोला—'मैं यहीं बैठा हूँ, तुम मुझे बुलाओगी तभी आऊँगा। मैं वर्षों इस प्रकार इन्तजारी में व्यतीत कर सकता हूँ।'

कुमुद का समस्त शरीर काँप उठा—आज उसकी यह कैसी परीक्षा है! वह आज किस के दरवाजे पर जाकर सिर धुने? आज तो देवता ने उसे उत्तर नहीं दिया। वह जिस मार्ग से यहाँ पहुँची है, वह तो नितान्त गलत है। वह बिछौने पर लेटी हुई मन ही मन कहने लगी—'भगवान् तुम मुझे कभी भी भूल नहीं सकते, मैं अब भी तुम पर विश्वास करूँगी। ध्रुव को तुम्हीं ने बन में अपने दर्शन देने के हेतु उसे बुलाया था।'

कमरे के अन्दर अब निःस्तब्धता छाई है। चौराहे पर उस शराबी की आवाज अब सुनाई नहीं दे रही है। केवल यही कैदी पिल्ला, यद्यपि अब वह थक गया है किन्तु फिर भी बीच-बीच में आर्तनाद कर

उठता है।

थोड़ा सा भी समय बहुत बड़े समय के सदृश्य प्रतीत हुआ। सन्नाटे के भारग्रस्त प्रहर से मानो हिलना-डुलना तक असम्भव है। क्या यही उसके दाम्पत्य से अनन्तकाल का चित्र है! दो किनारों पर दोनों शान्त भाव से बैठे हैं—रात्रि का अन्त नहीं, बीच-बीच एक अलङ्घनीय सन्नाटा है। आखिर न जाने कब कुमुद ने पलङ्ग से उतर अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ कहा—'मुझे अपराधी न बनाओ।'

गम्भीर मुद्रा में मधुसूदन ने कहा—'बताओ क्या चाहती हो, क्या करना होगा!' वह बिलकुल आखिरी शब्द तक उसके मुख द्वारा निचोड़ कर कहलवा देना चाहता है।

कुमुद ने कहा—'चलो, सोओ।'

किन्तु क्या इसी को विजय कहते हैं!

अड़तीसवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सवेरे जब मोती की माँ कुमुद के लिए दूध लाई तो उसने देखा कि कुमुद की आँखें लाल हैं। चेहरे का रङ्ग उड़ा है। उसने सोचा था कि प्रातःकाल छत के जिस कोने में आसन बिछा कर कुमुद पश्चिम की ओर मुँह करके तपस्या करने बैठती है, वहीं मिलेगी। किन्तु आज कुमुद वहाँ नहीं थी। जीने के बगल से ही जो मिली हुई छत है वह वहीं पर दीवार के सहारे कुछ थकी हुई सी बैठी है। शायद आज देवता से रुष्ट हो गई है। जब निर्दयी पिता निर्दोष लड़के को बिना किसी कारण के मारता है तब जैसे उसकी समझ में कुछ नहीं आता, रूठकर मार खाता रहता है और अपनी सफाई देते भी हिचकिचाता है। देवता के प्रति कुमुद के आज ऐसे ही विचार हैं। जिस आह्वान को उसने देवता माना था वह इस अशुचिता में है। इस आन्तरिक

अस्तीत्व में ? भगवान क्या नारी की बलि चाहते हैं ? क्या इसीलिए उसे बहका लाये हैं ? जिस शरीर में हृदय नहीं उसके मांस-पिण्ड को अपना नैवेद्य बनायेंगे ? आज किसी प्रकार भी भक्ति नहीं जागी। इतने दिनों से कुमुद बार-बार कहती है कि मैं तुम्हें कैसे सहन कर सकती हूँ, किस मुँह से तुम्हारी पूजा करूँ ? अपने भक्त को स्वयं स्वीकार न करके उसे किस दास की दुकान पर बेच दिया। जिस दुकान पर मांस और मछली के भाव लड़कियाँ बिकती हैं, वहाँ हार्दिक भावों की पूजा नहीं होती—फूलों का उपवन काट कर बकरे को खिला दिया जाता है।

मोती की माँ ने जब दूध पीने के लिए आग्रह किया, तब कुमुद ने कहा—'रहने दो।'

मोती की माँ ने कहा—'क्यों, रहने क्यों दूँ ? मेरे हाथ के कटोरे ने क्या बिगाड़ा है ?'

कुमुद ने कहा—'अभी मैं नहाई नहीं, न पूजा की।'

'जाओ तुम नहाने जाओ, मैं बैठी प्रतीक्षा करूँगी अच्छा।'

कुमुद नहा आई। मोती की माँ ने सोचा, अब खुली छत पर कोने में जाकर बैठेगी। कुमुद ने छत पर जाने की आदत के कारण उस ओर कदम बढ़ाये, किन्तु गई नहीं। लौट कर फिर वहीं जमीन पर बैठ गई। उसका मन तैयार न था।

मोती की माँ ने कुमुद से पूछा—'भैया की चिट्ठी आई ?'

चिट्ठी अवश्य आई होगी, यह समझ कर ही मोती की माँ आज सुबह स्वयं दफ्तर के कमरे में गई थी किन्तु चिट्ठियों का दराज खींचने पर पता चला कि ताला लगा हुआ है। इसलिए अब 'चोर के घर छिछोर' वाला मामला भी खत्म हो गया।

मोती की माँ ने कहा—'ठीक कह नहीं सकती, तलाश करूँगी।'

इतने में अचानक श्यामा आ पहुँची। बोली—'बहू, आज तुम उदास क्यों हो ? जी तो ठीक है ?'

कुमुद ने कहा—'हाँ !'

'मायके के लिए जी चाहता होगा । आह ! वह तो चाहेगा ही। हाँ, भैया तुम्हारे आ रहे हैं, मिल लेना।'

कुमुदिनी चौंक उठी। उसने श्यामा की ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखा, मोती की माँ ने पूछा—'तुम्हें इसकी खबर कहाँ से लग गई है ?'

'यह तो सभी को मालूम है। अपने रसोईघर की पार्वती ने ही तो कहा था। राजाबहादुर के पास बहूरानी के मायके से गुमाश्ता आया है, बहूरानी की खबर लेने। उसी से उसने सुना है कि इलाज के लिए भैया आज ही कल में कलकत्ते आने वाले हैं।'

कुमुदिनी ने उद्विग्न होकर पूछा—'उनकी बीमारी क्या बढ़ गई ?'

'यह तो नहीं कह सकती, पर हाँ, चिन्ता की कोई बात नहीं। अगर चिन्ता की बात होती तो जरूर सुनती।'

श्यामा ने समझा था कि उसके भैया का समाचार उसे मधुसूदन ने दिया न होगा। क्योंकि जिस बहू का अभी तक मिजाज नहीं बदला, कहीं ऐसा न हो कि इस बात को सुनकर वह मायके की धुन में और भी अनमनी न हो जाय। कुमुदिनी को उसकाकर बोली—'तुम्हारे भैया जैसा आदमी मिलना मुश्किल है, सभी कहते हैं। अच्छा चलो देर हो रही है। कोठार से सामान निकालना होगा। दफ्तर के लिए रसोई बनानी है। देर हो गई तो आफत आ जायगी !'

मोती की माँ ने दूध का कटोरा फिर एक बार कुमुदिनी के आगे बढ़ाकर कहा—'जीजी, दूध ठण्डा हो रहा है, पी डालो मेरी रानी !'

इस बार कुमुद ने दूध पीने में आपत्ति न की।

मोती की माँ ने कान में पूछा—'आज कोठार चलोगी ?'

कुमुद ने कहा—'आज रहने दो, गोपाल को एक बार मेरे पास भेज दो।'

राहु की भाँति एक काला कठोर भूखा बुढ़ापा बाहर से कुमुद को निगल रहा है। प्रौढ़ावस्था जो शान्त, स्निग्ध, शुभ्र, सुगम्भीर होता है

यह वह तो है नहीं। जो लालायित है, जिसके संयत की शक्ति शिथिल है, जिसका प्रेम ही विषयाशक्ति की जाति का है उसी के स्वादाक्त स्पर्श से कुमुद को इतनी अरुचि है। पति की आयु अधिक है इसका कुमुदिनी को कोई दुःख नहीं किन्तु उसे इस बात का अवश्य दुःख है कि उस आयु ने अपनी मर्यादा क्यों भुला दी। उसका व्यवहार क्यों बदल गया। सम्पूर्ण आत्म-निवेदन एक फल के समान है जो प्रकाश और वायु में—स्वतन्त्र वातावरण में पकता है, कच्चे फल को चक्की में पीसने से ही तो वह पकता नहीं। समय न मिलने के कारण ही आज उनका सम्बन्ध कुमुद को सता रहा है, इतना अपमान कर रहा है। वह कहाँ जाय? मोती की माँ से अभी कहा कि गोपाल को बुला दो। क्या भागने के लिए—नये वातावरण में जाने के लिए—गन्दी निःश्वास की भाप से निकल कर कुमुद कानन की स्वच्छ पवन में जाने के लिए। पतली छींट का एक रुईदार कोट पहिने मोती जीने के दरवाजे के पास आकर डरता डरता खड़ा हो गया। चमकती हुई काली-काली आँखें हैं, जल से भरे बादल का सा साँवला रङ्ग है, गाल उभरे हुए और सिर के बाल बारीक कटे हुए।

कुमुद जाकर मोती को पकड़ लाई और उसे छाती से लगाकर बोली—'शरीफ लड़के, दो दिन से तुम आये क्यों नहीं?'

मोती ने कुमुद के गले में दोनों हाथ डालकर कानों में कहा—'ताईजी! तुम्हारे लिए मैं क्या लाया हूँ, बताओ तो?'

कुमुद ने उसके गाल का चुम्बन लेकर कहा—'माणिक लाये हो गोपाल?'

'मेरी जेब में है।'

'अच्छा, निकालो तो!'

'तुम बता नहीं सकतीं।'

'मेरी बुद्धि नहीं है। जो आँखों से देखती हूँ उसे भी नहीं समझ

सकती। जो दिखाई नहीं देता उसे तो और उल्टा समझती हूँ।'

मोती ने बड़ी सावधानी से धीरे धीरे जेब से एक खाकी कागज निकाला और उसे कुमुद की गोद में रखकर भाग जाने की चेष्टा करने लगा।

'नहीं, तुम भाग नहीं सकते।'

कागज को दोनों हाथों से दबाकर मोती ने जल्दी से कहा—'अभी मत देखो।'

'नहीं, तुम डरो मत, तुम जब चले जाओगे तभी खोलूँगी।'

'अच्छा ताईजी, तुमने चटाई बूढ़ी को देखा है?'

'क्या पता, देखा होगा, खबर नहीं। पर पहिचानने में देर लगेगी।'

'नीचे आँगन के पास जो कोयले की कोठरी है उसी में वह आती है, शाम को चमगादड़ पर बैठ कर न।'

'अपने मन की इच्छा से वह खूब छोटी हो सकती है जिसमें कि किसी को मालूम ही न हो।'

'तब तो उससे वह मन्त्र सीख लेना होगा।'

'क्यों ताईजी?'

'मैं यदि भाग जाने के लिए कोयले की कोठरी में जाऊँ तो फिर भी मैं दिखाई दूँगी।'

मोती इस बात का मतलब समझ न सका। बोला—'कोयलों के भीतर उसी ने अँगूर की डिबिया दबा रखी है। वह अँगूर कहाँ से लाई है, जानती हो?'

'शायद।'

'अच्छा, बताओ।'

'सवेरे के बादलों में से।'

मोती ठिठक गया। इस बात ने उसे चिन्ता में डाल दिया। विशेष सम्वाददाता ने उसे समुद्र पार की दैत्यपुरी की बात कही थी किन्तु ताई

की बातों में उसे विश्वास का अनुभव हुआ। इस कारण विरोध में कोई तर्क न बन पड़ने पर बोला—'जो लड़की उस डिबिया को ढूँढ़ कर अँगूर माथे से लगायेगी वह राजरानी हो जायगी।'

'प्रलय हो गया, किसी अभागिनी को खबर तो नहीं लग गई।'

छोटी बुआ की लली जानती है। टोकरी लेकर जब सबेरे कोयला लेने के लिए कमला जाती है तो वह नित्य उसके साथ जाती है। उसे तनिक भी डर नहीं लगता।'

'अभी छोटी है न, इसलिए वह राजरानी बनने से नहीं डरती।'

बाहर ठण्डी ठण्डी उत्तरी हवा बह रही थी। कुमुदिनी तुरन्त मोती को लेकर कमरे में चली गई। वहाँ सोफे पर बैठकर उसे गोद में ले लिया। साथ की छोटी तिपाई पर चाँदी की थाली में शरद्‌ऋतु के फूल, गेंदा, गुलाब, कुन्द, जावा आदि रक्खे थे। और दिनों की भाँति ये फूल माली के चुने हुए हैं। थाली में पड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब कुमुद उन्हें छत के कोने में बैठकर देवता के सिर पर चढ़ाये। आज उसने उन फूलों को थाली सहित मोती के सामने रख दिया। बोली—'फूल लोगे?'

'हाँ, लूँगा।'

'क्या करोगे, बताओ तो?'

'पूजा पूजा खेलेंगे।'

कुमुद की कमर में एक रेशमी रुमाल लटक रहा था। उसमें फूल बाँध कर बालक का चुम्बन लेकर कुमुद ने कहा—'यह लो।' और मन में कहने लगी—चलो मेरा भी पूजा-खेल हो गया।' बालक से बोली—'गोपाल, इनमें से कौन-सा फूल सबसे अधिक पसन्द है, बताओ तो?'

मोती ने कहा— गुलाब का फूल।'

'क्यों अच्छा लगता है, बताऊँ?'

'अच्छा बताओ।'

'वह सवेरे ही बटाई बूढ़ी की डिबिया से सुन्दरता उड़ा लाता है।'

मोती कुछ देर गम्भीर बना बैठा रहा। एकाएक बोला—'ताईजी,

गुलाब के फूल का रङ्ग ठीक तुम्हारी साड़ी के लाल फॉंट की तरह है।' बस इतने में ही वह अपने मन की सारी बात कह गया।

सहसा पीछे घूम कर देखा तो मधुसूदन। पाँव की आहट तक न सुनाई दी थी। उसका घर में आने का समय भी नहीं। इस समय दफ्तर में दुनिया भर के कारोबारी लोग इकट्ठे होते हैं, दलाल आते हैं, विभिन्न समाचार और कागज लेकर सेक्रेटरी आता है। असली काम की अपेक्षा इन सब ऊपरी कामों की भीड़ कम नहीं होती।

जिस भिखारी की झोली में केवल भूसी ही भूसी जम गई है, अन्न नाम को भी नहीं जुटा, उसका-सा मन लिये आज मधुसूदन काफी सवेरे अत्यन्त रूखे भाव से बाहर चला गया है। किन्तु अतृप्ति का आकर्षण बड़ा होता है। बाधा पर बाधा चली ही आती है।

मधुसूदन को देखते ही मोती के चेहरे का रङ्ग उड़ गया। हृदय काँपने लगा, भागने को तैयार हो गया। कुमुद ने जोर से उसे दबा लिया। उठने न दिया।

मधुसूदन ताड़ गया। मोती को जोर से धमका कर बोला—'यहाँ क्या कर रहे हो? पढ़ने नहीं जाओगे?'

पण्डितजी के आने का समय नहीं हुआ, यह बात कहने का मोती में साहस न था। धमकी उसने चुपचाप सह ली और धीरे से उठकर चल दिया।

कुमुद उसे रोकने के लिए तैयार हुई; पर तुरन्त ही रुक गई। बोली—'अपने फूल तो तुम छोड़ ही चले। लोगे नहीं?' यह कहकर रुमाल में बाँधी हुई पोटली उसके सामने कर दी। मोती ने लिया नहीं। डरता हुआ अपने ताऊजी के मुँह की ओर देखता रहा। मधुसूदन ने तुरन्त कुमुद के हाथ से पोटली छीन ली। बोला—'यह रुमाल किसका है?'

क्षण भर में कुमुद का चेहरा लाल हो उठा, बोली—'मेरा।'

इसमें सन्देह नहीं कि रुमाल उसी का है अर्थात् उसके विवाह

के पहले की चीज है। उस पर रेशम की जो कामदार बेल है वह भी कुमुद ने स्वयं बनाई है।

मधुसूदन ने फूल निकालकर जमीन पर डाल दिये और रुमाल अपनी जेब में रख लिया, बोला—'इसे मैं ही लिये लेता हूँ, यह बच्चा है, इसे लेकर क्या करेगा!' और मोती से बोला—'तू जा।'

मधुसूदन की कठोरता से कुमुद ने कुछ भी न कहा।

मधुसूदन ने कहा—'दूसरों के लिए तो तुम दान करने बैठी हो और मेरे लिए ठेंगा? यह रुमाल अब मेरा ही हो गया। याद रहेगा कि कुछ मिला है तुमसे।'

मधुसूदन जो कुछ चाहता था उसे प्राप्त करने की उसमें क्षमता नहीं थी।

कुमुदिनी आँखें बन्द किये सोफे पर एक ओर चुपचाप बैठी रही। साड़ी की लाल किनारी उसके माथे को घेरकर मुँह पर सरकती हुई उतर गई और उसके गीले बाल लटक आये हैं। गले की गोलाई को एक सोने का हार घेरे हुए है। यह हार उसकी माँ का है इसीलिए सदैव पहने रहती है। अभी तक उसने वास्केट नहीं पहनी। अन्दर एक बनियाइन है। दोनों बाँह खुली, हाथ पर हाथ धरे बैठी है। अत्यन्त शुभ्र हाथ हैं। सारे शरीर की वाणी मानो वहीं आकर उद्वेलित हो रही है। मधुसूदन आँखें नीची करके अभिमानिनी की ओर दृष्टि गड़ा-गड़ाकर देखने लगा। सोने के मोटे कड़े पहिने हुए उन हाथों से उसकी निगाह हटना नहीं चाहती। सोफे पर चढ़कर उसने कुमुदिनी का हाथ पकड़कर खींचना चाहा। उसने ज्यों ही हाथ हटाया तो मधुसूदन ने देखा कि कुमुद के हाथ के नीचे एक कागज का हिस्सा है जिसे वह छिपाने का असफल प्रयास कर रही है।

'इस कागज में क्या है?' मधुसूदन ने पूछा।

'पता नहीं।'

'पता नहीं, इसका मतलब ?'

'इसका मतलब मुझे पता नहीं ।'

'मधुसूदन को इस बात पर विश्वास न हुआ । बोला—'मुझे बता, मैं देखूँगा ।'

कुमुद ने कहा—'यह मेरी गुप्त चीज है, दिखा नहीं सकती ।'

मधुसूदन के शरीर में बिजली के समान एक गुस्से की लहर दौड़ गई; वह बोला— क्या कहा ? इतनी गुस्ताखी ?' यह कहते हुए जबरदस्ती कुमुद से कागज की पुड़िया छीनकर उसे खोल डाला । देखा तो उसमें कुछ नहीं, थोड़े इलायचीदाने पड़े हैं । मोती के सस्ते प्रबन्ध में मोती के लिए जो कलेवर बँधा हुआ है उसमें शायद यही चीज मोती के लिए अधिक लोभ की है । इसी कारण वह उसे बड़ी सावधानी के साथ पुड़िया में बन्द करके लाया था ।

मधुसूदन दङ्ग रह गया । माजरा क्या है । सोचने लगा—मायके में इसके जलपान की आदत होगी इसीलिए छिपाकर मँगाये हैं । शर्म के मारे बताना नहीं चाहती । मन ही मन मुस्कराने लगा । सोचने लगा—लक्ष्मी का दान ग्रहण करना आसान नहीं । इसके लिए समय लगता है । तुरन्त एक तरकीब समझ में आ गई । जल्दी से उठकर बाहर चला गया ।

कुमुदिनी ने दराज खोलकर एक छोटा-सा नया सन्दल का बक्स निकाला और उसमें इलायचीदाने रख दिये और भैया को चिट्ठी लिखने चली गई । ज्यों ही चार पंक्तियाँ लिख पाई थी कि मधुसूदन आ पहुँचा । चिट्ठी नीचे दबाकर कुमुदिनी जरा जम कर बैठ गई । मधुसूदन के हाथ में एक कीमती फलदानी थी । उस पर मीनाकारी का काम हो रहा था । एक फूलदार रेशमी रुमाल से ढकी हुई । हँसते हुए उसने वह कुमुद के सामने रख दी । बोला—'खोलकर देखो तो सही ।'

कुमुदिनी ने रुमाल उठाकर देखा । फलदानी इलायचीदानों से अब तक भरी थी । यदि अकेली होती तो मुस्कराती । चुप रही, गम्भीरता से

चुपचाप बैठी रही। यद्यपि उसके लिए मुस्करा लेना उचित था।

मधुसूदन ने कहा—'इलायचीदाने छिपकर खाने की क्या जरूरत थी। इसमें शर्माना काहे का, मैं रोज मँगा दिया करूँगा, कितने चाहिए? मुझसे पहले कहा क्यों नहीं था?'

कुमुद ने कहा—'तुम नहीं मँगवा सकते।'

'क्या इसका बहुत अधिक मूल्य है?'

'हाँ, ये रुपये से नहीं मिलते।'

यह सुन मधुसूदन के मन में तुरन्त एक सन्देह उत्पन्न हो गया। बोला—'तुम्हारे भैया ने पार्सल भेजे होंगे। क्यों?'

इसका उत्तर देने की इच्छा न हुई। फलदानी को सामने से हटाकर चले जाने के लिए उठ खड़ी हुई। मधुसूदन ने हाथ पकड़कर फिर उसे जबरदस्ती बिठा लिया।

मधुसूदन के कुछ कहने के पूर्व ही कुमुदिनी पूछ बैठी—'भैया के यहाँ से तुम्हारे पास कोई आदमी आया था?—उनकी खबर लेकर?' यह बात कुमुद को पहले से ही मालूम हुई जानकर उसका जी झुँझलाया। बोला—'यही खबर सुनाने के लिए तो आज सवेरे तुम्हारे पास आया हूँ। यह कहना व्यर्थ है कि यह बिलकुल झूठ थी।'

'भैया कब आयेंगे?'

'एक हफ्ते के अन्दर।'

मधुसूदन निश्चित रूप से जानता था कि कल ही विपदास आ जायँगे।' एक हफ्ते के अन्दर कहकर उसने खबर को आई-गई करके छोड़ दिया।

'भैया की तबीअत क्या और भी खराब हो गई?'

'नहीं तो, ऐसी तो कोई खबर नहीं सुनी!'

इसमें जरा पीछा छुड़ाने का भाव था। विपदास इलाज के लिए ही कलकत्ते आ रहे हैं। इसके यही अर्थ होते हैं कि उनकी तबीअत ठीक नहीं है।'

'क्या भैया की चिठ्ठी आई है ?'

'चिट्ठियों का बक्स अभी खोला नहीं। अगर होगी तो तुम्हारे पास भेज दूँगा।'

कुमुदिनी ने अभी तक मधुसूदन की बातों पर विश्वास करना शुरू नहीं किया। उसने कहा—'भैया कि चिठ्ठी आई है या नहीं, एक बार देख लेना।'

'यदि आई होगी तो भोजन करने के बाद दोपहर को मैं स्वयं लेकर आऊँगा।'

कुमुदिनी इस बात पर राजी हो गई। एक बार मधुसूदन ने कुमुद का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचना चाहा। इतने में अचानक श्यामा कमरे में चली आई और आते ही बोली—'अरे यहाँ तो ला । जी हैं!' और यह कहकर तुरन्त उलटे पाँव बाहर चली गई।

मधुसूदन ने कहा—'क्यों ? क्या कुछ काम है ?'

'बहू को कोठार के लिए बुलाने आई हूँ। राजरानी होने पर भी घर की तो यही लक्ष्मी है—अच्छा आज रहने दो।'

मधुसूदन सोफे से उठकर और बिना कुछ कहे-सुने बाहर चला गया। खाने-पीने के बाद नियमानुसार ऊपर के कमरे में जाकर पलङ्ग पर तकिये के सहारे लेटकर पान चबाते हुए मधुसूदन ने कुमुदिनी को बुला भेजा। कुमुदिनी शीघ्र ही चली आई। आज भैया की चिठ्ठी मिलेगी। भीतर जाकर पलङ्ग के पास खड़ी हो गई।

मधुसूदन ने हुक्के की नटक रखकर पास ही बैठने का इशारा करके कहा—'बैठ जाओ।'

कुमुद बैठ गई। मधुसूदन ने उसे जो चिठ्ठी दी उसमें केवल इतना ही लिखा था—

प्राण प्रतिमासु,

शुभाशीर्वाद।

चिकित्सा के लिए मैं जल्द ही कलकत्ते आ रहा हूँ। तबीअत ठीक होने पर तुमसे मिलने आऊँगा। घर के काम-काज से छुट्टी पाने पर कभी-कभी अपनी खैर-खबर का खत लिखती रहना जिससे कि मैं निश्चिन्त रह सकूँ!

इस छोटे से पत्र को पाते ही कुमुद को पहले धक्का-सा लगा। मन में सोचा अब मैं गैर हो गई हूँ। अभिमान का भाव प्रबल होते न होते मन में आया भैया की शायद तबीअत ठीक नहीं। मेरा मन भी कैसा ओछा है, अपनी ही बात सबसे पहले सोचने लगता है।

मधुसूदन समझ गया कि कुमुदिनी उठना ही चाहती है। बोला—'कहाँ जा रही हो, जरा बैठो तो।'

कुमुद को बैठने के लिए कह तो दिया किन्तु फिर सोचने लगा कि बात क्या करे। दिमाग में कुछ आता ही नहीं। यह भी चाहता था कि शीघ्र ही कोई बात कहे, अतएव सवेरे से जो बात उसके मन में खटक रही थी वही मुँह से निकल गई। बोला—'अच्छा, इस इलायचीदाने वाली बात पर तुमने इतना तर्क क्यों किया था? शर्माने का कौन कारण था?'

'वह मेरी गुप्त बात है।'

'गुप्त बात मुझसे भी नहीं कही जा सकती?'

'नहीं।'

मधुसूदन का स्वर कड़ा हो गया—'यह तुम्हारी नूरनगर की चाल है, अपने भैया के स्कूल से सीखी है?'

कुमुद ने कोई उत्तर न दिया है। मधुसूदन तकिया पटक उठ खड़ा हो गया—'तुम्हारी यह चाल अगर छुड़ा न दूँ तो मेरा नाम मधुसूदन नहीं।'

'तुम्हारी क्या आज्ञा है, बताओ?'

'वह ठोंगा किसने दिया?'

'मोती ने।'

'मोती ने! उसके लिए इतना छिपाने की क्या जरूरत थी?'

'ठीक नहीं कह सकती।'

'किसी और ने उसके हाथ भेजवाया था ?'

'नहीं।'

'तो फिर ?'

'बस यही बात थी और कुछ नहीं।'

'तब इतना छिपाया क्यों ?'

कुमुद का हाथ झटक कर मधुसूदन ने कहा—'अब तो नहीं सही जाती तुम्हारी ज्यादतियाँ।'

कुमुद के चेहरे पर सुर्खी आ गई। शान्त स्वर में बोली—'क्या चाहते हो तुम समझा कर कहो तो सही। तुम लोगों की चालों से मैं परिचित नहीं हूँ, यह मैं स्वीकार करती हूँ।'

मधुसूदन के माथे की नसें फूल उठीं। कुछ जवाब न बन पड़ा तो इच्छा हुई कि कुमुदिनी को पीट डाले। इतने ही में बाहर से खाँसने की आवाज सुनाई दी, साथ ही सुना गया—ऑफिस का साहब आकर बैठा है। उसे याद आया कि आज डायरेक्टरों की मीटिंग है। बहुत लज्जित हुआ कि वह इसके लिए अभी तक बिलकुल तैयार नहीं। सुबह का समय तो बिलकुल ही व्यर्थ चला गया। इतनी बड़ी सुस्ती तो उसके स्वभाव के बिलकुल खिलाफ है। इस बात पर उसे बहुत आश्चर्य हुआ कि यह असम्भव बात हुई कैसे !

उनतालीसवाँ परिच्छेद

मधुसूदन के जाने के बाद कुमुदिनी पलङ्ग से उतर कर फर्श पर बैठ गई। क्या जीवन भर उसे ऐसे ही समुद में हाथ-पाँव मारने पड़ेंगे जिसका कहीं पारावार नहीं, [illegible]सूदन ने ठीक ही कहा है। उन लोगों के साथ उसके चलने का मेल न[illegible] है और सब भेदों की अपेक्षा यही सबसे अधिक असह्य है क्या [illegible]य है इसका ?

अचानक न जाने [illegible] मन में आई। कुमुद उठकर नीचे को चल

दी। मोती की माँ के कमरे की ओर जीने से उतरते समय देखा कि श्यामासुन्दरी आ रही है।

'क्यों बहू, कहाँ चली? मैं तो तुम्हारे ही पास जा रही थी।'

'कोई काम है क्या?'

'नहीं, कोई ऐसा खास काम नहीं। देखा कि देवर जी का मिजाज कुछ गर्म है, सोचा कि पूछती आऊँ क्या मामला है। याद रखना बहू उनके साथ किस तरह निबाह करना चाहिए इस बात की सलाह मैं ही दे सकती हूँ। किसी के पास जा रही हो क्या? अच्छा, जाकर मन की अभिलाषा निकाल आओ।'

आज पहली बार उसे पता चला कि श्यामासुन्दरी और मधुसूदन एक ही मिट्टी के बने हैं। यह बात क्यों उसके मन में आई, यह बतलाना कठिन है। शक्ल-सूरत, चाल-चलन, आकार प्रकार में कोई समानता न होते हुए भी कुमुद को अनुभव हुआ कि श्यामासुन्दरी तथा मधुसूदन में कोई अन्तर नहीं। दोनों की दुनिया में एक हवा चलती है। श्यामासुन्दरी जब मित्रता करने आती है तब उसका यह व्यवहार कुमुद को उलटी दिशा में ढकेल देता है। जी न जाने कैसा होने लगता है।

मोती की माँ के सोने के कमरे में प्रवेश करते ही कुमुदिनी ने देखा कि वह और नवीन दोनों मिलकर किसी चीज के लिए छीना-झपटी कर रहे हैं। वह लौटना ही चाहती थी कि नवीन ने कहा—'भाभी जाना नहीं, जाना नहीं। मैं तुम्हारे पास ही जा रहा था, एक फरियाद है।'

'कैसी फरियाद?'

'जरा बैठो, अपने दुःख की चर्चा छेड़ूँ।'

कुमुद तख्त पर बैठ गई।

नवीन ने कहा—'बड़ा अत्याचार है, इस भद्र महिला ने मेरी किताब छिपा रक्खी है।'

'ऐसी कठोरता क्यों?' कुमुद ने कहा।

'ईर्ष्या है। आप तो अङ्गरेजी जानती नहीं। मैं स्त्री-शिक्षा का समर्थक

हूँ, आप उसका विरोध करती हैं। मेरी बुद्धि तेज हो रही है और इनकी डाह बढ़ती जा रही है। बहुत समझाया कि इतनी बुद्धिमती सीता थीं, वे भी राम के पीछे चला करती थीं। विद्या-बुद्धि में मैं तुमसे आगे बढ़ गया हूँ, इसमें तुम अड़चन न डालो।'

'तुम्हारी शिक्षा को तो माता सरस्वती ही जानती होंगी। बुद्धि के लिए मेरे सामने बड़ाई न हाँकना कहे देती हूँ।'

नवीन ने मुँह बना लिया। मानो उस पर कोई महान विपत्ति आ पड़ी है। कुमुद यह देखकर ठहाका मारकर हँस पड़ी। इस घर में आने के बाद आज पहली बार ही वह इस प्रकार खिलखिला कर हँसी है। यह हँसी नवीन को बड़ी मधुर प्रतीत हुई। उसने मन में कहा—'यही मेरा काम है, मैं बहूरानी को हँसाया करूँगा।'

कुमुदिनी ने हँसते हुए पूछा—'क्यों बहन, तुमने लाला जी की किताब छिपा रक्खी है?'

'अच्छा देखो जीजी शयन-गृह में क्या इनके गुरु बैठे! दिन भर काम-धन्धा करते रहते हैं। रात को घर में आकर देखो तो एक दिया जलता ही है, उस पर आपने एक शमादान और जला रक्खा है। बड़े पण्डितजी बने बैठे पढ़ते हैं। भोजन ठण्डा हुआ जा रहा है, ताकीद पर ताकीद की जा रही है, किन्तु वहाँ कुछ सुध ही नहीं।'

'सच्ची बात है लाला जी?' कुमुद ने कहा।

'बहूरानी, खाने से प्रेम न हो, मैं ऐसा तपस्वी तो नहीं, किन्तु इसके मुँह की ताकीद मुझे इतनी मधुर और प्यारी लगती है कि उसे सुनने के लिए मैं जानबूझ कर भोजन करने में देर लगा देता हूँ। किताब पढ़ने का तो यह बहाना ही है।'

'इनकी बातों से मैं कभी पार नहीं पा सकती।'

'और मैं उस समय हार जाता हूँ जब ये बोलना बन्द करती हैं।'

'क्या कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है?'

'तो फिर दो एक उदाहरण दूँ क्या, मेरे हृदय पर आँसुओं की स्याही

से स्पष्ट अक्षरों में लिखे हैं।'

'अच्छा-अच्छा, केवल दृष्टान्त देने की आवश्यकता नहीं, मेरा चाबियों का गुच्छा कहाँ है बताओ? देखो जीजी, मेरी चाबियाँ छिपा रक्खी हैं।'

'घर के आदमियों पर तो पुलिस दबाव नहीं डाल सकती। चोर की चोरी के कारण ही दण्ड देना पड़ता है। पहले मेरी पुस्तक दो।'

'तुम्हें नहीं दूँगी।'

कोने में एक टोकरी पड़ी थी, जिसमें रेशमी और ऊनी कपड़ों की कतरन, फटे मोजे इत्यादि पड़े थे। उसके नीचे से अङ्गरेजी की संक्षिप्त 'इन्साइक्लोपीडिया' का दूसरा भाग निकाल कर मोती की माँ ने कुमुदिनी की गोद में रख दिया और बोली—'इसे तुम ले जाओ जीजी, इन्हें मत देना। देखूँ तुम्हारे साथ ये कैसे झगड़ा करते हैं?'

नवीन ने मशहरी से चाबियों का गुच्छा उठाकर कुमुद के हाथ में दे दिया और कहा—'और किसी को न देना भाभी, देखूँ तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करती हैं?'

'लालाजी, आपको इस किताब का शौक है क्या?' कुमुद ने पुस्तक के पन्ने उलटते हुए पूछा।

'ऐसी कोई पुस्तक ही नहीं, जिसका इन्हें शौक न हो। उस दिन कहीं से गोपाल उठा लाये हैं, उसे ही पढ़ने लग गये हैं।'

'मैं अपने शरीर की रक्षा के लिए पढ़ नहीं रहा था, फिर इसमें लज्जा काहे की?'

'जीजी, तुम मुझसे कुछ कहना चाहती थी न, कहो तो इस बातूनी आदमी को यहाँ से बिदा कर दिया जाय?'

'नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। मैंने सुना है कि भैया दो एक दिन में आने वाले हैं?' कुमुद ने कहा।

नवीन ने कहा—'हाँ, हाँ, कल ही आयेंगे।'

'कल ही?' हैरान होकर कुमुद देर तक चुपचाप बैठी रही, लम्बी

साँस लेकर बोली—'कैसे मिलूँगी उनसे!'

मोती की माँ ने पूछा—'तुमने जेठजी से कुछ कहा नहीं!'

नवीन ने कहा—एक बार कहोगी तो सही।'

कुमुद चुप रही। मधुसूदन के आगे भैया की बात करना टेढ़ी खीर है। इस घर में तो भैया के लिए अपमान ही रखा है। उसे तनिक भी उठाने में कुमुद को असह्य सङ्कोच होता है।

कुमुद के चेहरे का भाव देख नवीन का हृदय पसीज उठा। बोला—'चिन्ता न करो भाभी। हम सब ठीक कर देंगे, तुम्हें कुछ भी न कहना पड़ेगा।'

अपने भैया के सामने नवीन लड़कपन से ही डरता आया है। मालूम होता है, भाभी ने आकर आज उसके हृदय से वह भय निकाल दिया।

कुमुदिनी के चले जाने पर मोती की माँ ने अपने पति से पूछा—'तुम्हारे भाई ने हम दोनों को बुलाकर बहू के सामने अपने आप को छोटा बनाया था। यह अच्छा नहीं हुआ। उसके बाद से वे तुमको देखकर मुँह फेरकर चले जाते हैं।'

'भाई साहब ने समझा कि धोखा हुआ है। उस समय जोश में आकर सब कुछ कर दिया, पर बाद को अपनी भूल समझ गये होंगे। हम लोगों ने उनकी इस मूर्खता को प्रत्यक्ष देखा है इस कारण अब हमारा रहना उनसे न सहा जायगा।'

मोती की माँ ने कहा—'न सही, पर उन पर तो विप्रदास बाबू के विरुद्ध एक पागलपन सवार है जो प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है, यह कौन-सी भलमनसाहत है, भला पूछो तो!'

नवीन ने कहा—'ऐसे लोगों की भक्ति का प्रकाश ऐसा ही होता है। इस वर्ग के लोग भीतर से जिसे श्रेष्ठ समझते हैं बाहर से उसी को मारते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि रावण भगवान रामचन्द्र का असाधारण भक्त था, इसी कारण वह बीस हाथों से नैवेद्य चढ़ाता था। मैं तुम

से आज बताये देता हूँ कि बहूरानी से भैया की भेंट सहज में नहीं होगी।'

'ऐसा कहने से तो काम नहीं चलेगा। कोई न कोई तो उपाय करना ही होगा।'

'तेरे दिमाग में उपाय आ गया?'

'क्या, बताओ?'

'कह नहीं सकता।'

'क्यों?'

'शरम आती है।'

'हाँ, मुझसे भी शरम आती है।'

'क्यों?'

'भाई साहब को धोखा देना होगा। तुम क्या करोगी सुनकर?'

'जिससे प्रेम है, उसके लिए धोखा देने में मुझे तनिक भी सङ्कोच नहीं होगा।'

'हाँ, ठग-विद्या तो तुमने मुझ पर ही प्रयोग करके सीखी है न, इसके लिए तुमसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति और मिलता भी कहाँ।'

'देखो जी, राजीनामा लिखे देता हूँ, जब चाहो मुझे धोखा दे सकती हो।'

'इतनी खुशी किस बात की है, जरा सुनूँ तो सही।'

'बताऊँ? भगवान् ने तुमको धोखा देने की तो तरकीबें बताई हैं किन्तु उसमें जरा-सी मिश्री मिला दी है, उस मधुर ठगई का नाम है माया।'

'माया का तो छूट जाना अच्छा है।'

'अच्छा, माया के छूट जाने पर संसार में और बच ही क्या जायगा। मूर्ति का रङ्ग छूट जाने पर वह केवल मिट्टी ही रह जाती है। चाहे इस अबोध को भूलभुलैया में फँसा दो, चाहे धोखा दो, चाहे आँखों में मस्ती भर दो और चाहे हृदय में नशा ला दो—जो तुम्हारे मन में आये

सो करो।'

इसके बाद जो बातचीत होती रही वह पाठकों के लिए बेकार है। कहानी से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

चालीसवाँ परिच्छेद

बोर्ड की बैठक में मधुसूदन की यह पहली हार है। आज तक उसे किसी मामले में कोई धोखा न दे सका। उसको अपने पर पूर्ण विश्वास है। उसके साथी भी उस पर ऐसा ही विश्वास करते हैं। कोई आवश्यक प्रश्न मीटिङ्ग में पास करा लेने से पहले आगे के लिए काफी हद तक काम तैयार कर लेता था। इस बार पुरानी नील कोठी वाले नील के कारबार के लिए कुछ इलाका खरीद लेने के प्रबन्ध में थे। इस मामले में बहुत कुछ खर्च भी हो चुका था और सब ठीक हो गया था, केवल कागजी कार्यवाही पूर्ण करके दाम चुकता करने की देर थी। जिन आदमियों को नियुक्त करना था, उनको इसी आशा पर लगा रक्खा गया है। इतने में यह नई बाधा उठ खड़ी हुई। हाल ही में वहाँ कोई खजाञ्ची की जगह खाली हुई है। इसमें एक दूर के नाते के एक दामाद का सम्बन्ध था। अयोग्य की उन्नति करने के लिए उत्साह न होने पर मधुसूदन ने उसका कोई खयाल न किया। इसी बात ने मिट्टी में दबे बीज की भाँति विरोध का रूप धारण कर लिया। मधुसूदन भीतर ही भीतर डरने लगा। इस अपमान से उन विरोधियों को बड़ी प्रसन्नता हुई, जिनका हृदय मधुसूदन की शान शौकत से कुढ़ता था।

आज मधुसूदन देर से घर आया। भाग्य पर मधुसूदन को अन्धविश्वास था किन्तु आज वह भयभीत है। कोई अज्ञातशक्ति उसकी जीवन-यात्रा को समाप्त कर रही है। पहली ही चोट से उसकी छाती धड़की। मीटिंग से लौटकर दफ्तर में आराम-कुर्सी पर लेट गया और हुक्के के दम लगाकर

धुएँ में दुख और निराशा के बादल उड़ाने लगा।

नवीन ने आकर सूचना दी—'विप्रदास का आदमी मुलाकात के लिए आया है।'

मधुसूदन खीझकर बोला—'कह दो चला जाय, मुझे अभी फुरसत नहीं है।'

नवीन ने मधुसूदन का रुख देखकर समझ लिया, भाई साहब का दिल कमजोर है। मार्केट में कोई मामला गड़बड़ हो गया है। भाई साहब का चोट खाया हुआ हृदय बहूरानी को पीड़ित कर देगा। अब जैसे भी हो सके इस चोट से उनकी रक्षा करनी होगी। नवीन ने सोचा। इसके पहले उसके मन में जो दुविधा थी वह बिलकुल दूर हो गई। नवीन ने कुछ देर इधर-उधर फिरने के बाद कमरे में आकर देखा कि उसके भाई नोटबुक से कुछ पते नोट कर रहे हैं। नवीन को देखते ही मधुसूदन मुँह उठाकर बोला—'फिर क्या आवश्यकता पड़ी। शायद विप्रदास बाबू की ओर से तुम कुछ वकालत करने आये हो?'

नवीन ने कहा—'नहीं भाई साहब, इसकी चिन्ता न कीजिए।'

उनका आदमी यहाँ से ऐसी फटकार खाकर गया है कि आप अगर स्वयं बुलायें तो भी वह इस ओर मुँह न करेगा।'

यह बात मधुसूदन के लिए असह्य न हुई। बोला—'इशारा करते ही आकर पाँव पड़ेगा। वह किस लिए आया था?'

'खबर देने, कि कलकत्ता आने में विप्रदास बाबू को दो दिन देर होगी, जरा तबीअत सुधर जाने पर आयेंगे।'

'अच्छा, अच्छा, इसके लिए मुझे इतनी जल्दी नहीं।'

नवीन ने कहा—'भाई साहब, कल सवेरे घण्टे दो घण्टे की छुट्टी चाहिए।'

'क्यों?'

'आप सुनकर बिगड़ेंगे।'

'न सुनकर और भी बिगड़ूँगा।'

'कुम्भ कोनम से एक ज्योतिषी आये हैं, उनसे भाग्य की परीक्षा कराना चाहता हूँ।'

मधुसूदन की छाती धड़क उठी। सोचा, वह भी उसके पास जायगा। किन्तु डपटकर कहा—'तुम विश्वास करते हो ज्योतिषियों पर?'

'अच्छी अवस्था में तो नहीं, किन्तु डर मालूम होने पर तो विश्वास आता ही है।'

'किस बात का डर, आखिर सुनूँ तो सही।'

नवीन चुपचाप सिर झुकाये खड़ा रहा।

'किस बात का डर आखिर बताओगे भी?'

'आपके सिवा मैं संसार में किसी से नहीं डरता। कुछ दिन से आप का व्यवहार देखकर मन विचलित हो गया है।'

मधुसूदन को इस बात से अत्यधिक सन्तोष हुआ कि उससे लोग इतना डरते हैं जितना शेर से भी नहीं डरते। नवीन की ओर देखकर गम्भीर मौन के साथ हुक्के की नली गुड़गुड़ाता हुआ अपनी महानता का अनुभव करने लगा।

नवीन ने कहा—'इसलिए एक बार खुल्लमखुल्ला जानना चाहता हूँ कि कौन-सा उपाय करना चाहिए और कब तक यही दशा रहेगी?'

'तुम नास्तिक हो, तुम कुछ मानते ही नहीं, फिर यह कैसे···।'

देवताओं पर विश्वास न होता तो ग्रहों पर विश्वास न करता भाई साहब। जो डॉक्टर को नहीं मानता उसे कभी नीमहकीम को मानना पड़ता है।'

मधुसूदन को भाग्य का हाल मालूम करने की इच्छा काफी प्रबल हो गई। खीजकर बोला—'पढ़ लिखकर तुम गधे के गधे ही रहे। जो जैसा कह दे, क्या उसी पर तुम विश्वास कर लोगे?'

'उसके पास जो भृगुसंहिता है, उसमें जहाँ भी कोई, जिस ग्रह में पैदा हुआ है या होगा, सबके हाल हैं, संस्कृत में वह पुस्तक है, इससे अधिक और क्या कहूँ?' हाथों-हाथ परीक्षा करके देख लो।'

'जो लोग मूर्खों को फुसलाकर पेट भरते हैं, उनके लिए भगवान तुम जैसे बेवकूफ भी काफी संख्या में उत्पन्न कर देता है!'

'और उन मूर्खों की रक्षा के लिए तुम सरीखे बुद्धिमानों की सृष्टि करता है। मारनेवाले पर जितनी दया करता है, उतना ही मार खाने वाले से भी प्रेम रखता है। तुम भृगुसंहिता के ऊपर अपनी प्रखर बुद्धि का परीक्षण क्यों नहीं कर लेते?'

'बहुत अच्छा, कल प्रातःकाल मुझे कुम्भ कोनम के पास ले चलना, मैं उनकी चालाकी देखूँगा।'

'भाई साहब, तुम इतने बड़े अविश्वासी हो कि उसके कारण गणना में गड़बड़ी भी हो सकती है। दुनिया में यही देखा जाता है कि मनुष्य पर विश्वास रखने से मनुष्य विश्वस्त बन जाता है। यही बात ग्रहों में भी पाई जाती है। ग्रहों को न माननेवाले साहब ग्रहों के फल से मुक्त रहते हैं। महेश्वर्श के दिन घुड़दौड़ में तुम्हारे छोटे साहब ने जाकर कैसी बाजी जीती! यदि मैं होता तो जीतने की कौन कहे कदाचित् उसमें का कोई घोड़ा आकर मेरे ऊपर दुलत्ती भले ही झाड़ जाता। भाई साहब, जरा विश्वास रखते हुए इसका ध्यान अवश्य रखना कि ग्रह-नक्षत्रों के फेर में पड़ अपनी बुद्धि न चलाना।'

खुशी में फूलकर मधुसूदन मुसकराने तथा हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

दूसरे दिन सात बजे सवेरे के प्रथम ही मधुसूदन नवीन के साथ कूड़े-कचड़े में से होता हुआ एक सकरी गली द्वारा वेंकट शास्त्री के घर पहुँचा। नीचे के तल्ले में एक अँधेरी कोठरी है जिसकी नोन लगी टूटी फूटी दीवार घातक चर्मरोग का पूर्ण रूप से स्मरण दिला रही है। तख्त के ऊपर एक मैली-कुचैली दरी बिछी है। वहीं पास में कुछ कागज-पत्र बिखरे पड़े हैं। और दीवार के ऊपर शङ्कर पार्वती का एक चित्र टँगा हुआ है। नवीन ने पुकारा 'शास्त्रीजी!' एक काला नाटा आदमी जो दुबला-सा था छींट की मैली फर्द ओढ़े कोठरी में घुसा। घुटे हुए सर के बीच में पण्डिताऊ ढङ्ग की मोटी चोटी लटक रही थी। बड़ी विनम्रता के

साथ नवीन ने उसे प्रणाम दिया। यद्यपि शास्त्री जी शक्ल-सूरत से मधुसूदन-भक्ति से परे रहा, किन्तु दैव के साथ दैवज्ञ की कुछ न कुछ घनिष्ठता अवश्य ही होगी। इसी विचार से डरते-डरते ज़रा-सा मत्था झुकाकर जल्दी से अर्द्ध नमस्कार करके वह उठ बैठा। ज्योतिषीजी के हाथ में नवीन ने मधुसूदन की जन्मपत्री दे दी किन्तु उसकी कुछ कद्र न करके उन्होंने मधुसूदन का हाथ देखना चाहा। काठ की सन्दूक से कलम निकालकर स्वयं उन्होंने एक चक्र बनाया और मधुसूदन के मुँह की ओर देखकर बोले—'पञ्चमवर्ग।' जिसे मधुसूदन कुछ भी नहीं समझ सका। पैरों के ऊपर अँगुली रखते हुए ज्योतिषी बोले—'कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग किन्तु इतने पर भी मधुसूदन की बुद्धि में कुछ न आया। ज्योतिषी जी ने कहा—'पञ्चमवर्ग।' मधुसूदन उस समय शान्त रहा। ज्योतिषी जी फिर कहने लगे—'प, फ, ब, भ, म' इससे मधुसूदन के ध्यान में केवल इतना ही आ सका कि भृगुपति ने व्याकरण के पहले ही अध्याय से उसकी संहिता शुरू कर दी है। इतने में वेंकट शास्त्री बोल उठे—'पञ्चारकं।'

मधुसूदन के कान के पास मुँह ले जाकर नवीन ने आश्चर्य-चकित शब्दों में चुपके से कहा—'भाई साहब, मेरी समझ में आ गया।'

'क्या समझ में आ गया?'

'पञ्चमवर्ग का पञ्चमवर्णम्, इसके उपरान्त पञ्च अक्षर मधुसूदन!'

'यह जन्म-ग्रह का अनोखा रूप है जो कि तीनों 'पाँच' एक ही जगह आकर पड़े हैं।'

मधुसूदन दङ्ग रह गया। माता-पिता का नाम रखने के सहस्रों वर्ष प्रथम ही भृगुपति के रजिस्टर में जो यह नाम दर्ज है तथा नक्षत्र भी क्या ही गजब ढा देते हैं उसके आश्चर्य की सीमा न रही। हतबुद्धि-सा संस्कृत भाषा रहित वह अपने इतिहास को बैठा सुनता रहा। उसकी समझ में भाषा जितनी कम आती थी उतनी ही उसकी उसमें भक्ति बढ़ने लगी। आदि से अन्त तक सम्पूर्ण जीवन मानो मूर्तिवत् ऋषि वाक्य-सा प्रतीत हुआ। छाती पर हाथ फेरकर देखने से अपनी देह उसे अनुस्वार, विसर्ग,

तद्धति और प्रत्यय के मसाले से बनी हुई किसी तपोवन में लिखी पुस्तक के समान ज्ञात हुई। तत्पश्चात् ज्योतिषी के अन्तिम शब्द उसके कानों में इस भाँति पहुँचे—'उसके घर किसी दिन लक्ष्मी का आविर्भाव होगा जिसकी चिन्ताहीन सौभाग्य-सूचना उसके पास पहले ही पहुँच चुकी है। अधिकांश दिन नहीं हुए अभी ही लक्ष्मी ने एक नववधू का रूप ग्रहण करके घर में प्रस्थान किया है। अभी ही से सजग हो जाना चाहिए। कारण यह है कि यदि उनको किसी भी प्रकार का मानसिक कष्ट हुआ तो भाग्य कुपित हो जायगा।

वेंकट शास्त्री ने कहा—'कोप के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यदि जातक अब भी सावधान नहीं होता तो सङ्कट अवश्य ही बढ़ जायगा।' आश्चर्यान्वित हो मधुसूदन शान्त बैठा रहा। उसे विवाह के दिन की मुनाफे वाली जबर्दस्त बात और कुछ दिनों की वह पराजय उसके मन में बराबर आने लगी। यह कितने सौभाग्य की बात है कि लक्ष्मी स्वयं पधारें। किन्तु साथ ही उसकी अपनी जिम्मेदारी भी कुछ कम भयङ्कर प्रतीत नहीं होती।'

मधुसूदन गाड़ी पर लौटते समय भी स्तब्ध हो बैठा रहा। थोड़ी देर के बाद नवीन ने आकर कहा—'मुझे तो इस वेंकट शास्त्री की बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं, इसने अवश्य ही तुम्हारे बारे में किसी से सम्पूर्ण ब्यौरा पूछ लिया है।'

'हूँ ज्ञात होता है तुम बड़े अक्लमन्द पुरुष हो। क्या यह आसान काम है कि जहाँ जितने आदमी रह रहे हैं वे सभी की पहले ही से खोज खबर लेते रहें!'

मनुष्य के जन्म लेने के पूर्व करोड़ों जन्म-पत्रियों के बनाने की अपेक्षा—क्या यह काम बड़ा सरल है! भृगु मुनि को फिर भला इतने कागज कहाँ मिले! साथ ही वेंकट शास्त्री के उस छोटे घर में इतनी जगह कहाँ है!'

'वाह ! पहले ऋषि-मुनी एक ही लकीर में हजारों बातें लिख दिया करते थे।'

'यह नितान्त ही असम्भव बात है।'

'तुम्हारी बुद्धि में जो बात न आवे वह असम्भव ही होगी। उँह ! तुम्हारा जो यह साइन्स बहुत ही अच्छा है। अच्छा अब तर्क की कोई आवश्यकता मुझे नहीं, हाँ तो, उस दिन जो वहाँ से गुमाश्ता आया था, उसे तुम आज स्वयं जाकर लिवा लाना, यह याद रखना कि देर न हो।'

नवीन का हृदय भाई साहब को छकाकर भीतर ही भीतर बेचैन-सा हो उठा। इस सरल फन्दे की बात भाई साहब के लिए इतनी हास्यास्पद थी कि जिसके अपमान से नवीन को बड़ी ही शर्म आई और साथ ही वह दुःखी भी हुआ, उसे अपने भाई साहब को कई बार छोटी-छोटी सी बातों के लिए धोखा देना पड़ा है और उसे किसी प्रकार का कोई सङ्कोच भी नहीं हुआ, किन्तु आज इतना घुमा-फिरा कर इतने बड़े बाल रखने की ग्लानि ने उसके चित्त को अपवित्र कर दिया।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

मधुसूदन के मन से एक बोझ-सा उतर गया। आत्म-गौरव का बोझ जो कठोर आत्माभिमान के रूप में इसकी लिखी हुई प्रेमलिप्सा को बारम्बार पत्थर से दबाता आ रहा था। कुमुद की ओर जब मधुसूदन का मन मुग्ध होता था, उस समय भी उस विवशता के कारण भीतर ही भीतर की लड़ाई चल रही थी। अनेकों प्रकार के उपायों द्वारा ज्यों-ज्यों वह कुमुद की ओर खिचता गया है, त्यों त्यों अपने अगोचर में कुमुद के ऊपर क्रोध प्रबल होता गया है। तत्पश्चात् जब प्रधान नक्षत्रों में यहाँ से जब हुक्म आया कि घर में लक्ष्मी जी आई हैं, उनको खुश करना होगा। उस समय जब द्वन्द्व दूर होकर उसका शरीर और

मन मानो रोमांचित हो उठा और बार-बार अपने मन में वह कहने लगा—'लक्ष्मी ! मेरे घर में लक्ष्मी, जो कि मेरे भाग्य की परम दान है।' मन में आने लगा—अभी ही समस्त सङ्कोच दूर करके वह कुमुद के पास जाय और उसकी स्तुति कर आवे और साथ ही यह भी कह आवे कि यदि उससे कोई गलती हुई तो उसके ऊपर तनिक भी ध्यान मत देना। किन्तु अब समय कहाँ है। व्यापार की दरार को जोड़ने अभी ऑफिस जाना है। वह भीतर जाकर भोजन कर सके, उसके पास इतना भी समय नहीं है।

इधर सम्पूर्ण दिन कुमुद का मन डावाँडोल होता रहा। उसे यह मालूम था कि भइया की तबीअत ठीक नहीं है इसलिए वह कल आवेंगे। निश्चित रूप से यह जानने के लिए कि भइया से उसकी भेंट हो सकेगी या नहीं, उसका मन उद्विग्न हो रहा है। नवीन को किसी कार्यवश कहीं जाना पड़ा है वह लौटा नहीं है। वह बिना किसी सन्देह के जानता है कि आज मधुसूदन स्वयं कुमुद के पास जाकर उसे सब प्रकार से प्रसन्न करेगा। वह प्रथम ही किसी प्रकार का आभास देकर रस भङ्ग नहीं करना चाहता।

छत के ऊपर बैठने का आज अवसर न था। कल सायंकाल से ही आकाश पर मेघ छाये हुए हैं। आज दोपहर से थोड़ी-थोड़ी जल की बूँदें भी गिरने लगी हैं। शीत ऋतु के बादल अनिच्छित मेहमान की तरह बुरे लग रहे हैं। न तो बादलों में कोई रङ्गत है, न वर्षा में कोई ध्वनि है। भारी ठण्डी हवा जैसे उदास सी बनी हो तथा सूर्यहीन आकाश की दीनता से जैसे पृथ्वी संकुचित हो रही हो। सीढ़ियों पर चढ़ने के बाद जहाँ जीना खतम होता है और शयन-कक्ष में जाने के रास्ते से लगी हुई जो छत है, वहीं कुमुद बैठी है। रह-रह कर उसके बदन पर पानी की बौछार भी पड़ जाती है। छाया से मलिन आज का यह दिन कुमुद को ऐसा प्रतीत होने लगा मानो अजगर की भाँति उसके जीवन ने उसे निगल लिया है और उस अजगर के ठसाठस भरे

पेट में कहीं भी थोड़ी-सी सन्धि नहीं जान पड़ती। जिस देवता ने उसे फुसला कर आज इस निरुपाय निराशारूपी समुद्र में ला पटका है; उसके ऊपर उसका अभिमान घुमड़ रहा है, वही आज क्रोध की आड़ में भड़क उठा है, वह एकाएक उठी और डेस्क खोलकर उसने वही अपना युगल रूप का चित्रपट निकाला जो एक रङ्गीन रेशमी छींट के टुकड़े में लिपटा हुआ था। वह इस चित्र को आज नष्ट प्रायः करना चाहती है और जैसे जोर से कहना चाहती है कि मेरा तुम्हारे ऊपर किञ्चित मात्र भी विश्वास नहीं। हाथों के काँपने के कारण गाँठ नहीं खुल रही है। खींचा-तानी करने के कारण वह और भी मजबूत हो गई है। बाद में अधीर हो उसने उसे दाँतों से फाड़ डाला। उस चिरपरिचित मूर्ति के दर्शन होते ही कुमुद से रहा न गया, उसी दम उसे छाती से चिपटा कर रोना शुरू किया। लकड़ी का फ्रेम ज्यों-ज्यों उसकी छाती में चुभने लगा त्यों-त्यों वह उसे और भी दूने आवेग से चिपटाने लगी।

इतने ही में मुरली बैरा बिछौना बिछाने आ गया। सर्दी के कारण उसके हाथ काँप रहे थे। उसकी देह पर केवल एक मैली और फटी चादर थी। उसके सिर के बाल गायब थे, कनपटियाँ बैठी थीं तथा गाल पिचके हुए थे और बढ़ी हुई दाढ़ी भद्दी दिखाई पड़ती थी। अभी थोड़े ही दिन हुए मलेरिया बुखार के कारण उसके शरीर में रक्त सिर्फ कहने भर ही को रह गया है, यद्यपि डॉक्टर ने नौकरी छोड़ देश में जाकर रहने के लिए कहा था किन्तु पेट बुरी बला है।

कुमुद ने कहा—'मुरली!'

'हाँ, माँ जी, बादलों के घिर आने के कारण जाड़ा बड़े जोर का है।'

'तुम्हारे पास गरम कपड़े नहीं हैं!'

'हाँ माँ जी! खिताब मिलने के दिन महाराजा साहब ने मुझे दिये तो थे मगर अपने नाती की बीमारी में डॉक्टर के कहने पर मैंने उसे ही

दे दिये।'

बगल के कमरे में जाकर आलमारी के भीतर से कुमुद एक पुराना खाकी अलवान निकाल लाई और कहने लगी—'मैं अपनी यह चद्दर तुम्हें दे रही हूँ।'

प्रणाम करते हुए मुरली बोला—'माताजी, मेरा कुसूर माफ करना, मेरे ऊपर महाराजा साहब गुस्सा होंगे।'

कुमुद को याद हो आया कि इस घर में दया करने का रास्ता बड़ा ही टेढ़ा है किन्तु देवता से अपने लिए भी तो उसको दया मिलनी चाहिए। दया का मार्ग पुण्य कर्म ही तो है। क्षोभ के साथ कुमुद ने उस अलवान को धरती पर फेंक दिया।

मुरली हाथ जोड़कर बोला—'रानी-अम्मा, तुम लक्ष्मी माता हो, मेरे ऊपर क्रोधित न हो। मुझे तो ऊनी कपड़ों की जरूरत भी नहीं पड़ा करती। मैं हुक्केबरदार की उस गरम कोठरी में रहता हूँ, जहाँ हरदम अँगीठी में आग सुलगती रहती है, इसी से मैं अपने को खूब गरम रखता हूँ।'

कुमुद ने कहा—'मुरली यदि नवीन आ गये हों तो उन्हें, मेरे पास भेज देना।'

नवीन के कमरे में पहुँचते ही कुमुद ने कहा—'देवर जी, तुम्हें एक काम आज करना है बोलो, क्या तुम करने को तैयार हो?'

यदि अपना अनिष्ट भी होगा तब भी मैं उसे कर सकता हूँ किन्तु यदि उसे करने से तुम्हारे अनिष्ट होने की सम्भावना होगी तो मैं उसे हरगिज नहीं कर सकता।'

'मुझे डर नहीं, मेरा अब और क्या अनिष्ट हो सकता है?' यह कह कर कुमुद ने अपने हाथों के मोटे और भारी सोने के चूड़े उतार लिये और बोली—'मेरे इन चूड़ों को बेचकर भैया के लिए स्वस्त्ययन कराना है।'

'बहूरानी, कोई आवश्यकता नहीं है, तुम्हारी जैसी भक्ति भैया के-

ऊपर है उसी भक्ति के पुण्य से प्रत्येक क्षण उनके लिए स्वस्त्ययन हो रहा है।

'देवर जी, मुझसे अब भैया के लिए कुछ भी न हो सकेगा। यदि कुछ हो सकता है तो केवल इतना ही कि देवता के द्वारा उनके लिए कुछ सेवा पहुँचा दूँ।'

'बहूरानी, तुम्हें कुछ भी न करना पड़ेगा, हम सब सेवक भला फिर किस लिए हैं?'

'तुम लोग क्या कर सकते हो, बताओ?'

'हम लोग तो पापी ठहरे, बताओ भला पाप के अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं और उसे ही करके यदि तुम्हारे किसी काम आ सकें तो अपने को कृतार्थ समझेंगे।'

'इस विषय में देवर जी मजाक मत करो।'

'मैं जरा भी मजाक नहीं करता। पुण्य करने की अपेक्षा पाप करना बड़ा ही कठोर कार्य है। यदि देवता इस बात को समझेंगे तो पुरस्कार अवश्य देंगे।'

देवता के प्रति नवीन की बातों से इसकी उपेक्षा बुद्धि की कल्पना करके कुमुद का दिल दुःखी होना स्वाभाविक ही था, किन्तु उसके भैया भी तो देवता से मन ही मन प्रेम नहीं करते, इस अभक्ति पर तो वह क्रोधित नहीं हो सकती। छोटे बच्चों की शरारत के ऊपर माँ की जिस प्रकार कौतुकपूर्ण ममता होती है, उसी भाँति अपराध पर उसका भी वैसा ही भाव है।

मन्द-मन्द म्लान हँसी हँसकर कुमुद ने कहा—'संसार में देवरजी, तुम लोग अपने जोर से काम कर सकते हो, किन्तु हम में तो वह जोर हो ही नहीं सकता। जिन पर श्रद्धा है किन्तु पहुँच नहीं, यदि इनका कार्य करूँ तो किस भाँति? न तो दिन ही व्यतीत होता है और न तो खोजने पर कहीं मार्ग ही मिलता है, क्या हमारे ऊपर दया करने वाला कहीं भी कोई नहीं है?'

नवीन के नेत्र सजल हो आये।

'देवर जी, मुझे भैया के लिए तो कुछ करना ही होगा और कुछ न कुछ तो देना ही होगा। ये चूड़े हमारी माँ के दिये हुए हैं। मैं इनको ही अपनी माँ की ओर से देवता को चढ़ाऊँगी।'

'बहूरानी, देवता के हाथों में नहीं दिया जाता वे तो ऐसे ही ले लिया करते हैं। अभी दो दिन और रुक जाओ और देखो कि क्या वे अभी खुश नहीं हुए। बाद को जैसी तुम्हारी आज्ञा होगी मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। जो देवता तुम्हारे ऊपर दया नहीं करते उन्हें भी भोग चढ़ाऊँगा।'

रात हो चली थी—बाहर जीने के ऊपर परिचित जूतों का शब्द सुन पड़ा। नवीन चौंक पड़ा और समझ गया कि भाई साहब आ रहे हैं। धैर्यपूर्वक वह वहीं बैठा रहा, भागा नहीं, बल्कि उनके आने की राह जोहने लगा। इधर कुमुद का मन क्षणमात्र में संकुचित हो उठा। अब इस दृश्य विरोध के धक्के ने उनकी नाड़ियों को प्रबलवेग से चौंका दिया, साथ ही उसे अत्यन्त डर-सा लगने लगा। इस पाप ने उसे इस सख्ती के साथ क्यों घर दबोचा!

एकाएक कुमुद नवीन से कह उठी—'देवर जी, तुम किसी ऐसे व्यक्ति को बता सकते हो जो मुझे गुरु की भाँति शिक्षा दे सके?'

'बहूरानी, उससे क्या होगा?'

'मैं अब अपने मन से जूझने में असमर्थ हूँ।'

'भला इसमें तुम्हारे मन का क्या दोष?'

'दोष तो मन का है और आपत्ति बाहर की है। मैंने तो बार-बार भैया से ऐसा सुना है।'

'तुम घबराओ नहीं, तुम्हारे भैया ही तुम्हें उपदेश देंगे।'

'वाह! ऐसे दिन मेरे भाग्य में कहाँ!'

मधुसूदन की आर्थिक बुद्धि के साथ उसके प्रेम का समझौता हो जाने से वह प्रेम उसके समस्त काम-धन्धों पर से मानो उफना कर फैलने

लगा। कुमुद के सुन्दर मुखड़े पर उसके भाग्य का दान है। आज ही उसे इस बात का आभास मिला है कि पराभाव दूर हो जायगा। जिन्होंने कल विरोधी राय दी थी उन्हीं में से अनेकों ने आज अपने सुर बदल कर मधुसूदन को चिट्ठी लिखी है। इस इलाके को अपने नाम से खरीदने का मधुसूदन ने ज्योंही प्रस्ताव किया, त्योंही किसी ने ऐसा भी भाव दिखाया कि इस बात पर फिर दुबारा एक बार जाँच करनी आवश्यक है।

ऑफिस के दरबान की आधी तनख्वाह गैरहाजिरी के अपराध में काट ली गई थी, आज दुपहरी की छुट्टी में वह मधुसूदन के पैरों पड़ गया। उसी वक्त उसने उसे माफ कर दिया। और वह भी इस प्रकार कि अपनी पॉकेट से दरबान को रुपये दे दिये। किन्तु नियम न भङ्ग हो इस कारण रजिस्टर पर जुर्माने की रकम बनी ही रही।

मधुसूदन के लिए आज का दिन बड़े ही आश्चर्य का है। बाहर गगन-मण्डल पर बादलों के घिर आने और रिमझिम-रिमझिम वर्षा होने के कारण उसके भीतर का आनन्द और भी बढ़ गया है। ऑफिस से लौटने पर जब तक वह भोजन न कर लेता था, बाहर के ही मकान में रहता था। नियम के प्रतिकूल ब्याह के बाद कुछ दिन असमय में अन्तःपुर में जाते वक्त उसने लोगों की निगाह भी बचाई है किन्तु आज वह बेधड़क पैर बढ़ाता हुआ समस्त घर वालों को यह बता देना चाहता है कि वह कुमुद के पास मिलने जा रहा है, आज वह समझ रहा है कि उसके सौभाग्य के ऊपर समस्त संसार के लोग उससे ईर्ष्या कर सकते हैं।

पानी का बरसना थोड़ी देर रुक गया है। अभी तक सब कमरों में बत्तियाँ नहीं जलीं। धूपदानी हाथ में लिये आनन्दी बुढ़िया सब कमरों में धूप देती फिरती है। एक चमगादड़ आँगन के ऊपर से लेकर अन्तःपुर के रास्ते तक लालटेन के प्रकाश में चक्कर काट रहा है। दासियाँ बरामदे में पैर फैलाये अपनी-अपनी जाँघों के ऊपर रुई की बत्तियाँ बना

रही थीं। राजा साहब को आते देखकर वे सब बड़ी तेजी से भाग खड़ी हुईं। पान का डिब्बा हाथ में लिये हुए श्यामासुन्दरी पगध्वनि सुन कर बाहर निकल आईं। मधुसूदन के ऑफिस से आने पर वह नियमानुसार उनके पास पान भिजवा दिया करती थी। यह सभी को ज्ञात था कि मधुसूदन की रुचि के योग्य पान श्यामा ही लगा सकती है। इतना ही जानने में और भी कुछ जानने का इशारा था। इसी बात के ऊपर श्यामा ने पान का डिब्बा खोल कर रास्ते ही में कहा—'देवर जी, तुम्हारे पान लगे हैं, इन्हें लेते आओ।' यदि पहले की-सी बात होती तो इसी बहाने दो-चार बातें हो जातीं और उन बातों में दो-चार मधुर शब्दों का आमेल लगा रहता। आज क्या हो गया, उसे कौन जाने। दूर ही से श्यामा की कहीं छूत न लग जाय, इसी डर से पान लिये बिना मधुसूदन जल्दी से निकल गया। अभिमान से श्यामा की दोनों बड़ी-बड़ी आँखें जल उठीं। किन्तु बाद में उन्हीं आँखों से बड़ी-बड़ी-बूँदें टपकने लगीं, मधुसूदन से श्यामासुन्दरी प्रेम करती है, इसे परमात्मा जानते हैं।

मधुसूदन के कमरे में प्रवेश करते ही नवीन कुमुद के पैरों की धूल सिर में लगा कर उठ खड़ा हुआ और बोला—'तलाश में रहूँगा, गुरु की बात का स्मरण है।' फिर भाई साहब से बोला—'बहूरानी गुरु के मुँह से शास्त्रोपदेश सुनने को उत्सुक हैं। अपने गुरुजी तो हैं अवश्य किन्तु ···।'

उत्तेजित स्वर में मधुसूदन कहने लगा—'शास्त्रोपदेश। बहुत अच्छा, देखा जायगा। तुमको इसके लिए कुछ भी न करना पड़ेगा।'

नवीन चला गया।

आज समस्त रास्ते में मधुसूदन रटता आया था—'बड़ी बहू, तुम्हारे ही आने से मेरे घर में प्रकाश फैला है।' इस भाँति की बातें करना उसकी प्रकृति के बिलकुल प्रतिकूल है। इसी कारण उसने निश्चय किया कि घर में घुसते ही बिना दुविधा के वह प्रथम ही झोंक में उसे कह

डालेगा किन्तु नवीन को देखते ही उसकी बात रुक गई। साथ ही वहाँ शास्त्रोपदेश का प्रसङ्ग छिड़ गया, उसने उसके मुख को बिलकुल ही बन्द कर दिया। मन के भीतर की सम्पूर्ण तैयारियाँ इस ज़रा-सी बाधा के कारण ज्यों की त्यों ही रह गईं। तत्पश्चात् कुमुद के मुखड़े पर एक प्रकार के भय का भाव तथा देह और मन में एक प्रकार का सङ्कोच दीख पड़ा। और किसी दिन इस बात के ऊपर उसकी दृष्टि न जाती। आज जो उसके हृदय में प्रकाश का उदय हुआ उसके कारण उसकी देखने वाली शक्ति प्रबल हो उठी है। कुमुद के विषय में चित्त का स्पर्श ज्ञान बिलकुल ही सूक्ष्म हो गया है। आज भी कुमुद के मन में जो ऐसी विमुखता थी, उसे वह बड़ी निष्ठुर अन्याय सी प्रतीत होने लगी। फिर भी मन में यह सङ्कल्प कर लिया कि विचलित न होऊँगा किन्तु सहज में होनेवाले कार्य अब सहज न रहें!'

कुछ देर शान्त रहने के बाद मधुसूदन ने कहा—'बड़ी बहू, ज़रा रुकोगी नहीं, क्या चली ही जाना चाहती हो?'

मधुसूदन की बात और उसके गले का स्वर सुनकर कुमुद आश्चर्य में आकर बोली—'नहीं, मैं जाऊँगी क्यों?'

'तुम्हारे लिए एक चीज़ लाया हूँ। उसे खोलकर देखो।' इतना कह कर मधुसूदन ने कुमुद के हाथ में एक सोने की डिब्बी दे दी।'

कुमुद ने डिब्बी खोलकर देखा कि वह भैया की दी हुई नीलम की अँगूठी है। उसकी समझ में न आया कि वह क्या करे, उसकी छाती धड़क उठी।

'इस अँगूठी को मैं तुम्हें पहनाना चाहता हूँ। बोलो क्या तुम इसे मुझे पहनाने दोगी?'

कुमुद ने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया। मधुसूदन ने कुमुद का हाथ अपनी गोद में रख लिया और आहिस्ते-आहिस्ते अँगूठी पहनाने लगा। उसने जानबूझकर भी कुछ अधिक समय लगाया। उसके बाद हाथ उठाकर चूमते हुए बोला—'मैंने तुम्हारे हाथ से अँगूठी खोलकर

भारी गलती की थी। तुम्हारे हाथ में चाहे कोई भी रत्न हो उसमें कोई भी दोष नहीं।'

यदि मधुसूदन कुमुद को पकड़कर खूब पीटता तो भी उसे इतना आश्चर्य न होता। छोटे बच्चों की भाँति कुमुद के इस आश्चर्यमय भाव को देखकर मधुसूदन को अच्छा ही लगा। कुमुद के मुख के भाव से बात बिलकुल स्पष्ट थी कि उसका यह दान मामूली दान नहीं है। किन्तु मधुसूदन के हाथ में अभी देने की कोई वस्तु रह ही गई है, क्या उससे मिलोगी?'

कुमुद का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा, बोली—'कालू भैया!'

'यहीं, हाँ, उसे यहीं बुलाये लाता हूँ। तुम लोग बातचीत करना तब तक मैं भोजन भी कर आऊँगा।'

कुमुद की आँखें कृतज्ञता से डबडबा आईं।

बयालीसवाँ परिच्छेद

कालू का चटर्जी जमींदारों के साथ प्राचीन खानदानी सम्बन्ध है। जितने भी विश्वसनीय कार्य हैं वे सभी ही कालू ही द्वारा किये जाते हैं। उसके पुरुषाओं में से किसी एक को चटर्जियों के लिए जेल जाना पड़ा था। कालू आज विप्रदास की ओर से सूद की किस्त चुका कर मधुसूदन के ऑफिस में रसीद प्राप्त करने के अभिप्राय से आया है। उसका नाटा कद, गेहुँआ रङ्ग और भरा हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें और उनके ऊपर काले-सफेद बालों वाली झुकी हुई सी भौंहें और घनी तथा बड़ी-बड़ी सफेद मूँछे थीं; किन्तु सिर के प्रायः सभी बाल नीले रङ्ग के थे। शान्तिपुर की उम्दा धोती पहने हुए था और मालिकों की इज्जत के मुआफिक पुरानी कीमती जामेवार की अचकन पहने हुए था। उसके

दाहिने हाथ की अँगुली में एक पत्थर से जड़ी अँगूठी है जो बहुमूल्य पत्थर की-सी जान पड़ती है।

ज्यों ही कालू ने कमरे के भीतर पैर रक्खा कुमुद ने उसे प्रणाम किया, दोनों दरी के ऊपर बैठ गये। कालू कहने लगा—'छोटी लली, अभी तुम्हें आये थोड़े ही दिन बीते हैं किन्तु जान पड़ता है जैसे वर्षों की आई हुई हो।'

'पहले यह तो बताओ कि भैया का कैसा हाल है?'

'बड़े बाबू के कारण दिन बड़े ही चिन्ता में व्यतीत हुए हैं, तुम्हारे चले जाने के दूसरे ही दिन बीमारी ने तेजी पकड़ी थी, मगर शरीर में ताकत अधिक होने के कारण वे उसे झेल गये। डॉक्टरों को भी इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ था।'

'क्या भैया कल आ गये?'

'कल आ जाने की बात थी किन्तु अभी दो-एक दिन की और देर है। पूनो के पड़ जाने की वजह से सब लोगों ने रोका कि शायद फिर बुखार न आने लग जाय, इसी कारण वे रुक गये। खैर, यह बातें तो हो गईं, किन्तु तुम यह तो बताओ कि तुम्हारी तबीअत कैसी रहती है?'

'मैं तो खूब अच्छी तरह से हूँ।'

कालू ने कुछ कहना न चाहा किन्तु उसके चेहरे की वह लावण्यता, आँखों के नीचे की कालिख और उसका चमकता हुआ सुन्दर चेहरा जो पीला-सा पड़ गया था, उसे देखकर मन में खटका-सा हुआ। कुमुद के मन में एक प्रश्न-सा उठ रहा था किन्तु वह अपने मुख को खोलकर कुछ कह न सकी।—'क्या भैया ने मुझे याद करके मेरे लिए कुछ कहला नहीं भेजा?' उसके इस अव्यक्त प्रश्न के उत्तर में कालू ने कहा—'बड़े बाबू ने तुम्हारे लिए मेरे हाथ एक चीज भेजी है।'

व्यग्रता के साथ कुमुद ने पूछा—'क्या भेजा है और वह कहाँ है?'

'मैं उसे बाहर ही छोड़ आया हूँ।'

'क्यों, उसे लाये क्यों नहीं?'

'बहन ! तुम घबराओ नहीं, महाराज ने कहा है, वे उसे स्वयं ही लेकर आयेंगे।'

'वह कौन सी वस्तु है, जरा मुझे बताओ भी तो ?'

'किन्तु उन्होंने तो मुझे बताने से रोक रखा है।'

घर के चारों ओर भली-भाँति देख-भाल कर कालू ने कहा—'तुम्हारा यहाँ पर खूब आदर है, जाकर बड़े बाबू से कहूँगा वे बहुत ही प्रसन्न होंगे। जब पहले-पहल तुम्हारा खत उन्हें देर से मिला था उस समय दो ही दिन की देर से वे बड़े घबड़ा गये थे। डाक की कुछ गड़बड़ी हो गई थी, क्योंकि बाद में उन्हें तीन चिट्ठियाँ एक साथ मिलीं।'

डाक की गड़बड़ी कहाँ हो गई थी, इस बात पर पता लगाने में कुमुद को पल भर की देर न लगी।

कुमुद कालू भैया से कुछ जलपान करने को कहना चाहती है किन्तु उसका साहस उस समय इतना नहीं किन्तु सङ्कोच करते-करते बोली—'कालू भैया, अभी तक तुमने कुछ खाया भी न होगा ?'

'नहीं बहन, मुझे कलकत्ते में शाम के बाद भोजन बर्दाश्त नहीं होता इसी कारण तो मैं अपने वैद्यराज रामसहाय से मकरध्वज मँगाकर उसी का सेवन कर रहा हूँ, किन्तु कोई विशेष फायदा भी नहीं जान पड़ता।'

कालू के मन में यह बात आई थी कि कुमुद घर की नई बहू ठहरी इन्तजाम का समस्त भार अभी उसके ऊपर तो आया नहीं है, इसी कारण खुले मुँह भोजन की बात न कह सकेगी। केवल मन मसोसकर ही रह जायगी।

इतने ही में दरवाजे की ओट मोती की माँ ने इशारा करके कुमुद को बुलाया और कहा—'तुम्हारे यहाँ के जो मुकुर्जी महोदय आये हैं, उनके लिए भोजन तैयार है, उन्हें नीचे के कमरे में ले चलकर भोजन कराओ।'

तुरन्त ही कुमुद आकर बोली—'कालू भैया, चलो, भोजन कर आओ, आज मैं तुम्हें वैद्यराज की आज्ञा न मानने दूँगी, तुम्हें आज

चलकर भोजन करना ही पड़ेगा।'

'बहन, यह तो बड़ी मुश्किल है, तुम जबदस्ती क्यों करती हो, आज भर माफी दो और किसी दिन देखा जायगा।'

'नहीं, यह तो हो ही नहीं सकता—चलो।'

अन्त में चलकर यह मालूम हुआ कि मकरध्वज काफी फायदे वाला है, क्योंकि उससे भूख में तनिक भी कमी नहीं आने पाई थी।

कालू भैया के भोजन कर चुकने पर कुमुद अपने ऊपर के कमरे में चली आई। उसका हृदय आज मायके की याद में भर आया है, अब तो नूरनगर के पिछवाड़ेवाले बगीचे में आम के पेड़ बौर से लद गये होंगे। तालाब के पक्के घाटों पर जहाँ जामुन के फूले हुए वृक्ष हैं, वहाँ उसी चबूतरे के ऊपर हाथ के सिरहाने बनाकर न मालूम कितनी दुपहरियाँ सोकर बिताई हैं—वह दुपहरियाँ मधुमक्खियों के गुञ्जन और धूप तथा छाया से चित्रित किस प्रकार भली लगती थीं। हृदय में अकारण ही एक दर्द-सा मालूम होने लगा। यह उसे ज्ञात न था कि इसके क्या मतलब हैं। उस दर्द ने शाम को ब्रज गोधूलि से उसके स्वप्न को रङ्गीन बना दिया। वह यह न समझ पाई कि उसके यौवन अप्राप्त साथी ने जल और स्थल में माया मिला दी है। उसके साथ वही अप्राप्त साथी युगरूपी उपासना में छिपे-छिपे चोरी खेल रहा है और उसी का वह अपने चित्त द्वारा अदृश्यपुर में 'इसराज' के मुल्तानी राग की धुन में खींच लाई है। उसे अपने मायके के यौवनावस्था के प्रथम ही उस अप्राप्त मनचाहे व्यक्ति का आभास मिलता था—यह भी खासकर उस ऊपर के कोठे में जहाँ से कि टेढ़ी-मेढ़ी सड़क और गाँव के फूले हुए सरसों के खेत दिखाई पड़ते थे। वहीं पर बैठकर वह दीवाल की हरी और काली रेखाओं के साथ अपनी किसी भूली हुई कहानी का अस्पष्ट चित्र देखा करती थी। प्रातःकाल उठने पर जब वह दुमञ्जिले के ऊपर सोने के कमरे से दूर से रङ्गीन आकाश में नाव के सादे पाल देखा करती थी, उस समय उसे ऐसा जान पड़ता था मानो दिगन्त के किनारे से हृदय की निरुद्देश्य कामना चली

हो। अपनी पूजा और सङ्गीत में मग्न होकर वह प्रथम यौवन की मरीचिका के साथ ही साथ कलकत्ता आई थी। दैव के बहाने उसे अन्धे की भाँति इस विवाह के फन्दे में खींचकर इसी मरीचिका ने तो लाया है, किन्तु कड़ी धूप होने के कारण वह उसमें ही विलीन हो गई।

मधुसूदन इसी बीच में न जाने कब आकर उसके पीछे खड़ा हो गया। और दिवाल में लगे बड़े शीशे में कुमुद के मुँह की परछाईं देखने लगा। उसे यह समझने में देर न लगी कि उस अदृश्य अपरिचित के साथ उसकी प्रतियोगिता कदापि चल ही नहीं सकती। यदि और कोई दूसरा दिन होता, तो कुमुद के इस अनमने भाव पर उसे क्रोध भी आता, किन्तु आज वह शान्त भाव से कुमुद के पास आकर बैठ गया और बोला—'बहू, क्या सोच रही हो?'

कुमुद चौंक-सी पड़ी, उसके चेहरे का रङ्ग फक पड़ गया। मधुसूदन ने उसके हाथ को पकड़ लिया और झकझोरते हुए बोला—'बड़ी बहू क्या तुम मुझे किसी भी प्रकार पकड़ाई न दोगी?'

कुमुद को इस बात का कोई उत्तर सुझाई न पड़ा, क्योंकि उसके मन में भी बराबर यही खटका बना रहता है कि पकड़ाई नहीं देती। इसका क्या अर्थ है? जब मधुसूदन के व्यवहार कठोर होते थे, तब तो उसके लिए उत्तर सहज था मगर जब वह अपनी हीनता स्वीकार कर लेता है, उस समय वह कुमुदिनी से सिवा निन्दा के और बोल ही क्या सकता है। स्वामी को अपने हृदय और मन को अर्पण कर देना घोर पाप है। इसके बारे में कुमुद को तनिक भी शङ्का नहीं, फिर भी उसकी दशा इस प्रकार क्यों हुई? स्त्रियों का एकमात्र लक्ष्य उनका सती सावित्री ही होना है। इस लक्ष्य से भ्रष्ट होने की दुर्दशा से वह अपने को बचाना चाहती है। इसी कारण व्याकुल भाव से अपने पति से कहने लगी—'तुम मुझ पर दया करना।'

'कौन-सी बात के लिए दया करना है?'

'तुम मुझे अपना बना लो, हुक्म चलाओ और मुझे सजा दो, शायद

मैं तुम्हारे योग्य नहीं। क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत होता है।'

मधुसूदन को यह सुनकर बड़े ज़ोर की हँसी आ गई। कुमुद सतीधर्म पालन करना चाहती है। कुमुद को चाहिए था कि वह केवल साधारण गृहिणी होती, किन्तु यह तो उसके लिए मन्त्र पढ़ी स्त्री से बहुत ऊँचे पर होती। उस उच्चता को प्राप्त करने के लिए वह जो कुछ भी मूल्य लगाता है, वह सभी व्यर्थ जाता है। उसका पकड़ाईपन प्रतिक्षण दिखाई दे जाता है। कुमुदिनी के साथ वह अपनी अलङ्घनीय असाध्य व्याकुलता को उत्तरोत्तर बढ़ाता ही जा रहा है।

गहरी साँस लेकर मधुसूदन बोल उठा—'बताओ, तुम्हें एक चीज़ दूँ तो तुम मुझे क्या दोगी?'

कुमुद को समझते देर न लगी कि भैया की दी हुई वह वस्तु है, व्यग्रता के साथ मधुसूदन की आकृति को देखती रही।

'जिस प्रकार की चीज़ होगी, उसी प्रकार के दाम भी देने पड़ेंगे इस बात का ख्याल रखना!' यह कहते हुए उसने रेशमी खोली जो पलङ्ग के नीचे रक्खी थी, इसराज निकाला और उस खोली को अलग कर दी। मायके से आते समय हाथी-दाँत से जड़े हुए जिस इसराज को वह छोड़ आई थी, वह यही चिरपरिचित इसराज था।

मधुसूदन ने कहा—'चलो, खुश तो हुई, लाओ अब दाम चुकाओ।' कुमुद की समझ में यह न आ सका कि मधुसूदन क्या दाम चाहता है। वह उसके मुख की ओर देखती रही। मधुसूदन बोल उठा—'मुझे ज़रा इसे बजाकर सुनाओ तो सही।'

यह कोई बड़ी बात न थी, किन्तु फिर भी यह उसके लिए अधिक ही था। मधुसूदन को सङ्गीत-रस से तनिक भी प्रेम नहीं है, उसे कुमुद भली भाँति जानती है। उसके सामने इसराज बजाने में उसे सङ्कोच होता है। उस सङ्कोच को दूर करना भी कठिन ही है। मुँह नीचे किये हुए, कुमुद इसराज की लम्बी छड़ी हिलाने लगी। मधुसूदन ने कहा—'बड़ी बहू बजाती क्यों नहीं, शर्माने की कौन सी बात है? तुम शर्म

मत करो।'

कुमुद बोली—'मेरा स्वर बँधा हुआ नहीं है।'

'तुम्हारे मन का स्वर नहीं बँधा है, साफ-साफ क्यों नहीं कहती हो?'

बात सच ही थी, तुरन्त ही कुमुद के हृदय पर चोट लगी, वह बोल उठी—'पहले इसे ठीक तो कर लूँ, फिर किसी दिन सुनाऊँगी।'

'कब तक सुनाओगी? साफ-साफ बताओ—कल?'

'अच्छा, कल ही सही, मैं कल ही सुनाऊँगी।'

'क्या ऑफिस से लौटने पर शाम के वक्त?'

'हाँ, उसी समय।'

'मधुसूदन दुशाले के भीतर से चमड़े का केस निकालते हुए बोला—'मैं तुम्हारे लिए मोती का हार लाया हूँ, सम्भव है, तुम उसे पाने पर इतनी खुश न हो?'

कुमुद शान्त भाव से चुपचाप बैठी रही और इसराज की छड़ी हिलाती रही साथ ही यह भी सोचती रही कि उससे इस प्रकार का पेचीदा प्रश्न क्यों किया जा रहा है?'

'उसकी समझ में आ गया कि दरख्वास्त मंजूर नहीं है।'

यह बात कुमुद ठीक से समझ न सकी।

मधुसूदन ने कहा—'मैं पहले यही सोचकर चला था कि तुम्हारे हृदय के पास अपनी दरख्वास्त लटका दूँगा, किन्तु यहाँ मामला प्रथम ही से दूसरे का तीसरा हो गया था।'

कुमुद के सामने मेज के ऊपर खुला हुआ हार पड़ा था। दोनों शान्त बने बैठे रहे, कोई कुछ बोल न सका। कुमुद की दशा कभी-कभी स्वप्निल-सी हो जाती थी, ठीक वही दशा इस समय हुई। सचेत होने पर कुछ देर के बाद कुमुद ने हार उठा कर गले में डाल लिया। साथ ही मधुसूदन की ओर अपना शीश झुकाती हुई बोली—'क्या तुम मेरा गाना सुनोगे?'

'हाँ, सुनूँगा।' मधुसूदन बोला।

'अच्छा, तो अभी सुनाती हूँ।' यह कहते हुए कुमुद ने इसराज का सुर मिलाया। यह भूल गई कि घर में कोई है या नहीं और केदार राग में गाना शुरू किया। केदार राग ही उसे अच्छा लगता था, अतएव केदार अलापते-अलापते वह छाया न' में जा पहुँची। 'ठाढ़े रहो मेरी आँखिन के आगे' उस सुर भरे आकाश में उस रङ्गीन छाया की परछाईं पड़ गई जिसे वह सङ्गीत में पाती थी। वह उसके हृदय में भी मिलती थी किन्तु आँखों से देखने की इच्छा केवल उसे प्रतिक्षण दबाया करती थी।

मधुसूदन को सङ्गीत रस का ज्ञान नहीं, किन्तु कुमुद के विश्रम्भृत मुख पर जो सुर खिला हुआ था, इसराज के पर्दे के ऊपर कुमुद की अँगुलियों के छूने से जो छन्द नाच रहा था, उसकी वजह से उसका दिल झूम उठा, ऐसा विदित होने लगा मानों उसे कोई वरदान दे रहा है। इसराज बजाते-बजाते एकाएक कुमुद रुक गई, उसने देखा कि मधुसूदन उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ाये बैठा है। उसका हाथ रुक गया और सहम गई, साथ ही उसने बजाना बन्द कर दिया।

सौजन्यता से भरा हुआ मधुसूदन का दिल उमड़ पड़ा। उसने कहा—'बड़ी बहू, बताओ, तुम क्या चाहती हो?' यदि कुमुदिनी के मुख से यह निकल आता कि कुछ दिन भैया की सेवा करना चाहती हूँ, तो शायद मधुसूदन उसे इनकार न कर सकता, क्योंकि मधुसूदन कुमुदिनी के राग से भरे मुख की ओर देख कर मन में यही सोच रहा था—'कैसा आश्चर्यकारी सत्य है, यही तो वह लक्ष्मी है जो मेरे घर में आकर विराजमान हुई।'

जमीन के ऊपर इसराज रख और छड़ी नीचे छोड़कर कुमुद शान्त भाव से बैठी रही।

मधुसूदन अनुनय-विनय के साथ फिर एक बार बोला—'बड़ी बहू, तुम जो कुछ चाहोगी मैं [illegible] दूँगा, अतएव मुझसे कुछ माँगो।'

कुमुद बोली—'[illegible] की बैरा को जाड़े का एक कपड़ा देने का मेरा

निचार है।'

यदि कुमुद के मुँह से यह भी निकला होता कि कुछ नहीं चाहती तो भी अच्छा था, किन्तु मुरली बैरा के लिए केवल कम्बल! जो सिर के ताज को समर्पित करने पर उद्यत है उससे जूते का फीता माँगना कौन-सी बात है?

मधुसूदन दङ्ग रह गया। उसे मुरली के ऊपर बड़ा क्रोध आया। वह बोला—'शायद उस मूर्ख मुरली ने तुम्हें तङ्ग किया होगा?'

'नहीं, मैं स्वयं ही उसे एक अलवान देना चाह रही थी, किन्तु उसने लिया नहीं। यदि तुम्हारी आज्ञा उसे मिल जाय, तो शायद वह हिम्मत करके उसे ले ले।'

मधुसूदन सन्न-सा रह गया। वह कुछ देर चुप बैठा रहा, फिर बाद में बोला—'क्या भीख देना चाहती हो? अच्छा, मैं जरा देखूँ तुम्हारा अलवान कहाँ है?'

अपने ओढ़े हुए उस पुराने बादामी रङ्ग के अलवान को कुमुद उठा लाई। मधुसूदन ने उसे लेकर स्वयं ओढ़ लिया और तिपाई के ऊपर लगी हुई घण्टी को बजाया, जिसमें एक बुढ़िया आकर उपस्थित हुई। मधुसूदन ने उससे कहा—'मुरली बैरा को यहाँ भेज दो।'

हाथ जोड़े हुए मुरली बैरा आकर उपस्थित हुआ। उसके हाथ कुछ तो डर के कारण और कुछ शीत के कारण काँप रहे थे।

'मुरली, तुम्हारी माँ जी तुम्हें इनाम दे रही हैं।' इतना कहकर मधुसूदन ने बेग निकाली और उसमें से सौ रुपये का नोट निकाला और उसको तह खोलकर कुमुद के हाथ पर रख दिया। इतने बड़े बे-माँगे दान देने की घटना मधुसूदन के जीवन की यह पहली ही थी। इस असम्भव घटना के कारण मुरली और भी सहम गया। वह दुविधा में पड़कर काँपते हुए स्वर में बोल उठा—'हुजूर!'

'हुजूर क्या है रे बेवकूफ! तू क्या निरा गधा ही है। अपनी माँ जी के हाथ से क्यों नहीं लेता! इन रुपयों से तेरे मन में जो कुछ भी आवे

खूब गरम कपड़े खरीदना।'

बात का यही अन्त हो गया। साथ ही उस दिन की और समस्त बातें समाप्त हो गईं। कुमुद का मन जिस स्रोत में बह रहा था, एकाएक उसकी गति रुक गई। मधुसूदन के दिल में आत्म-त्याग की जो लहरें उसके चित्त की संकीर्णता के किनारे तक टक्कर ले रही थीं, वे भी इस छोटे से नौकर की प्रार्थना के साथ हिलकोरे मारकर फिर वहीं की वहीं विलीन हो गईं। पहले की तरह बातचीत करना अब दोनों के लिए असाध्य हो गया। मधुसूदन को इस बात का बिलकुल खयाल न था कि शाम के वक्त से ही कुछ आदमी इलाका खरीदने की बातचीत के लिए बैठे हैं। एकाएक उसे खयाल आ गया और वह अपने को मन ही मन धिक्कारने लगा। एकाएक उठकर जल्दी से खड़ा हो गया और बोला—'थोड़ा-सा काम है, जाता हूँ।' इतना कहकर तेजी के साथ चला गया।

श्यामासुन्दरी के कमरे के सामने पहुँचकर वह जरा ठिठक गया और अस्फुट स्वर में बोला—'क्या है ?'

बिना कुछ खाये-पिये ही एक रफल ओढ़े श्यामासुन्दरी एक चटाई पर मुरझाई हुई-सी पड़ी थी। मधुसूदन की आवाज सुनकर वह तेजी से दरवाजे के पास आकर बोली—'देवरजी ! कहो, क्या कहते हो ?'

'तुमने मुझे पान नहीं दिये ?'

तैंतालीसवाँ परिच्छेद

हाबलु दरवाजे की ओट में बाहर अँधेरे में चुपचाप खड़ा था। यह कुछ कम हिम्मत की बात न थी। वह मधुसूदन से यम की भाँति डरता है किन्तु फिर भी लकड़ी के खिलौने की भाँति वह स्तब्ध खड़ा रहा। जब से वह ताईजी की फटकार खा चुका था तभी से वह ताईजी

के पास न आ सका था किन्तु भीतर से वह छटपटा अवश्य ही रहा था। इस समय आज उसका आना खतरे से खाली न था किन्तु उसकी माँ जब उसे सुलाकर काम-धन्धे में लग गई तब ही उसके कान में इसराज का सुर पड़ा। इस इसराज को कौन बजा रहा है इसका उसे कुछ भी पता न रहा, किन्तु इतना वह अवश्य जानता था कि बजता ताई जी के कमरे में ही है चूँकि ताऊजी के सामने तो इसराज बजाने को किसी की हिम्मत पड़ेगी ही नहीं अतएव उसे पूर्णरूप से विश्वास हो गया कि ताऊजी कमरे में नहीं हैं। किन्तु ऊपर जाने से उसकी निगाह ताऊजी के जूतों पर पड़ी, जिसके कारण वह जहाँ का तहाँ ठिठक कर रह गया। उसके मन में आया कि वह भाग खड़ा हो किन्तु इतने ही में ज्ञात हुआ कि ताई जी ही बजा रही हैं फिर उससे भागा न जा सका। वह दरवाजे की ओट से छिपकर सुनने लगा। ताई जी को वह पहले ही से जानता था किन्तु वह आज तो आश्चर्य-विभोर हो उठा। जैसे ही मधुसूदन कमरे से बाहर निकला वह तपाक से कमरे में घुस गया। कुमुद की गोद में जाकर उसके गले से लिपट गया और उसके कानों के पास मुँह ले जाकर बोला—'ताई जी!'

छाती से चिपटाते हुए कुमुद बोली—'अरे, यह क्या! तुम्हारे हाथ इतने ठण्डे क्यों हैं, जान पड़ता है तुम ठण्डी हवा में घूम रहे थे!'

हाबलू डर गया, उससे जवाब देते न बन पड़ा। वह सोचने लगा—ताई जी बिस्तर पर जाकर सोने को कहती हैं, कुमुद ने उसे दुशाले में लपेट लिया, देह की गर्मी से गरम करके कहा—'गोपाल, अभी तक सोने नहीं गये!'

'ताईजी, तुम्हारा बाजा सुनने आया था, कैसे बजाती हो!'

'जब तुम सीख जाओगे तो तुम्हें भी बजाना आ जायगा।'

'मुझे बजाना सिखा दोगी!'

आँधी की तरह तेजी के साथ मोती की माँ ने कमरे में आते ही कहा—'ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पागल-सी हो गई, क्यों रे डाकू, तू यहाँ आकर छिपा

है। कहाँ तो तुझे शाम के वक्त कमरे से बाहर निकलने में डर लगता है और अब ताई जी के कमरे में आने के लिए डर कहाँ चला गया ? चल, सोने को देर होती है।'

हावलु कुमुद को पकड़े हुए बैठा रहा।

कुमुद ने कहा—'अरे नहीं, इसे यहीं रहने दो।'

'जीजी ! यदि इसकी हिम्मत इस भाँति बढ़ गई तो आगे चलकर बड़ी मुश्किल उठानी पड़ेगी। इसे सुलाकर मैं अभी-अभी आती हूँ।'

कुमुद की बड़ी इच्छा थी कि वह हावलू कोकोई खाने की अथवा खेलने की चीज दे। किन्तु देने लायक कोई चीज न समझकर वह उसका मुख चूमते हुए बोली—'तुम तो राजा बेटा हो, आज जाकर सो रहो। कल दोपहर में मैं तुम्हें बाजा सुनाऊँगी, समझे न ?'

करुण मुँह बनाये हावलू माँ के साथ सोने चला गया।

कुछ ही देर में मोती की माँ लौट आई। नवीन के साथ जो षड्यन्त्र चल रहा था, उसका क्या फल हुआ, यह जानने के लिए उसका मन अधीर हो रहा था। जैसे ही वह कुमुद के साथ निकट आकर बैठी वैसे ही उसकी निगाह नीलम की अँगूठी पर पड़ी। उसकी समझ में आ गया कि काम हो गया। बात को बढ़ाने के लिए बोली—'जीजी, यह बाजा तुम्हें किस प्रकार मिला ?'

कुमुद ने कहा—इसे भैया ने भेज दिया है।'

'इसे तो सेठ जी ही ने लाकर तुम्हें दिया होगा ?'

संक्षेप में कुमुद बोली—'हाँ।'

कुमद के मुखड़े पर मोती की माँ हर्ष या आश्चर्य का कोई चिह्न ढूँढ़े से न पा सकी।

'क्या अपने भैया के बारे में कुछ नहीं बताया ?'

'नहीं तो।'

'वे परसों तो आ ही जायँगे। उनके पास जाने की कोई बातचीत नहीं हुई ?'

'नहीं, भैया के बारे में कोई बातचीतनहीं हुई।'

'जीजी! तुमने स्वयं ही क्यों नहीं कहा?'

'उनसे मैं और सभी चीज माँग सकती हूँ; किन्तु यह मुझसे न हो सकेगा।'

तुम यों ही चली जाना, तुम्हें माँगना न पड़ेगा, इस पर जेठ जी कुछ बोलेंगे भी नहीं।'

एक बात का पता मोती की माँ को भले ही न चल पाया था कि मधुसूदन की अनुकूलता कुमुद को एक संकट सी दीख पड़ती है। इसके बदले मधुसूदन जो कुछ चाहता है, कुमुद से उतना ही चाहने पर भी वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता। उसका हृदय दिवालिया हो गया है। इसी कारण मधुसूदन से दान लेकर कर्ज को बढ़ाने में उसे एक भाँति का सङ्कोच-सा होता है।

कुमुदिनी की इच्छा इस प्रकार हुई कि भैया यदि और कुछ दिन ठहरकर आते तो और भी अच्छा होता।

कुछ देर तक चुप रहने के बाद मोती की माँ ने कहा—'मुझे आज ऐसा जान पड़ता है, मानो जेठ जी बहुत ही प्रसन्न हैं।'

व्याकुलता तथा संशय की दृष्टि से मोती की माँ कुमुद की मुखमुद्रा निहारती हुई बोली—'यह खुशी किसलिए है? मेरी समझ में कुछ नहीं आता, अतएव अब क्या करूँ?'

मोती की माँ ने कुमुदिनी की ठुड्डी पकड़ कर कहा—'कुछ करना नहीं है, तुम इतना भी नहीं समझती। इतने दिनों तक तो वे काम-काज में ही लगे रहे। तुम जैसी देवियों को तो कभी देखा भी नहीं। अब जिस भाँति तुम्हें धीरे-धीरे पहचान रहे हैं, वैसे ही वैसे तुम्हारा आदर कर रहे हैं।'

'बहन, मुझमें ऐसी तो कोई वस्तु नहीं है जो भरपूर देखने पर मुझे ज्यादा पहचानेंगे। मैं इसका स्वयं ही अनुभव करती हूँ कि मेरे भीतर बिलकुल पोल है। वह पोल ही दिन पर दिन खुलती रहेगी। इसी

कारण जब मैंने एकाएक देखा कि मुझपर प्रसन्न हुए हैं तब मुझे विदित हुआ कि वे ठगे गये हैं। उन्हें ज्यों ही पोल का पता लग जायगा वे और भी क्रोध में डूब जायेंगे। वह क्रोध ही तो सच्ची वस्तु है, इसी कारण तो मैं उनसे इतनी डरती नहीं।'

'जीजी! तुम अपनी कीमत क्या जानो! जिस दिन तुम्हारा आना उनके घर पर हुआ है उस दिन से तुम्हारी ओर से जो कुछ दिया गया है, सभी लोग उसे मिलकर चुका नहीं सकते। तुम्हारे लालाजी को तो भाभीजी के वास्ते सागरलङ्घन किये बिना चैन नहीं पड़ता है। तुमसे यदि मैं प्रेम न करती तो शायद इसी बात के ऊपर उनके साथ मेरा झगड़ा भी ठन जाता।'

हँसते हुए कुमुद बोली—'मेरे देवर जो ऐसे मिले हैं मेरे अहोभाग्य!'

'और तुम्हारी जो इस भाँति की यह देवरानी हैं शायद तुम्हें भाग्य की जगह राहु या केतु की भाँति जान पड़ती हैं। क्यों, बात ऐसी ही है न?'

तुम्हारे दोनों नामों से एक नाम लेने से पूरा मतलब हल हो जाता है। उस समय दोनों के नाम लेने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती।'

कुमुद के गले में हाथ डालते हुए मोती की माँ बोली—'तुमसे मेरी एक विनती है।'

'कहो, क्या कहना है?'

'तुम मुझसे 'मन की बात' (बङ्गाल में स्त्रियाँ मित्रता जोड़ते वक्त आपस में इसी भाँति का कोई न कोई प्यारा नाम रख लेती हैं) कहा करो।'

'बहन, हमारी तुम्हारी तो कभी की मित्रता हो चुकी है। 'मन क बात' की कसर जो शेष थी आज पूरी हो गई।'

'अच्छा, तो अब तुम मुझसे कुछ छिपाना नहीं। तुम आज इस

प्रकार का मुँह बनाये क्यों बैठी हो ! यह मुझे कुछ जान नहीं पड़ रहा है।'

मोती की माँ की ओर ध्यान से कुछ देर तक कुमुद देखती रही फिर बोली—'सच्ची बताऊँ, अब मैं अपने से बहुत डरने लगी हूँ।'

'यह कैसी बात, अपना और उससे भी डरना ?'

'मैं अपने को जिस प्रकार की समझ रही थी एकाएक अब आज देखती हूँ कि मैं वैसी नहीं हूँ। मन में सब कुछ ठीक करके निश्चिन्त होकर आई थी। भैया आदि भी जब दुविधा में पड़े मैंने उस समय बबरन नूतन-पथ पर पग आगे को बढ़ाया था। किन्तु जिस आत्मा के बूते पर मैंने हिम्मत बाँधी थी उसका तो अब कहीं नाम निशान भी नहीं जान पड़ता।'

'प्रेम तो तुम्हारा हृदय करना ही नहीं चाहता। अच्छा, मुझसे तुम छिपाना नहीं, सच कहना—क्या तुम किसी से प्रेम करती हो ? प्रेम किस चीज का नाम है, तुम्हें मालूम है ?'

'यदि मैं कहूँ कि हाँ तो तुम हँस पड़ोगी। सूर्य निकलने के पूर्व ही जैसे प्रकाश फूट पड़ता है, मेरे प्रेम ने भी उसी भाँति मेरे हृदय रूपी गगन के प्रकाश से भर दिया था। प्रतिक्षण यही प्रतीत होता था कि सूरज अब उगने ही वाला है। उस सूर्योदय ही की कल्पना को लादकर मैं यहाँ तीर्थ का जल लेकर फूल की डाली सजाकर विराजमान हुई हूँ। इतने दिनों से जिन देवता को मैं पूजती आई हूँ, और सम्पूर्ण हृदय उन्हीं पर लगाती आई हूँ, मालूम हुआ है कि उन्होंने ही मुझे उत्साह दिया। मैं उसी भाँति आई थी, जिस प्रकार से कि अभिसार के लिए जाया जाता है। मैंने अँधेरी रात को अँधेरी न समझा। किन्तु आज उजाले में आँखों के खुलते ही मुझे भीतर कुछ और, बाहर कुछ और ही दिखाई देता है। अब वर्ष के बाद वर्ष और क्षण के बाद क्षण किस भाँति बीतेंगे ?'

'यह तुम्हें क्या सुझाई पड़ रहा है कि तुम जेठजी से प्रेम कर ही

नहीं सकती हो !'

'कर सकती थी। मैं अपने मन में एक ऐसी चीज भर लाई थी कि जिसके कारण समस्त चीजें अपने मन की कर लेना मेरे लिए बड़ा ही सरल था। तुम्हारे जेठ जी ने सर्वप्रथम ही उसे तोड़कर चूर्ण बना डाला है। अब सभी वस्तुएँ कठोर सी बन मुझे सता रही हैं। मानो किसी ने मेरी देह की नरम चमड़ी को घिस-घिस कर उड़ा दिया हो, इसी कारण चारो ओर की सब वस्तुएँ मुझे चुभ-सी रही हैं, मुझे सता-सी रही हैं, मैं जिसे ही छूती हूँ वही वस्तु मुझे चौंका देती है। कुछ दिनों के बाद जब धीरे-धीरे चमड़ी कड़ी पड़ जायगी तब शायद सब कुछ सहने की शक्ति मुझमें आ जाय, मगर जीवन में तो कभी आनन्द पा ही नहीं सकती।'

'यह कैसे कहा जा सकता है !'

'बड़ी ही सरलता से। आज मेरे मन में नाममात्र को भी मोह नहीं रह गया है। मेरा जीवन एकाएक निर्लज्ज की भाँति स्पष्ट हो उठा है। अपने को बहलाये रखने की अब मुझमें कहीं भी गुञ्जाइश नहीं। क्या अब स्त्रियों के लिए मौत के अतिरिक्त और कहीं दूसरी जगह सरक कर बैठने की जगह नहीं रह गई है ? स्त्रियों की दुनिया को क्या निष्ठुर विधाता ने इतना तङ्ग बनाना स्वीकार किया है ?'

मोती की माँ कुमुद के मुँह से इस प्रकार के उत्तेजित वाक्य आज तक और कभी न सुन सकी थी। और वह भी आज के इस ऐसे दिन पर जब कि जेठ जी इतने प्रसन्न हो गये हैं वह कुमुद के इस प्रकार के तीव्र अधैर्य को देख शङ्कित हो गई। उसे ऐसा लगा मानो लता की जड़ में जाकर कुल्हाड़ी लगी हो और जिसे माली ऊपर से अब अनुग्रह के जल से सींच कर उसे फिर हरी नहीं कर सकता।

कुमुद थोड़ी देर रुककर बोली—'मुझे सब मालूम है, जो मैं पति को श्रद्धा के साथ आत्मसमर्पण नहीं कर सकी हूँ वह मेरे वास्ते घोर पाप है किन्तु उस पाप से भी मुझे उतना डर नहीं, जितना प्रेमहीन आत्मसमर्पण

याद करके हो जाता है।'

मोती की माँ से उस समय कोई भी जवाब देते न बन पड़ा। वह नितान्त खोई हुई-सी शान्त होकर बैठी रही। कुछ देर चुप रहने के बाद कुमुद ने फिर कहा—'बहन, तुम भाग्यवान् हो, तुमने न जाने कौन-सा पुण्य किया होगा जिसके प्रभाव से अपने पूर्ण हृदय से देवर जी से तुम प्रेम कर सकी हो। मैं तो पहले यह जानती थी कि प्रेम करना सहज काम है—सभी स्त्रियाँ अपने आप ही प्रेम करती होंगी। किन्तु आज मैं यह देख रही हूँ कि प्रेम कर सकना ही सब से दुर्बल है और वह तो जन्मजन्मान्तर की तपस्या ही से पूरा हो सकता है। अच्छा बहन, सच बताना, क्या सभी स्त्रियाँ अपने स्वामियों से प्रेम करती हैं?'

धीरे से हँसकर मोती की माँ बोली—'प्रेम के बगैर भी अच्छी स्त्री बनने में कोई असम्भव बात नहीं, यदि ऐसा न हो तो संसार चल ही कैसे सकता है?'

मुझको यही भरोसा देती रहो चाहे मैं और कुछ न बन सकूँ किन्तु अच्छी स्त्री तो बनी रहूँ, उसी में पुण्य भी अधिक है और वही कठिन तपस्या भी है।'

'उसमें भी बाहर से विघ्न पड़ा ही करते हैं।'

'उन बाधाओं को अन्तर द्वारा दूर किया जा सकता है और सम्भव है मैं हार न मानकर उसे पूरा कर सकूँ।'

'यदि तुम न कर सकोगी तो और कौन कर सकेगा?'

पानी के वेग के कारण तथा हवा के तेज होने के कारण लैम्प की रोशनी रह-रह कर चौंक-सी पड़ने लगी। एक साथ की ओर से चली हुई हवा मानो भीगे निशाचर पक्षी की भाँति पङ्ख फटफटा कर घर के भीतर घुस आने लगी। कुमुद का मन तथा शरीर सिहर उठा। वह बोली—'मुझे अब अपने देवता के नाम पर बल नहीं प्राप्त हो रहा है। मैं मन्त्र पढ़ती जाती हूँ किन्तु मन के मुँह फेर देने के कारण किसी भी भाँति वह बोल ही नहीं पाता। इसी कारण मुझे भी डर सा प्रतीत

हो रहा है।'

मोती की माँ को बनावटी बात का झूठा भरोसा देना अच्छा न लगा अतएव उसने कोई भी उत्तर न दिया और बढ़ कर छाती से कुमुद को लगा लिया। इसी बीच बाहर से किसी ने पुकारा—मझली बहू!'

कुमुद पुलकित हो बोली—'देवरजी आओ, आओ! भीतर आ जाओ!'

'मुझे घर में शाम की रोशनी नहीं दिखाई पड़ी, इसी कारण ढूँढ़ने निकल पड़ा हूँ।'

मोती की माँ बोली—'बलिहारी है बीबी! बिना मणि के फणि को देखना हो तो देख लो।'

'क्यों बहूरानी! कौन मणि है और कौन फणि है, इस बात का पता फुफकार ही से चल जाता है।'

'देवरजी, मुझे गवाह मत बनाओ।'

'मैं जानता हूँ, इसमें तो मैं ही ठगा जाऊँगा।'

'अच्छा, मैं तो रोकती नहीं, तुम अपनी खोई वस्तु को उठा क्यों नहीं ले जाते?'

'बीबी! खोई हुई वस्तु के लिए वे थोड़े ही बेचैन हैं। वे तो इस बहाने से बहूरानी के चरणों के दर्शन करने आये हैं।'

'बहाने की क्या जरूरत! चरण तो स्वयं अपने ही पकड़ाई में आ चुके हैं। जो सबसे बढ़कर असाध्य हैं, उनके लिए कौन व्यवस्था करेगा? वह जब जाता है तो सहज ही में आ जाता है, मुझसे हजारों लाखों आदमी दुनिया में कहीं भी योग्य हैं, किन्तु ऐसे सुन्दर चरणों को छू सकने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हुआ है, वे तो छू नहीं सके। नवीन का जन्म बिना मूल्य के यों ही सार्थक हो गया।'

'देवर जी! तुम जैसों का कोई ठीक नहीं, न मालूम तुम क्यों ऐसे ही कहा करते हो, तुम अपनी इन्साइक्लोपीडिया से शायद यह ···।'

'बहूरानी, ऐसी बात तुम नहीं कह सकतीं—वे जानें कि चरण का

अर्थ क्या है ! उन्होंने देवियों के पैरों को बकरी के खुर की भाँति पतली एड़ी वाले जूतों में जनानखाने के भीतर कैद कर रखे हैं। भला 'इन्साइक्लोपीडिया' वालों में इतनी सामर्थ्य कहाँ कि वे इन पैरों की महिमा समझ सकें। निर्वासन के चौदह वर्ष लक्ष्मण ने जानकी के पैरों को देखते ही व्यतीत कर दिये थे। इसका अर्थ हमारे देश के देवरों के अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं समझ सकता। यदि तुम पैरों को साड़ी द्वारा ढक देती हो तो ढक दो, इसमें डरने की कोई बात नहीं। रात के वक्त पद्म बन्द ही रहता है, उसकी पङ्खुड़ियाँ तो फिर खुलती हैं।'

'भई, मन की बात!' देवर जी ने शायद इसी भाँति स्तुति करके तुम्हारे मन को मोहा होगा ?'

'जीजी, तुम्हारी बातें अजीब होती हैं! ये वैसे आदमी ही नहीं जो व्यर्थ ही मीठी-मीठी बातों का अपव्यय करते फिरें।'

'शायद स्तुति की आवश्यकता न पड़ती होगी ?'

'बहूरानी, देवियों की स्तुति की भूख तो किसी भी भाँति मिट नहीं सकती, इसकी उन्हें जरूरत है किन्तु शिव की तरह मैं पञ्चानन थोड़े ही हूँ। अब उनके लिए केवल एक मुँह की स्तुति तो पुरानी पड़ गई है, अतएव अब देवी को उसमें रस नहीं मिलता।'

मुरली बैरा ने इतने ही में आकर नवीन से अर्ज की—'आपको ऑफिस में राजा साहब याद कर रहे हैं।'

नवीन का मन यह सुनते ही खराब हो गया। उसने सोचा था कि भाई साहब आज ऑफिस से आकर सीधे ऊपर के कमरे में ही आवेंगे किन्तु फिर भी जान पड़ता है नाव किसी टापू में ही लग गई।

मोती की माँ नवीन के चले जाने पर धीरे से बोली—'किन्तु तुम इस बात को याद रखना—जेठ जी तुम्हें बहुत प्यार करते हैं।'

कुमुद ने कहा—'यही तो मुझे आश्चर्य मालूम देता है।'

'क्या कहती हो! क्या तुम्हें प्यार करना कोई आश्चर्य है ? क्या वे पत्थर के हैं ?'

'मैं उनके योग्य नहीं हूँ।'

'जिनके योग्य तुम नहीं हो, भला वे पुरुष कहाँ हैं ?'

'उनमें कितनी शक्ति है, चारो ओर कितना मान है, कितनी पक्की श्रेष्ठ बुद्धि है, वे कितने बड़े आदमी हैं। वे मुझसे क्या पा सकते हैं ? मैं कच्ची हूँ, इस बात को दो ही दिन में मैं समझ गई हूँ। इसी कारण उनका प्रेम करना मेरे लिए डर उत्पन्न करता है। मैं अपने में तो कुछ पाती ही नहीं हूँ। मैं इतनी बड़ी पोल को लेकर उनकी किस भाँति सेवा करूँ ? रात्रि के समय कल सोचने लगी—मैं एक बैरङ्ग लिफाफे की भाँति हूँ, मुझको प्राप्त करने के लिए पैसे खर्च करने पड़े हैं। उस लिफाफे के खुलते ही मैं पकड़ी जाऊँगी क्योंकि उसके भीतर चिट्ठी भी तो नहीं है।'

'तुम्हारी बातों के ऊपर तो जीजी, मुझे बड़ी हँसी आती है, यद्यपि मैं इसे मानती हूँ कि जेठ जी का बड़ा भारी कारबार है, उनकी व्यापार बुद्धि इस समय बढ़ी-चढ़ी है किन्तु क्या तुम उनकी मैनेजरी करने के लिए आई हो, जो अयोग्य होने पर डर रही हो ? अगर जेठ जी मन ही मन बात को खोलकर कहें तो इसमें असत्य नहीं कि शायद वे भी तुम्हारे योग्य न हों !'

'मुझसे इस बात को तो उन्होंने कही थी।'

'इस पर क्या तुम्हें विश्वास नहीं हुआ ?'

'नहीं, मुझे तो इसके प्रतिकूल डर-सा मालूम हुआ था, मैं समझी कि शायद वे इस विषय में गलती पर हों और वह भूल कभी न कभी पकड़ी जायगी।'

मुझे यह तो बताओ कि तुम इस भाँति क्यों सोचने लगीं ?'

'अच्छा सुनो, यह जो एकाएक मेरा विवाह हुआ इसे मैंने अपने ही से रच डाला, किन्तु किस प्रकार के अद्भुत मोह तथा किस प्रकार के लड़कपन से उस दिन जिस बात ने मुझे भुला रखा था, उसमें तो सब कुछ पोल ही पोल थी। किन्तु फिर भी ऐसा दृढ़ विश्वास और ऐसी

विलक्षण बात थी कि उस दिन कोई भी मुझे रोक नहीं सकता था। भैया को निश्चित रूप से यह मालूम था, इसी कारण व्यर्थ में उन्होंने कोई भी बाधा न दी, किन्तु कितने डरे थे, कितने उद्विग्न हुए थे, मैं क्या यह सब न समझती थी? इन सब बातों को समझने के बाद भी मैंने जिद न छोड़ी थी। सो मैं इतनी बड़ी नासमझ हूँ। मैं आज से सर्वदा कष्ट ही पाऊँगी और कष्ट दूँगी और मन में प्रतिदिन यही समझूँगी कि यह सब कुछ मेरा ही बनाया हुआ है।'

मोती की माँ यह कुछ भी न समझ सकी कि वह क्या कहे, किन्तु फिर भी कुछ देर शान्त रहने के बाद वह बोली—'अच्छा बीबी, तुमने इस बात का निश्चय क्या सोच कर किया था कि मुझे अभी ब्याह करना है?'

'तब तो मुझे निश्चित्त रूप से यही मालूम था कि पति चाहे भला हो, चाहे बुरा, स्त्री के सतीत्व गौरव के प्रमाण के लिए वह एक उपलक्ष्य मात्र है। मैं इस विषय पर तनिक भी सन्देह न कर सकी थी कि प्रजापति ने जिसे स्वामी निश्चित कर दिया है, मैं उसी को प्रेम करूँगी। मैंने लड़कपन में केवल अपनी माँ ही को देखा है, पुराण में पढ़ा है—कितनी ही कथाएँ सुनी हैं। मुझे मालूम हुआ कि शास्त्र के अनुसार अपने को चलाना बड़ी ही सरल-सी बात है।'

'बीबी! उन्नीस वर्ष की कुमारी के लिए तो शास्त्र लिखे नहीं गये हैं?'

'मेरी समझ में केवल आज ही यह आ सका है कि यह प्रेम संसार में एक ऊपरी दिखावा है। धर्म को साथ लिये तथा प्रेम को अलग रख संसार-रूपी समुद्र में बहाना पड़ेगा। धर्म यदि सरस होकर फल-फूल न भी दे तो कम से कम वह सूखा बनकर उसे बहाता तो रहे।'

और बातों को मोती की माँ स्वयं न कहकर कुमुद के मुँह से ही कहलवाने लगी।

चवालीसवाँ परिच्छेद

ऑफिस में पहुँचने पर मधुसूदन ने सुना कि वहाँ की खबर अच्छी नहीं है। मद्रास का कोई बड़ा बैङ्क फेल हो गया है और वह भी ऐसा जिसके साथ कि उसका व्यापारिक सम्बन्ध था। इसके बाद सुना कि किसी डाइरेक्टर की ओर से कुछ कर्मचारी बिना मधुसूदन को आगाह किये ही रजिस्टर वगैरह देख रहे हैं। तब तक किसी में यह साहस न था कि कोई मधुसूदन पर सन्देह कर सकता। एक ज़रा-सा इशारा करने पर ही मानो जैसे कोई एकाएक मन्त्र की शक्ति-सी छूट गई। बड़े कामों में छोटी गलतियों का पकड़ना बड़ा ही सरल है। मातबर सेनापति फुटकर हारों में ही कुछ मिलाकर अधिक जीतते हैं। मधुसूदन सदैव ही से इस प्रकार की जीत में रहा है अतएव इसी कारण चुन-चुन कर उन हारों पर किसी की नजर ही नहीं गई। किन्तु यदि चुन-चुन कर उन्हें एक लिस्ट का रूप दिया जाय और उसे साधारण लोगों के सामने रखा जाय तो वे सदैव अपनी ही बुद्धि की डींग मारा करते हैं। वे कहते हैं, यदि हम होते तो इस भाँति की गलती कदापि न होती। उन्हें यह कौन समझावे कि मधुसूदन एक टूटी हुई नौका के सहारे पार उतर रहा है, नहीं तो उसका पार लगना भी असम्भव ही था और सत्य बात तो यह है कि वह नौका किनारे तक पहुँच गई। आज इस समय जब कि नाव पानी से बाहर की गई है उसके छेदों पर विचार करने से उन लोगों के तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं जो कुशलपूर्वक घाट से अलग रह गये हैं। इस भाँति के टुकड़ों से बिखरी समालोचना द्वारा अनाड़ियों को चकमा देना आसान काम है। सम्भवतः अनाड़ियों को सदैव कुछ न कुछ मुनाफा पा जाने ही

की इच्छा रहती है, उन्हें विचार करना क्या मालूम ! किन्तु यदि कहीं वे विचार करने बैठ जायें मामला भयङ्कर बन जाता है। इन सभी मूर्खों के ऊपर मधुसूदन को बड़ा क्रोध आया, जिसमें कि अवज्ञा मिली हुई थी। मगर जहाँ बेवकूफों की संख्या अधिक है, वहाँ उनके साथ समझौता किये बिना दूसरी गति ही नहीं। पुरानी सीढ़ी चरचराती, डगमगाती और टूट जाने ही का डर दिखाती है। अतएव उस पर पैर रख कर चढ़ने वाला सदैव उसकी रक्षा करने का भार अपने ऊपर लेता है। क्रोध तो उसे इस भाँति आता है कि एक लात मारे और उसके खण्ड-खण्ड हो जायँ किन्तु इससे विपत्ति के बढ़ जाने के अतिरिक्त और कोई लाभ भी तो नहीं है।

सिंहनी को जिस भाँति अपने बच्चे पर आफत आई देखकर उस समय शिकार का सम्पूर्ण लोभ विलीन हो जाता है, उस समय मधुसूदन के मन की अवस्था व्यापार के सम्बन्ध में वैसी ही है। यह तो उसकी अपनी निजी सृष्टि है, उसके ऊपर उसका जो दर्द है वह पूर्णरूप से रुपयों का दर्द नहीं है। जिसमें रचना-शक्ति है वह सदैव अपनी ही रचना में अपने को पाता है। इतना सब प्राप्त कर चुकने पर भी जब आफत मालूम होती है तो उसके लिए जीवन की समस्त कामनाएँ तथा सुख-दुख तुच्छ हो जाते हैं। प्रबलता से कुमुद ने उसे कुछ दिनों से अपनी ओर आकर्षित किया था किन्तु वह आकर्षण आज एकाएक ढीला पड़ गया। जिन्दगी में प्रेम की आवश्यकता को मधुसूदन ने प्रौढ़ आयु में बड़ी तेजी से अनुभव किया था। असमय में जब यह उपसर्ग दीख पड़ता है तो व्यग्रता का आना कोई असम्भव बात नहीं होती। मधुसूदन को कुछ कम चोट न लगी थी, किन्तु आज उसकी वह सब पीड़ा न जाने कहाँ छिपी है।

घर के भीतर प्रवेश करते ही मधुसूदन ने नवीन से पूछा—'क्या तुम यह बता सकते हो कि मेरी प्राइवेट जमा खर्च की बही बाहर किसी आदमी के हाथ लग गई थी ?'

चौंककर नवीन बोला—'यह कैसी बात है !'

'इस बात का तुम्हें पता लगाना होगा—खजाञ्ची के पास कोई

आदमी आता-जाता है या नहीं?'

'रतिकान्त तो विश्वासी आदमी है। क्या वह कभी...।'

'उसके बेजाने मुहर्रिरों से कोई बातचीत चला रहा है, इसी कारण सन्देह उत्पन्न हो रहा है अतएव बड़ी सावधानी से इसका पता लगाना है कि इसमें किन-किन लोगों का हाथ है।'

नौकर ने पहुँचते ही कहा—'रसोई ठण्डी होती जा रही है।' उसकी बात पर कोई ध्यान न देकर मधुसूदन नवीन से कहता गया—'हमारी गाड़ी को जल्दी तैयार करने के लिए कह दो।'

नवीन बोला—'क्या खाकर नहीं जाओगे? रात हो गई है।'

'जरूरी काम है, बाहर ही खा-पी लूँगा।'

सिर झुकाये हुए नवीन कुछ सोचते हुए बाहर निकल गया। सम्भव है कि उसकी चली हुई चाल भी अब खुल जाय।

मधुसूदन ने एकाएक फिर नवीन को बुलाया और कहने लगा—इस चिट्ठी को कुमुद को दे आओ।'

विप्रदास की लिखी हुई चिट्ठी नवीन ने पहचान ली। यह भी समझ गया कि चिट्ठी आज सवेरे ही आई है। कुमुद को अपने हाथ से देने के लिए ही इन्होंने इसे शाम तक रोक रखा था। इसी भाँति हरबार मिलने के लिए कुछ अर्घ्य हाथ में ले चलने की इन्हें इच्छा रहती है। ऑफिस के काम में आज सहसा तूफान उठ खड़ा होने के कारण ही इनका यह प्रेम का उपहार बीच ही में डूब गया।

लोगों को मद्रास के बैंङ्क फेल हो जाने पर पूरा विश्वास था। उसके साथ घोष कम्पनी का जो सम्बन्ध है उसके विषय में हिस्सेदारों या अध्यक्षों में से किसी के भी मन में कोई बात न खटकती थी। मशीन के बिगड़ते ही सब कहने लगे—मुझे यह शुरू से ही मालूम था—इत्यादि।

गहरी चोट के समय जब कि एक साथ कोशिश करके व्यवसाय की व्यवस्था करने की जरूरत होती है, उसी समय हारने के बारे में इल्जाम

का लगाना तेज पड़ जाता है। और जिन पर किसी से डाह या ईर्ष्या होती है, उन्हें जेरबार करने का प्रयत्न व्यापार को और भी बर्बाद कर देता है। मधुसूदन इसे जानता था कि इस भाँति की कोशिश अवश्य की जायगी। निश्चित रूप से यह जानने का वक्त तो अभी आया ही नहीं कि मद्रास बैङ्क के फेल हो जाने पर घोष कम्पनी को कितना नुकसान पहुँचेगा। किन्तु इसमें सन्देह करने की कोई बात नहीं कि मधुसूदन की प्रतिष्ठा को भङ्ग करने में यह भी एक मसाले ही का काम देगा। अब कुछ भी हो किन्तु दिन अब अच्छे नहीं, अब और किसी बात का खयाल न करके मधुसूदन को इसी के लिए कमर कसनी चाहिए।

मधुसूदन से रात के वक्त बातचीत हो जाने के बाद नवीन ने घर आकर देखा कि कुमुद के साथ अभी तक मोती की माँ की बातचीत हो रही है। नवीन बोला—'बहुरानी, तुम्हारे भैया की चिट्ठी आई है।'

चौंककर कुमुद ने चिट्ठी हाथ में ले ली। खोलते हुए उसके हाथ काँपने लगे। वह इस बात से डर गई कि शायद कोई अप्रिय समाचार न हो। कदाचित् इसमें यह न लिखा हो कि उनका आना अभी न होगा। बहुत धीरे-धीरे लिफाफा खोला, चिट्ठी निकाली, उसे पढ़ा—जरा देर चुप रहने से उसके चेहरे से यह साफ जान पड़ने लगा कि उसके हृदय में कहीं अवश्य चोट लगी है। वह नवीन से बोली—'आज तीन बजे भैया कलकत्ते आ गये हैं।'

'आज ही आ गये! उनकी तो...।'

'चिट्ठी में यही लिखा है कि दो-एक दिन में आने की बात थी, किन्तु किसी विशेष कारण से पहले ही चला आना पड़ा।'

कुमुद और कुछ न कह सकी। चिट्ठी के अन्त में लिखा था—'जरा अपनी तबीअत के ठीक होते ही मैं तुमसे मिलने आऊँगा। तुम्हें चाहिए कि तुम इसके लिए घबड़ा न जाना।' पहले की चिट्ठी में भी यही बात लिखी हुई थी। क्यों, हुआ क्या है! कुमुद का ऐसा कौन-सा भारी पाप है! एक भाँति से तो साफ-साफ यही कह देना है कि तुम हमारे घर न आना

उस समय कुमुद के मन में इस प्रकार की बात आई कि वह जमीन के ऊपर धूल में जरा लेटकर रो ले। किन्तु सहसा उठे हुए आवेग की लहर को रोक वह प्रस्तरमूर्ति की भाँति कठोर होकर बैठी रही।

नवीन को इसे समझने में तनिक भी देर न लगी कि चिट्ठी में कुछ न कुछ कड़ी बात अवश्य ही है। कुमुद के चेहरे को देख उसका मन करुणा से व्यथित होने लगा। वह बोला—'उनके पास तो बहूरानी तुम्हें कल ही जाना चाहिए।'

अपने मुँह से वह 'नहीं, मैं नहीं जाऊँगी' कह तो गई; किन्तु उसके बाद उससे न रहा गया। वह दोनों हाथों से मुँह ढककर रोने लगी।

उस समय कोई भी प्रश्न न करके मोती की माँ ने कुमुद को छाती से लगा लिया। कुमुद रुँधे हुए गले से बोली—'मुझे भैया ने आने के लिए रोक दिया है।'

नवीन ने कहा—'नहीं बहूरानी, ऐसा कदापि नहीं हो सकता, समझने में तुमने अवश्य भूल की है।'

तेजी से सिर को हिलाते हुए वह बोली—'नहीं, मैंने तनिक भी भूल नहीं की है।'

नवीन ने कहा—'अच्छा, क्या मैं यह बताऊँ कि तुमने गलती कहाँ पर की है? विप्रदास बाबू के ध्यान में यह बात पूर्णतया आ गई है कि तुम्हें भाई साहब वहाँ भेजना पसन्द न करेंगे। इसी कारण कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें अपमानित होना पड़े, उन्होंने तुम्हें बुलाने का प्रयत्न नहीं किया। पीछे तुम्हें कष्ट न पहुँचने देने तथा तुम व्यथित न हो इस कारण कुछ विचार करते हुए तुम्हें बचाने के लिए उन्होंने अपनी ओर से तुम्हारे रास्ते को साफ कर दिया है।'

क्षण-मात्र के लिए कुमुद आनन्द का अनुभव करने लगी। आँसुओं से भीगी आँख की पलकों को नवीन के मुख की ओर फेर प्रेम भरी नजर से देखने लगी। उसे नवीन की बातों पर तनिक भी सन्देह न हुआ, उसने नवीन की बात पूर्णरूप से सत्य ही मानी। क्षण-मात्र ही में भैया

के प्रगाढ़ स्नेह को समझने में उससे जो त्रुटि हुई है इस पर उसने अपने को मन ही मन धिक्कारा। उसका हृदय एक प्रकार से बल का अनुभव करने लगा। वह अभी ही भैया के पास दौड़कर यद्यपि न पहुँच जायगी किन्तु उनके आने की प्रतीक्षा तो वह अवश्य ही करेगी यह तो और भी अच्छा है।

ठोढ़ी से हाथ लगाकर मोती की माँ ने कुमुद का मुँह ऊपर को उठाया और बोली—'ओफ! भैया की बात की जरा सी चर्चा चली नहीं कि एकदम से अभिमान का समुद्र उमड़ पड़ा।'

नवीन ने कहा—'अच्छा, तो बहूरानी! तुम यह बताओ कि कल तुम्हारे चलने की तैयारी करूँ न?'

'नहीं, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।'

'क्यों, आवश्यकता कैसे नहीं, तुम्हें नहीं तो न सही, मगर मुझे तो है।'

'तुम्हें किस बात की आवश्यकता है?'

'वाह! हमारे भैया को तुम्हारे भैया जैसा कुछ समझेंगे हम वैसा ही समझ लेने देंगे। मैं अपने भैया की ओर से उनसे लड़ूँगा। मैं तुम्हारे मुकाबले में उनसे हार नहीं मान सकता। तुम्हें कल उनके यहाँ जरूर ही जाना पड़ेगा।'

इस पर कुमुद हँसने लगी।

'बहूरानी, इसे मजाक की बात मत समझो। मेरे घराने की अपकीर्ति से तुम्हारे गौरव में न्यूनता आती है। हाथ मुँह धोकर अब तुम जाओ; क्योंकि अभी भोजन करना है। आज तो मैनेजर साहब के यहाँ भाई साहब का निमन्त्रण है। मेरे विचार से आज वे भीतर सोने भी न आयेंगे क्योंकि मैं देख आया हूँ उनके बिस्तरे बाहर ही के कमरे में लगे हुए हैं।'

कुमुद को इस समाचार के मिलने पर मन ही मन कुछ आराम-सा मिला। किन्तु आराम के मिलने पर उसके क्षण ही भर बाद उसे शरम

सी मालूम होने लगी।

रात्रि में सोते वक्त नवीन से मोती की माँ ने कहा—'तुमने तो जीजी को धैर्य बँधा दिया, किन्तु अब···?'

'किन्तु अब क्या! नवीन के जबान और काम एक से हैं। अब तो बहूरानी को जाना ही पड़ेगा, बाद में जो होगा सो देखा जायगा।'

नये बने हुए राजाओं को अपने परिवार के सम्मान का बहुत ही तेज ज्ञान होता है। यह पूर्णरूप से वह समझ लेते हैं कि विवाह हो चुकने के पश्चात् नववधू अपने पुराने पद से बहुत ऊँचे पर पहुँच चुकी है अतएव उसके मायके की नामावली एक बला है इस बात को भुला देने में ही भलाई है। ऐसी अवस्था में यदि दोनों ओर रक्षा न की जा सके तो कम से कम एक ओर की रक्षा तो करनी ही चाहिए। नवीन ने अपने मन में इस बात का निर्णय कर लिया है कि वह 'ओर' कौन-सी है। कुछ दिनों पूर्व उसके मन में यह बात स्वप्न में भी न आ सकती थी कि जिस जगह भाई साहब का पूर्ण अधिकार है, उस जगह भी वह भाई साहब के साथ किसी दिन लड़ाई की हिम्मत कर सकेगा।'

परामर्श करके उन पति-पत्नी ने यही निश्चय किया कि प्रस्ताव मधुसूदन के समक्ष रखा जाय कि कल प्रातःकाल केवल एक बार कुमुद विप्रदास के पास जाकर उनसे भेंट कर आवे। यदि भाई साहब इस पर सहमत हुए और कुमुद वहाँ जाने पाई तो मैं इस प्रकार का कोई न कोई बहाना अवश्य ही बना लूँगा कि जिससे कुमुद को दो-चार दिन वहाँ रुक जाने में कोई कठिनाई न पड़े।

बहुत रात बीते कागज-पत्रों के बण्डल को सँभालते मधुसूदन घर पहुँचा। नवीन ने झाँककर देखा कि भाई साहब सोने का प्रयत्न करके नाक पर चश्मा लगाये हाथ में नीली पेंसिल लिये ऑफिस रूम की टेबिल के ऊपर किसी दस्तावेज पर निशान लगा रहे हैं और साथ-साथ पास की रखी नोटबुक में अवसर अवसर पर कुछ नोट भी करते जाते हैं।

साहस के साथ नवीन कमरे में घुस पड़ा और बोला—'भाई साहब,

क्या मैं भी तुम्हारी कुछ मदद कर सकता हूँ ?'

संक्षेप में मधुसूदन बोला—'नहीं।' वह खुद ही व्यापार के इस सङ्कट को पूर्णरूप से समझ लेना चाहता है, सभी बातों के ऊपर उसकी नजर का जाना जरूरी है। वह इस काम में दूसरों की नजर से काम करना अपने को कमजोर बनाने के समान समझता है।

कुछ कहने का बहाना न पाकर नवीन वहाँ से वापस लौट आया। साथ ही उसके मन में यह बात भी जम गई कि जल्द ही कोई दूसरा मौका भी सम्भव नहीं। नवीन ने प्रतिज्ञा-सी कर ली है कि कल वह तड़के ही बहूरानी को भेज देगा अतएव आज रात ही में उसके लिए राय ले लेनी चाहिए।

कुछ देर बाद नवीन ने भाई साहब की टेबिल पर एक लैम्प रखते हुए कहा—'रोशनी बहुत कम थी।'

इस दूसरे लैम्प के पहुँचने से मधुसूदन ने अपने सुभीते का अनुभव किया परन्तु इस बहाने से भी नवीन भाई साहब से कुछ बातचीत न सका और उसे विमुख होकर लौट आना पड़ा।

इसके बाद नवीन ने चिलम में तमाखू भर सुलगाई और उसे गुड़-गुड़ा पर रख मधुसूदन के अभ्यास के अनुसार उसे चौकी के बाईं ओर धीरे से सरकाकर उसकी नजी टेबुल पर रख दी। मधुसूदन ने इस समय इसकी भी जरूरत महसूस की थी। उसने क्षण भर के लिए पेंसिल रख दी और हुक्का पीने लगा।

नवीन ने उपयुक्त अवसर पाकर बात चलाई—'भाई साहब, क्या सोने नहीं जाओगे ? रात अधिक जा चुकी है। तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी बहूरानी शायद अभी जाग रही होगी।'

'बैठी अभी जाग रही होगी।' यह बात सुन मधुसूदन के कलेजे में तीर की भाँति जाकर चुभी। मानो पानी की लहर के ऊपर डगमगाते हुए चलते जहाज की मस्तूल पर एक छोटी-सी चिड़िया आकर बैठ गई हो। क्षण भर के लिए क्षुब्ध समुद्र के भीतर मानो एकान्त श्याम रङ्ग के

द्वीप की वन छाया का दृश्य सामने आकर उपस्थित हो गया, किन्तु जहाज को चलाना ही होगा। इन सब बातों के ऊपर ध्यान देने का अवसर नहीं। मधुसूदन अपने मन की तुच्छ-सी चञ्चलता के कारण डर गया। उस क्षण केवल यही कह दिया—'बड़ी बहू से कहा दो जायँ, मैं आज बाहर ही सोऊँगा।'

'यदि कहो तो उन्हें यहीं भेज दूँ।' यह कहकर नवीन गुड़गुड़ी की चिलम फूँकने लगा।

झुँझलाकर मधुसूदन बोला—'नहीं, नहीं।'

इन सब बातों से विचलित होकर नवीन फिर कहने लगा—'वे तुम्हारे सङ्ग दरबार करने के लिए बैठी जो हैं!'

रुद्ध कण्ठ से मधुसूदन बोला—'अभी दरबार करने योग्य वक्त नहीं।'

'भाई साहब! तुम्हारे पास समय नहीं किन्तु उनके पास भी समय थोड़ा-सा ही है।'

'क्या कहा, क्या कहा?'

'खबर यह मिली है कि विप्रदास कलकत्ते आये हैं इसी कारण कल प्रातःकाल बहूरानी···।'

'प्रातःकाल जाना चाहती हैं?'

'अधिक दिनों के लिए नहीं, केवल एक बार जा···।'

'जोर से हाथ हिलाते हुए मधुसूदन बोला—'जाती क्यों नहीं, भाई कह दो जायँ, बस कह दो चली जायँ, हटो अब यहाँ से, जाओ।'

हुक्म तामील हुआ नहीं कि नवीन नौ दो ग्यारह हुआ, किन्तु कुछ ही दूर गया होगा कि मधुसूदन की आवाज सुन पड़ी—'नवीन···!'

इस बात से कि हुक्म का आर्डर रद्द न कर दिया जाय वह काँप उठा। ज्यों ही कमरे के अन्दर आया मधुसूदन ने कहा—'अभी कुछ दिनों बड़ी बहू अपने भैया के यहाँ जाकर रहेंगी, अतएव सब प्रबन्ध तुम कर देना।'

नवीन को डर लगा कि भाई साहब के इस प्रस्ताव पर उसका चेहरा कहीं प्रफुल्ल न हो उठे। इसी कारण वह द्विधा का भाव-सा दिखाता

सिर खुजलाने लगा और बोला—'बहू रानी के चले जाने पर घर सूना-सा दीख पड़ेगा।'

पेचवान की नली मुँह में लगा कोई जवाब न देकर मधुसूदन अपने काम में लग गया। प्रलोभन का रास्ता अभी खुला है, इसे उसे समझते देर न लगी।

प्रसन्न होकर नवीन लौट गया। मधुसूदन का काम होता रहा किन्तु उसके मन में काम की धारा विलीन होकर मानस-धारा में परिणत हो गई। वह नीली पेंसिल को रोककर बैठ गया और हुक्के की नली मुँह में पहुँची। दिन के समय मधुसूदन ने जब यह सोच लिया था कि अब अपने को एकाधिपत्य का अधिकारी मानता हूँ तब रात में उसे वह एकाधिपत्य अखरा। रात के बीतते उसे ज्ञात होने लगा, अभी शत्रु दुर्ग छोड़कर भागा नहीं बल्कि कोठरी में दुबका हुआ बैठा है।

वर्षा थम गई है। कृष्णपक्ष का खण्डचन्द्र शीशम के पेड़ के ऊपर आकाश में चढ़कर धरती विह्वल कर रहा है। ठण्डी हवा डोल रही है। उसके हृदय में आया कि वह रजाई के भीतर किसी गरम कोमल वस्तु का स्पर्श करे। नीली पेंसिल को जोर से दबाकर वह रजिस्टरों के ऊपर झुक पड़ा। किन्तु उसके मन में—'बहूरानी जाग रही होगी' यह बात खटकने लगी।

एक खास काम मधुसूदन आज पूरा करके ही रहेगा, ऐसी उसने प्रतिज्ञा कर ली थी। यदि वह कल सवेर भी पूरा होता तो कुछ त्रुटि न थी मगर प्रतिज्ञा जो उसने कर ली थी। यदि उसकी प्रतिज्ञा कहीं भङ्ग हो गई तो वह स्वयँ अपने को कैसे माफ कर सकेगा। उसने अपने धर्म की रक्षा अब तक बड़ी कठोरता के साथ की है जिसका फल भी उसे अच्छा मिल चुका है किन्तु इधर कुछ दिनों से दिन वाले मधुसूदन के साथ रातवाले मधुसूदन का सुर नहीं मिलता। वह इस भाँति जैसे वीणा के दो तार हों! डेस्क के ऊपर दृढ़ प्रतिज्ञ मधुसूदन को झुके काम करते अधिक रात बीत गई। उसी बीच उस प्रण की एक सन्धि में से एक-एक युक्ति भौंरे की भाँति भनभनाने लगी—'बहूरानी बैठी अभी

आभा रही होगी।'

बिना बत्ती बुझाये, कागजों और रजिस्टरों को बिना समेटे ही उठ कर वह अपने सोने के कमरे की ओर चल पड़ा। अन्तःपुर में तिमंजिले पर जाने वाले रास्ते में जो आँगन को घेरे हुए बरामदा है वहीं रेलिङ्ग के किनारे श्यामासुन्दरी बैठी हुई थी। शरच्चन्द्र उस समय आकाश में था, रोशनी के कारण श्यामा की अनुपम कान्ति झलक रही थी। वह किसी उपन्यास के भीतर की तसवीर-सी दीखती थी। अर्थात् यह सदैव की-सी नारी नहीं है वह अति निकट से मानो दूर जा पड़ी है। उसे यह मालूम है कि इसी रास्ते से मधुसूदन सोने के कमरे में जाता है। जाने का वह दृश्य उसके हृदय में एक टीस-सी उत्पन्न कर देता है इसी कारण उसका आकर्षण अतिप्रबल है। वेदना से अपने कलेजे को छलनी कर डालने का पागलपन ही उसकी इस प्रतिज्ञा का कारण नहीं, बल्कि उसमें एक आशा भी है। कदाचित् क्षण भर के लिए कुछ हो भी जाय। असम्भव शायद सम्भव हो जाय इसी आशा से रास्ते के किनारे बैठकर वह जागती है।

उसकी ओर एक नजर फेरकर मधुसूदन ऊपर चला गया। अपने ऊपर क्रोध कर श्यामा रेलिङ्ग पकड़कर उस पर अपना सिर धुनने लगी।

मधुसूदन ने ऊपर सोने के कमरे में पहुँचकर देखा—कुमुद जाग नहीं बल्कि सो रही है, घर में अँधेरा फैला है। गुसलखाने के आधे खुले दरवाजे से थोड़ा-सा प्रकाश आ रहा है। उसके मन में आया कि वह जाय किन्तु ऐसा न कर सका। उसने गैस बत्ती जला दी। सुख की नींद में कुमुद रजाई ओढ़े बिस्तर पर पड़ी सो रही है, बत्ती जलाने पर भी उसकी नींद न खुली। इस सुखनिद्रा पर मधुसूदन को क्रोध आया, बड़ी ही अधीरता के साथ मसहरी उठाकर धम्म से पलङ्ग के ऊपरर जा बैठा। पलग चरमरा उठा।

कुमुद चौंककर उठ बैठी। उसे यह मालूम था कि आज राजा साहब नहीं आवेंगे किन्तु एकाएक उन्हें देखकर उसके चेहरे पर एक ऐसा भाव झलक आया जिसे देखकर मधुसूदन का हृदय उल-सा उठा। उसके माथे में खून-सा जम गया। कहने लगा—'तुम मुझे किसी भी भाँति बरदाश्त

नहीं कर सकती।'

इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर उसकी समझ में कुछ भी न आ सका। मधुसूदन को देखकर आतङ्क से सचमुच ही उसका कलेजा काँप उठा। वह सावधान न रह सकी, जिस भाव को वह अपने से भी सदैव छिपा कर रखना चाहती है उसकी प्रबलता को वह स्वयं पूर्णरूप से नहीं जानती, वह अपने को अचानक प्रकाश कर बैठा।

दाँत पीसकर मधुसूदन बोला—'क्यों, भाई के निकट पहुँचने के लिए जी तड़फड़ा रहा है?'

इसी बीच कुमुद उसके पैरों पड़ने जा रही थी, किन्तु उसके मुँह से भैया शब्द निकलते ही वह कठोर बन बैठी। बोली—'नहीं।'

'तुम जाना नहीं चाहती?'

'नहीं, मैं नहीं जाना चाहती।'

'तुमने नवीन को फिर मेरे पास दरबार करने को क्यों भेजा?'

'उसको मैंने नहीं भेजा।'

'भैया के पास जाने की बात तो तुमने उससे कही थी न!'

'नहीं, मैंने उससे यही कहा था कि मैं भैया के पास न जाऊँगी।'

'क्यों?'

'यह मुझे मालूम नहीं।'

'मालूम नहीं! फिर वही तुमने नूरनगर की चाल शुरू की!'

'आखिर मैं हूँ नूरनगर की लड़की।'

'जाओ, तुम उन्हीं के यहाँ जाओ। यहाँ के योग्य तुम नहीं हो। मेहरबानी की थी किन्तु कद्र न जानी। अब पछताना होगा।'

प्रस्तर-मूर्ति की भाँति बिना कोई जवाब दिये ही कुमुद बैठी रही। जोर से कुमुद के हाथ को झकझोरते हुए मधुसूदन बोला—'क्षमा भी माँगना नहीं जानती!'

'किस लिए?'

'मेरे इस बिस्तर पर जो तुम लेट सकी हो, इसलिए।'

तत्क्षण ही कुमुद बिस्तर पर से उठकर बगलवाले कमरे में चली गई।

मधुसूदन भी बाहर निकल खड़ा हुआ, बरामदे में पहुँचकर मधुसूदन ने देखा कि श्यामा औंधी पड़ी हुई है। वह उसे उठाने को बढ़ा। बोला—'श्यामा ! क्या कर रही हो ?' सुनते ही श्यामा झट उठकर बैठ गई। मधुसूदन के पैरों को छाती से लगाकर गद्‌गद् कण्ठ से बोली—'तुम मुझे मार डालो।'

हाथ पकड़कर मधुसूदन ने उसे खड़ी कर दिया। बोला—'अरे, तुम्हारी देह तो बिलकुल ठण्डी हो रही है, चलो, तुम्हें सुला आऊँ।' यह कहता हुआ दुशाला ओढ़कर उसका दाहिना हाथ अपनी कमर से दबाकर उसके कमरे में ले गया। धीरे से श्यामा बोली—'ज़रा बैठोगे नहीं ?'

मधुसूदन बोला—'मुझे बड़ा ज़रूरी काम है।'

रात में न मालूम कहाँ का भूत सवार हो गया है जो मधुसूदन के काम को चौपट कर देना चाहता है, बस, अब नहीं ! वह इतना तो समझ ही गया, कि कुमुद की ओर से उसकी जो उपेक्षा हुई है, उस क्षति-पूर्ति का भण्डार और कहीं भी है। प्रेम के अन्दर मनुष्य अपनी जो बड़ी कीमत समझता है, आज अनुभव करने की ज़रूरत मधुसूदन को आ पड़ी थी। श्यामा सम्पूर्ण जीवन और मन से उनकी प्रतीक्षा किये हुए है। मानो इस सान्त्वना को प्राप्त कर मधुसूदन में काम करने का दूना उत्साह पैदा हो गया जिस अपमान का काँटा उसके हृदय में चुभ रहा है उसकी पीड़ा कुछ शान्त हो गई।

कुमुद को इधर रात में जो धक्का पहुँचा था, उसमें उसकी एक सान्त्वना विराजमान थी। मधुसूदन ने जितनी बार उससे प्रेम दिखाया है, उतनी ही बार कुमुद के दिल में खींचतान हुई है। प्रेम मूल्य ही से इस क़र्ज़ को चुकाना है इस काम की सूझ ही ने उसे चञ्चल बना दिया है, इस युद्ध में कुमुद की जीत न होती, किन्तु यह पराजय बड़ी भद्दी थी जिसे कुमुद ने जी-जान से दाब रखने की कोशिश की है। कल रात्रि में वह दबी हुई पराजय क्षणमात्र ही में पकड़ में आ गई। कुमुद की असावधानता में मधुसूदन ने देख लिया कि उसकी प्रकृति मेरी प्रकृति के बिलकुल विरुद्ध है। यह बहुत ही ठीक हुआ जो पूर्णरूप से जान लिया। इसके बाद परस्पर

एक दूसरे के साथ अकपट रूप में अपना कर्तव्य तो पालन कर सकेंगे। उसे मधुसूदन जहाँ चाहता है, समस्या भी तो उसी जगह है। क्षोभ के साथ वह उसे जहाँ रोकना चाहता है, वहीं सत्य उपस्थित है। सचमुच ही उसे मधुसूदन के बिस्तर पर सोने का अधिकार नहीं है। वह सोकर केवल धोखा दे रही है, इस घर में उसका पद केवल नाम मात्र को है।

उसके मन में आज रात में केवल यही एक प्रश्न उठ रहा है—मेरी वजह से उनको इतनी अड़चन क्यों है?' प्रत्येक बात पर मधुसूदन नूरनगरी चाल की चुटकी बजाकर कुमुद को हैरान करता है, उसका यह मतलब जान पड़ता है कि कुमुद का मन इन लोगों के खिलाफ है। जात वगैरह भी पृथक है, फिर क्यों मधुसूदन उससे प्रेम दिखाता है? यह प्रेम क्या कभी सच्चा हो सकता है! कुमुद में मन में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि मधुसूदन आज अपने मन में चाहे कुछ भी सोचे किन्तु उससे कुमुद के मन को शान्ति नहीं मिल सकती। इस बात को मधुसूदन जितनी ही जल्द समझे उसमें उतनी ही जल्दी सब का कल्याण है।

नवीन कल रात्रि में जिस आनन्द के साथ सोने गया था, आज प्रातःकाल उठने पर वह सब काफूर हो गया। रात्रि के ढाई बजे का टाइम है इसी वक्त मधुसूदन ने नवीन को बुलवा भेजा। तुरन्त आर्डर हुआ कि कुमुद को जल्द विप्रदास के यहाँ भेज दिया जाय और बिना मेरे बुलाये वह वहाँ से न आवे। नवीन क्षण-मात्र ही में समझ गया कि यह देश-निकाले का ही दण्ड है।

आँगन को घेरे उस चौकोने बरामदे में जहाँ मधुसूदन और श्यामा की भेंट हुई थी, उसके ठीक सामने ही बरामदे से लगा नवीन का कमरा है। उस समय यह दोनों पति-पत्नी कुमुद के बारे ही में बातचीत कर रहे थे। इतने में कण्ठ-स्वर पहचाना। ज्यों ही चाँदनी के उजाले में मधुसूदन के साथ श्यामा के मिलन का दृश्य उनकी नजर में आया, समझ गई कि कुमुद के भाग्य में आज रात्रि में एक और अशुभ गाँठ चुपके से बँध गई।

मोती की माँ ने नवीन से कहा—'इस सङ्कट काल में जीजी का चला

जाना क्या अच्छा होगा !'

नवीन बोला—'इतने दिनों में तो बहूरानी के होने ही के कारण ऐसा हो रहा है।'

'तुम भी क्या बात कर रहे हो !'

'बहूरानी ने जिस सोई हुई खूराक को जगाया है, उसकी खूराक वे जुटा ही नहीं सकीं इसी कारण यह अनर्थ हो रहा है। मैं तो यह कहता हूँ कि इस समय उनका दूर रहना ही अच्छा है। ऐसा करने पर वे कम से कम कुछ शान्ति तो पा ही सकेंगे।'

'तो क्या यह इसी भाँति चलता रहेगा !'

'जिस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने की अपने में कोई शक्ति नहीं, उसे स्वयं अपने आप जल जाने के वक्त तक दूर से देखते रहने के अतिरिक्त और दूसरा चारा ही क्या है !'

दूसरे दिन प्रातःकाल हाबलू कुमुद के साथ-साथ घूमता रहा, पण्डितजी के पढ़ाने आने पर और उनके बुलावा भेजने पर वह कुमुद के मुँह की ओर ताकने लगा। यदि कुमुद कह देती तो वह चला जाता किन्तु इसके प्रतिकूल उसने बैरा से कहलवा दिया—'आज हाबलू की छुट्टी है।'

वह कुछ दिन के लिए मायके जा रही है, कुमुद को यात्रा के समय आज इस बात का भान हुआ। आज यह घर जाना उसे खो देने का है। जिस पक्षी को पिंजड़े में बन्द किया गया था, वह मानो आज दरवाजा कुछ खुला पा कर उड़ चली हो और जैसे वह पिंजड़े में फिर कभी न घुसेगी।

नवीन बोला—'बहूरानी, जल्दी आना।' यह बात नवीन के मुँह से न निकल सकी कि जिनके यहाँ तुम्हारा पूर्ण सम्मान है, तुम उन्हीं के यहाँ रहना। कभी भी आवश्यकता पड़ने पर नवीन की याद कर लेना।'

अपने हाथ के बनाये हुए अमावट, अचार वगैरह एक मिट्टी के बर्तन में रख कर मोती की माँ ने पालकी पर रख दिये, यद्यपि उसके मन में विशेष आपत्ति उपस्थित थी किन्तु वह कुछ बोल न सकी। जब तक जोगा बाबा थी तब तक मधुसूदन ने कुमुद का बाहर से अपमान किया है।

तो उस समय तक मोती की माँ का सम्पूर्ण हृदय कुमुद के पक्ष में था किन्तु सूक्ष्म और मर्मगत बाधा को विश्लेषण के जरिए निर्णय करना कठिन है। उसकी बुद्धि इतनी प्रबल है कि इस बात को मोती की माँ सहज नहीं समझती। स्वामी की प्रसन्नता में स्त्री का सौभाग्य है। मोती की माँ इसी को स्वाभाविक मानती है और इसके प्रतिकूल होने पर उसे ज्यादती समझती है। और वहीं, इसे इस पर भी क्रोध आता है कि अभी तक बहूरानी के बारे में नवीन अपने हृदय में दर्द बनाये हुए है। कुमुद की स्वाभाविक अरुचि नितान्त ही अकृत्रिम है। उसमें घमण्ड छू तक नहीं गया है। यहाँ तक कि किसी कारण कुमुद अपने ही साथ अपना अजेय विरोध समझता है। साधारणतः स्त्रियों को इस बात का मानना कठिन है। चीन में जिस लड़की ने वहाँ की प्रथा के अनुसार अपने पैर को विकृत करने में आपत्ति नहीं की है वह यदि सुने कि संसार में ऐसी भी लड़कियाँ मौजूद हैं जो अपने इस पद के संकोच की पीड़ा को स्वीकार करने में अपमान समझती हैं तो वह अवश्य ही उस हिचकिचाहट को हँसी में उड़ा दे। वह जरूर कहे कि यह सब नखरे हैं जो छिपी सी नजर में स्वाभाविक मानती है। मोती की माँ किसी दिन कुमुद के दुःख से अति दुखी हुई थी, कदाचित् इसी कारण उसका मन आज इतना कठोर होने लगा है। विपरीत तकदीर जब वरदान देने आती है तब उसके पैरों पर शीश रखकर जो स्त्री अति शीघ्र उसे ग्रहण नहीं कर सकती, उसके ऊपर स्नेह करना मोती की माँ के लिए असम्भव है, यहाँ तक कि वह क्षमा करना भी नहीं जानती।

पैंतालीसवाँ परिच्छेद

जैसे ही पालकी मकान के सामने पहुँची कुमुद ने पालकी के दरवाजे को धीरे से खिसकाकर ऊपर की ओर देखा। प्रतिदिन विप्रदास सड़क के किनारे वाले बरामदे में बैठकर अखबार पढ़ा करते थे, किन्तु आज उसे वहाँ कोई दिखाई न पड़ा। उसके आने का समाचार भी तो वहाँ न भेजा जा सकता था। महाराजा साहब के चपरासी दरबान को पालकी

के साथ देखकर यहाँ के दरबान घबरा से गये, चौकन्ने होकर समझ गये कि बहनजी आई हैं। सहन को पार करके पालकी अन्तःपुर की ओर बढ़ी। उसे बीच ही में रुकवा कर कुमुद तेजी से उतर बड़ी ही उतावली के साथ बाहर की सीढ़ियों पर से ऊपर चली गई। वह चाहती है कि बिना किसी के देखे ही पहले भइया से मेरी भेंट हो जाय। उसे पूर्ण विश्वास था कि भैया रोग-ग्रस्त होने के कारण बाहर के ही आगन्तुक कमरे में होंगे। उसे कमरे के जँगले से बगीचे के गुलाब, कचनार और चम्पा के वृक्षों का समूह दृष्टिगोचर होता है। प्रातःकाल की धूप पेड़-पत्तियों के बीच से होकर इसी कमरे में पहले दिखाई देती है अतएव विप्रदास को यही कमरा पसन्द है।

ज्योंही कुमुद जीने के पास पहुँची, टाम कुत्ता दौड़ा आया। उसके ऊपर अगले दो पैरों के रखने की कोशिश करता हुआ वह पूँछ हिलाता हुआ अपनी भाषा में न मालूम क्या-क्या कहने लगा। उसने कुमुद को परेशान कर दिया। टाम भी उछलता-कूदता तेजी से कुमुद के साथ चला। एक तह करके रखी जानेवाली काउच के ऊपर विप्रदास अर्द्ध-निद्रा में पड़े थे—घुटनों तक छींट की फर्द पड़ी है। दाहिने हाथ में एक किताब है वह हाथ बिस्तर के ऊपर शिथिल पड़ा हुआ है और थककर अभी ही मानो पढ़ना बन्द किया है। बगल में ही टिपॉय के ऊपर चाय का प्याला और प्लेट पड़ा है जिसमें थोड़ी-सी खाई हुई रोटी बच रही है। सिरहाने दीवाल में लगी आलमारी में बेसिलसिले किताबें उलटी-पुलटी पड़ी हैं। रात का जला हुआ लैम्प धुएँ से काला होकर अभी तक एक कोने में पड़ा हुआ है।

विप्रदास के चेहरे को देखकर कुमुद चौंक पड़ी। भैया की ऐसी रुग्ण-मूर्ति तो मैंने आज तक कभी देखी ही नहीं। उस युग के विप्रदास में मानो कई युगों का अन्तर है। कुमुद भइया के पैरों पर सिर रखकर रोने लगी।

'अरी कुमुद! तू आ गई! आ, यहाँ तो आ!'—कहते हुए विप्रदास ने उसे निकट खींच लिया। यद्यपि पत्र लिखते वक्त उसमें उन्होंने कुमुद को आने की मनाही कर दी थी किन्तु उन्हें पूर्ण विश्वास था कि

कुमुद आवेगी। उन्होंने जब देखा कि कुमुद आ गई है तब वे समझ गये कि अब सभी विघ्न दूर चले जायँगे—कुमुद के लिए उसकी घर-गृहस्थी अब सहज हो गई। उसे बुलाने के लिए इनकी ही ओर से प्रस्ताव, पालकी और आदमी भेजने की व्यवस्था होनी चाहिए थी—नियम तो ऐसा ही है, किन्तु ऐसा न होने पर भी कुमुद चली आई। इससे विप्रदास ने उसकी स्वाधीनता की जितनी कल्पना अपने मन में करवा ली, उतनी आशा उन्होंने मधुसूदन के घर में उसके लिए कभी स्वप्न में भी न की थी।

विप्रदास के बिखरे हुए बालों को दोनों हाथों से सँभालते हुए बोला—'भैया, तुम्हारा चेहरा कैसा हो गया!'

'इधर कोई घटना तो ऐसी हुई नहीं जिसके कारण मेरा चेहरा अच्छा हो, किन्तु मेरी यह दशा कैसे हुई! तू तो बिलकुल फक पड़ गई।'

खबर पाकर इतने ही में क्षेमा बुआ आ गई, उनके साथ ही दरवाजे पर नौकर-नौकरानियों की भीड़ जमा हो गई। क्षेम बुआ को प्रणाम करते ही बुआ ने उसे चिपटा कर उसका माथा चूमा। नौकर-नौकरानियों ने आकर पैर छुए। सबके साथ कुशल समाचार पूछ चुकने पर कुमुद बोली—'बुआ, भैया का चेहरा खराब हो गया है।' बुआ ने कहा—'योंही थोड़े खराब हो गया है! तुम्हारे हाथ से सेवा न मिलने के कारण इनकी दशा किसी तरह सुधरना ही नहीं चाहती! कितने दिनों का अभ्यास है, कोई ठीक है!'

विप्रदास ने कहा—'बुआ, कुमुद को खाने के लिए न कहोगी?'

'खायगी नहीं तो फिर क्या! क्या इसको भी कहना पड़ेगा? मैं दरबान तथा पालकीवालों को बाहर ही बिठा आई हूँ। जरा जाकर उन्हें खिला आऊँ। मैं जाती हूँ, तब तक तुम दोनों बैठे बातें करो।'

क्षेमा बुआ को विप्रदास ने इशारे से बुलाकर उनके कान में कुछ कह दिया। कुमुद ने समझा ससुराल से आये हुए आदमियों को किस प्रकार बिदा किया जाय, इसी बात का परामर्श किया गया है। इस परामर्श में आज कुमुद विपक्षी हो गई है। इस समय उसकी कोई राय ही नहीं। उसे यह तनिक भी भला न लगा। वह भी इसका अवश्य बदला लेगी। इस

घर के ऊपर उसका जो चिरकाल से अधिकार चला आया है, कुमुद ने उसी पर फिर दुबारा अधिकार जमाने का काम शुरू कर दिया।

कुमुद ने पहले तो भैया के खानसामा गोकुल को फुस-फुस करके कुछ कह दिया। फिर बाद में अपनी इच्छा के अनुसार घर सजाने लगी।

प्लेट, प्याला, लैम्प, सोडा वाटर की खाली बोतलें, बेंत की फटी चौकी, मैले तौलिये और बनिआइनें सभी एक ओर से हटाकर बरामदे में रख दिये। आलमारी के ऊपर सिलसिलेवार किताबें सजा दीं। एक तिपाई सरकाकर भैया के हाथ के पास कर दी, और उसके ऊपर किताबें, कलमदान, ब्लाटिङ्ग-पैड, पीने का पानी, काँच की सुराही और गिलास तथा छोटा-सा एक शीशा और कङ्घी, ब्रश आदि सब ठीक से सजाकर रख दिये।

कुछ देर के बाद पीतल के एक जग में गरम पानी, पीतल की एक चिलमची तथा एक साफ तौलिए को लिये गोकुल वहाँ आया, उसने बेंत के मोढ़े पर सब चीजें रख दीं। बिना भैया के कहे हुए ही गरम पानी में कुमुद ने तौलिया भिगोकर उनका हाथ-मुँह पोछकर बाल काढ़ दिये। शिशु की भाँति विप्रदास यह सहन कर गये। पथ्य के सब नियम तथा कब कौन सी दवा पिलानी होगी, इन सब बातों की जानकारी रख कर वह तत्परता के साथ बैठी, मानो उसके जीवन में और कोई दूसरी जिम्मेदारी ही नहीं है।

विप्रदास मन ही मन सोचने लगे—मैंने सोचा था, वह मिलने आई है, फिर चली जायगी, किन्तु इस प्रकार के लक्षण तो दृष्टिगोचर हो नहीं रहे हैं, इसका क्या मतलब है। विप्रदास उसके ससुराल के सम्बन्ध के विषय में यह जानना चाहते हैं कि इसके साथ कैसा प्रेम है! किन्तु यह सब पूछने से उन्हें लज्जा-सी लग रही है। वे इसी आशा में रहे कि कुमुद स्वयं ही अपने मन से बतायेगी। केवल धीरे से एक बार वे बोले—'आज तुझे कब जाना होगा?'

कुमुद बोली—'मुझे आज जाना नहीं होगा।'

आश्चर्यचकित होकर विप्रदास ने फिर कहा—'इसमें तेरी ससुराल वालों को कोई आपत्ति तो नहीं है ?'

'नहीं, इसमें तो मेरे पति की सम्मति है।'

विप्रदास चुप बैठे रहे। कुमुद घर के एक कोने में टेबिल के ऊपर चादर बिछाकर उस पर दवा की शीशी, बोतल इत्यादि ठीक ढङ्ग से सजाकर रखने लगी। कुछ क्षण के बाद ही विप्रदास ने पूछा—'आखिर क्या तुझे कल जाना ही पड़ेगा ?'

'नहीं, मैं कुछ दिन तो आप ही के पास रहूँगी।'

कोच के नीचे वह टाम कुत्ता शान्त होकर निद्रादेवी की गोद में पड़ा था, कुमुद ने उसके ऊपर प्यार से हाथ फेर उसे जगा दिया—कुत्ता उछला और उसने अपने दोनों पैर कुमुद की गोद के ऊपर उठाकर अपनी ही भाषा के राग में अलापना शुरू किया। विप्रदास को यह समझते देर न लगी।

कुत्ते के साथ खेलना बन्द करके कुछ देर बाद कुमुद बोली—'भैया, तुम्हारे बार्ली पीने का वक्त तो हो गया, क्या उसे ले आऊँ ?'

'नहीं, अभी वक्त नहीं हुआ।' इतना कहकर खाट ही के पास पड़ी हुई चौकी के ऊपर उन्होंने उसे बिठा लिया। अपने हाथ के ऊपर उसका हाथ लेकर बोले—'कुमुद, तेरा यहाँ कैसे चल रहा है, मुझसे साफ-साफ कह दे।'

कुमुद से तुरन्त ही इसका जवाब देते न बन पड़ा। नीचे सिर किये वह बैठी रही, देखते-देखते उसका चेहरा लाल पड़ गया, बचपन की तरह भैया के वक्षस्थल पर अपना मुख रखकर रो उठी। बोली—'भैया, मैंने सब गलत ही समझा, मुझे मालूम न था।'

कुमुद ने कहा—'मैं आरम्भ ही से केवल तुम्हीं लोगों को जानती हूँ। मैं यहाँ से दूसरी जगह जाकर इतनी भिन्नता पाऊँगी, ऐसा मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। मैंने बचपन में जितनी भी कल्पनाएँ की हैं वह सब तुम्हीं लोगों के मूर्तिरूप में। इसी कारण मैं मन में तनिक भी न डर सकी थी। मैं इसे जानती हूँ कि बाबू जी ने माँ को अनेकों बार

कष्ट दिये हैं किन्तु वह कष्ट उनका उपद्रव मात्र था। उसकी चोट बाहर की थी भीतरी नहीं, किन्तु यहाँ तो पूर्णरूप से मानो मेरा भीतरी अपमान है।'

बिना कुछ कहे हुए ही विप्रदास लम्बी साँस लेकर चुपचाप बैठे सोचते रहे। विवाह होने के पूर्व ही विप्रदास को यह मालूम हो गया था कि मधुसूदन उन लोगों से अलग एक दूसरी दुनिया का आदमी है। उसी के विषम उद्वेग ही के कारण सम्भव है उनका शरीर स्वस्थ न हो पाता हो। इससे कुमुद के उद्धार करने का तो कोई अन्य उपाय है नहीं क्योंकि कुमुद के कारण ही पुरुष के हाथ में उनकी बहुत सी सम्पत्ति रेहन में पड़ी है। इस अपमान की मार सम्बन्ध होने पर कुमुद को सता रही है। इतने दिनों रोगशय्या पर पड़े-पड़े विप्रदास यही सोचा करते हैं कि इस ऋण से मुक्त होने का क्या उपाय किया जाय। कलकत्ते आने का उनका विचार बिलकुल न था। वह इसलिए आये हैं कि कुमुद की ससुराल में उनका स्वाभाविक व्यवहार असम्भव न हो जाय। कुमुद के ऊपर उनका जो अगाध प्रेमरूपी अधिकार है उस पद से कहीं लांछित न हो जायँ। अतएव इसी कारण निश्चय किया था कि नूरनगर में ही रहेंगे। वे कलकत्ता आने के लिए इस बात पर मजबूर हुए कि शायद वहाँ किसी महाजन से कर्ज मिल जाय तो अच्छा हो। यह इन्हें मालूम है कि यह काम बड़ी मुश्किल का है किन्तु फिर भी इसकी दुश्चिन्ता का भारी बोझ उनकी छाती पर रखा हुआ है।

कुछ देर बाद कुमुद ने विप्रदास की ओर से गरदन को जरा दूसरी ओर फेर लिया और बोली—'अच्छा, भैया, मैं पति पर किसी भी भाँति अपने मन को प्रसन्न नहीं कर पाती हूँ, क्या यह मेरा पाप है?'

'कुमुद, तुझे तो यह मालूम ही है कि पुण्य तथा पाप के बारे में मेरा मत शास्त्रों से नहीं मिलता?'

कुमुद, अन्यमनस्क हो एक अङ्गरेजी सचित्र मासिकपत्र के पन्ने उलटने लगी। विप्रदास बोले—'भिन्न-भिन्न आदमियों की जिन्दगी अपनी घटनाओं और अवस्थाओं में आपस में एक दूसरे से इतनी भिन्न होती है

कि अच्छे बुरे के साधारण नियमों को खूब पक्का करके बाँध देने में भी अक्सर वह नियम हो जाते हैं, धर्म नहीं रह जाते।'

मासिकपत्र की ओर नीची ही निगाह किये हुए कुमुद बोली—'जैसे मीराबाई का जीवन।'

अपने हृदय के भीतर कर्तव्य और अकर्तव्य का द्वन्द्व जब किसी भी वक्त कठोर हो उठता है तभी मीराबाई की बात कुमुद को याद आ जाती है। वह पूर्णरूप से यही चाहती है कि मीरा के आदर्श को कोई उसे भली भाँति समझा दे।

कुमुद कुछ विचार-मग्न हो सङ्कोच को दूर करने लगी। वह सोचने लगी—'मीराबाई ने अपने यथार्थ पति को अपने हृद्स्थल ही में प्राप्त कर लिया था, इसी कारण वे सामाजिक पति को इस प्रकार मन से छोड़ सकी थीं, किन्तु क्या घर-गृहस्थी के इतने बड़े भार को छोड़ने का हक मुझे है!'

विप्रदास ने कहा—'कुमुद, तुमने तो अपने ईश्वर को पूर्णरूप से मन ही मन प्राप्त कर लिया है।'

'मैं किसी समय ऐसा ही समझती थी, किन्तु सङ्कट के आ जाने पर मैंने देखा कि मेरे प्राण सूख गये हैं। मैंने सैकड़ों प्रयत्न किये किन्तु किसी भाँति मैं उन्हें अपने आगे सत्यरूप में प्राप्त न कर सकी। सबसे बड़ा दुःख तो मैं इसी को समझ रही हूँ।'

'कुमुद, हृदय के भीतर ज्वार-भाटा की लहरें उठा करती हैं। इसमें तनिक भी शङ्का करने की बात नहीं। बीच-बीच में रात्रि का आना लगा रहता है यह ठीक है किन्तु इससे दिन के नाश होने की शङ्का तो नहीं होती। जो कुछ तुझे मिला है वह तेरे प्राणों के साथ मिलकर एकाकार हो गया है।'

'भैया, मुझे ऐसा आशीर्वाद दो जिससे उन्हें भूल न सकूँ। वे निर्दयी हैं, दुःख पहुँचाते हैं—वे अपने हैं इसलिए।'

'भैया, मैं तुम्हें अपना सोच दिखा-दिखाकर थकाये दे रही हूँ।'

'कुमु, ... तब ... बचपन ... था तभी से तो मैंने तेरे विषय में सोचने

का अभ्यास-सा कर लिया है। यदि आज तेरी बात जानना बन्द हो जाय और तेरे लिए सोचना बन्द कर दूँ तो मेरे लिए सब सूना-सा मालूम पड़ने लगे।'

'मेरा मन उसी शून्यता को टटोलते-टटोलते थक-सा गया है।'

कुमुद ने विप्रदास के पैरों पर हाथ फेरा और बोली—'भैया, तुम मेरे लिए सोच न करो। जो रक्षा करनेवाले हैं वे मेरे भीतर ही मौजूद हैं, भला इस भाँति मेरे ऊपर विपत्ति क्यों आवेगी!'

'अच्छा, ये सब बातें जाने दे। मैं जिस भाँति पहले तुझे गाना सिखाया करता था, मेरे जी में आता है उसी भाँति आज भी तुझे सिखाऊँ।'

'भैया, मेरे अहोभाग्य थे जो तुमने मुझे गाना सिखाया था, वही तो मुझे बचाता है, किन्तु आज नहीं। जरा पहले ठीक तो हो जाओ। मैं तुम्हें एक गाना सुनाती हूँ।'

कुमुद भैया के सिरहाने के पास बैठकर धीरे-धीरे कुछ गाने लगी। उसी गाने को विप्रदास आँखें मींचकर सुनने लगे। एक अपूर्व दर्शन के कारण कुमुद की आँखें गाते-गाते भर आईं। उनका अन्तस्तल खूब आलोकित हो उठा। घर में प्रियतम आये हैं, उनके चरणों का स्पर्श उसके हृदय से हो रहा है। उनका अन्तर्लोक अत्यन्त सत्य हो उठा है और वही जैसा कि मिलन होता है। गाते-गाते वह उन चरणों पर पहुँच गई है जिनके ऊपर उसकी लगन लगी हुई है और वह जिन पर बलिहार हो रही है उसने अपने जीवन को उन चरण कमलों पर न्यौछावर कर दिया है। संसार में उसके लिए दुःख अपमान की जगह नहीं रही, यही क्या कम है! यदि यह गाना कभी खत्म न हो तब तो चिरकाल के लिए कुमुद बच गई।

तिपाई के ऊपर गोकुल रोटी, टोस्ट और एक प्याला बार्ली लाकर रख गया। गाने को रोक कर कुमुद बोली—'भैया, कुछ दिन तो मैं पहले मन ही मन गुरु ढूँढ़ रही थी; किन्तु तुमने तो मुझे गान का मन्त्र ही दिया है, अब गुरु की कौन-सी आवश्यकता!'

कुमू, तू मुझ शर्मिन्दगी में न डाल। मुझ जैसे गुरु तो हर गली में मिल सकते हैं। वे जो दूसरों को मन्त्र देते हैं उसका अर्थ वे स्वयं ही नहीं जानते, कुमू, ठीक से मुझे यह तो बता कि यहाँ कब तक रह सकती हो?'

कुमुद बोली—'जितने दिन बुलावा न आवे।'

'क्या तू यहाँ आना चाहती थी?'

'नहीं, मैं नहीं चाहती थी।'

'इसके क्या माने?'

'भैया, माने के अर्थ सोचने से कोई लाभ नहीं, तुम कोशिश करने पर भी सम्भव है न समझ सको। मैं तुम्हारे पास पहुँच सकी हूँ, यही बहुत है। मैं जितने दिन रह सकूँ उतना ही बहुत अच्छा है। भैया, पहले खा तो लो, तुम खा तो रहे ही नहीं हो।'

नौकर ने आकर खबर दी—'मुकर्जी साहब आये हैं।'

जरा व्यस्त होकर विप्रदास बोले—'उन्हें यहाँ बुला लाओ।'

छियालीसवाँ परिच्छेद

ज्यों ही कालू ने घर के भीतर कदम रखा, त्यों ही कुमुद ने उसे प्रणाम किया। कालू बोला—'छोटी लल्ली! तू आ गई? अब तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाई साहब को जल्द ही आराम हो जयगा।'

आँखों में भरी हुई आँसुओं की बूँदों को सँभाल कर कुमुद बोली—'भैया, बार्ली में नीबू नहीं निचोड़ोगे?'

अनिच्छा दिखाते हुए-से विप्रदास ने हाथ हिला दिया और बोले—'कोई आवश्यकता नहीं।' कुमुद को यह मालूम है कि भैया को बार्ली अच्छी नहीं लगती, इसलिए वह जब कभी उन्हें बार्ली खिलाती थी उसमें नीबू का रस, थोड़ा-सा गुलाबजल और बर्फ डालकर उसे शरबत सा बना देती थी। उस भाँति का आयोजन आज नहीं है, किन्तु फिर भी विप्रदास ने अपनी इच्छा किसी को नहीं बताई। सामने आ जाने वाली वस्तु को वे शान्त भाव और अरुचि के साथ खा लेते।

कुमुद बालों को ठीक तरह से बना लाने के लिए बाहर गई। विप्रदास उद्विग्न होकर कालू से पूछने लगे—'कहो भैया क्या समाचार है!'

'तुम्हारे अकेले के दस्तखत करने से कोई भी कर्ज देने पर राजी नहीं होता। सुबोध का भी दस्तखत होना जरूरी है। मारवाड़ी धनियों में से कोई-कोई दे सकता है। किन्तु वह सट्टे का खेल-सा समझो। उसमें ब्याज की अधिकता है अतएव अपने को वह पुसायेगा नहीं।'

'कालू भैया, अब देर करनी ठीक नहीं, सुबोध के आने के लिए उसे तार देना ही होगा।'

'मुझे भी अच्छे ढङ्ग नहीं दीख पड़ते। उस बार तुम्हारी अँगूठी बेच कर असली कर्जे में से कुछ चुकता करने के लिए जो रुपया ले गया था, उसे लेने को मधुसूदन राजी ही नहीं हुआ। मुझे उसी समय मालूम हो गया कि मामला जरूर बेढङ्गा है। अपनी इच्छा के अनुसार कब किस दिन फाँस में डाल दे इसे कौन कह सकता है!'

विप्रदास शान्त भाव से सोचने लगे।

कालू ने कहा—'भाई साहब, आज सवेरे ही जो छोटी लल्ली अचानक आ पहुँची, बिगड़कर और नाखुश करके तो नहीं आई! मधुसूदन को नाराज करने योग्य अभी मेरी अवस्था नहीं है। हम लोगों को यह बात याद रखनी है।'

'नहीं, कुमुद तो कह रही है कि उसके यहाँ आने में उसके पति की सम्मति है।'

'उस सम्मति का रूप कैसा है! उसे बिना देखे मन निश्चिन्त नहीं होता। कितनी सावधानी के साथ बर्ताव करता हूँ, भाई साहब, मैं उसे तुमसे किस भाँति बताऊँ! क्रोध से जलती हुई देह को भी मैंने शान्तिपूर्वक ठण्डा किया है। गौरीशङ्कर पर्वत की भाँति भरी दुपहरी में भी बर्फ नहीं गलती। एक तो महाजन का होना, दूसरे बहनोई भी हैं, सो इस प्रकार उन्हें निभाना टेढ़ी खीर है।'

विप्रदास बिना कुछ जवाब दिये ही पड़े-पड़े चुपचाप कुछ सोचने लगे।

इतने ही में कुमुद बार्ली लेकर आ गई। विप्रदास के मुँह के पास प्याला ले जाकर बोली—'भैया, लो इसको पहले पी तो लो।'

विप्रदास चिन्तारूपी स्वप्न से जागकर सहसा चौंक पड़े। कुमुद को इसे समझने में तनिक भी देर न लगी कि भैया अवश्य ही किसी गहरे उद्वेग में डूबे हुए थे।

कालू के कमरे से बाहर निकलने पर कुमुद भी उसके साथ ही साथ गई और बरामदे में पहुँच कर बोली—'कालू भैया! बात क्या है, मुझसे तुम्हें सब बातें कहनी ही पड़ेंगी।'

'क्या कहनी पड़ेंगी, बहन?'

'तुम लोग किस भारी चिन्ता में पड़े हुए हो?'

'लल्ली! जमीन-जायदाद होने पर भी किसी को चिन्ता न हो, संसार में ऐसा भी होता है? यह तो काँटेदार वृक्ष का फल है। भूख लगने पर उसे तोड़कर खाना ही पड़ता है और तोड़ते समय सम्पूर्ण शरीर छिल भी जाता है।'

'अच्छा, मुझे बताओ तो क्या हुआ है? यह सब बातें अन्त में होंगी।'

'लड़कियों को जमींदारी सम्बन्धी बातें बतलाना मना है।'

'अच्छा बताऊँ मुझे यह ठीक मालूम ही है कि तुम लोगों में किस विषय में बातचीत हो रही थी?'

'अच्छा यही सही, बताओ?'

'भैया के ऊपर मेरे पति का कर्ज है, इसी विषय में।'

कालू बिना कुछ जवाब दिये ही अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को विस्मय की हँसी के साथ कौतुक के सहित फाड़-फाड़ कर कुमुद के चेहरे की ओर देखता रहा।

'तुम्हें मुझसे सब बात बतानी ही पड़ेगी। मैंने ठीक कहा है या गलत?'

'आखिर तू भैया की बहन ही ठहरी न। बात के बिना कहे ही तू पहले ही से सम्पूर्ण बात समझ जाती है।'

मधुसूदन ने विवाहोपरान्त जिस दिन से गर्वपूर्वक विप्रदास के

महाजन होने की बात कही थी, उसी दिन से कुमुद अपने भैया के प्रति पति का अपमान समझने लग गई थी। अपने हृदय से वह यही चाहती थी कि वह मिट जाय। इसमें कुमुद को लेश-मात्र भी सन्देह करने की गुञ्जाइश न थी, कि भैया के मन में यह अपमान काँटे की भाँति चुभ रहा है। उस दिन जब कि नवीन ने शिवप्रसाद की चिट्ठी की व्याख्या की थी, उसी समय वह समझ गई थी कि इन सब का कारण लेन देन ही है। इन सब बातों को कुमुद समझ गई कि भैया का शरीर इतना क्षीणकाय क्यों है और किस कार्य के लिए भैया कलकत्ता के लिए प्रस्थान कर आये हैं।

'कालू भैया, मुझ से तुम कदापि न छिपाओ। भैया सम्भवतः यहाँ किसी से कर्ज लेने ही आये हैं।'

'हाँ, रुपये आसमान से तो गिरते नहीं हैं। यहाँ से कर्ज लेकर ही तो वह कर्ज चुकाना पड़ेगा। नाते-रिश्तेदारों का कर्जदार बनना ठीक नहीं है।'

'हाँ, यह बात तो ठीक है, किन्तु रुपयों का इन्तजाम किये हो?'

'अब डरने की क्या बात, वह तो हो ही जायगा। मैं उसी की तो फिराक में घूम-फिर रहा हूँ।'

'नहीं, कोई ठीक इन्तजाम नहीं हुआ, इसे मैं जानती हूँ।'

'अच्छा छोटी लल्ली, यदि तुम सब जानती हो तो फिर मुझसे क्यों पूछ रही हो? लड़कपन में तुमने एक दिन मेरी मूँछें पकड़ी और पूछा कि मूँछें क्यों होती हैं? मैंने कह दिया—'ठीक वक्त पर मूँछ के बीज बोने के कारण। बस वहीं से इस प्रश्न का अन्त हो गया था। यदि इस समय पूछती तो मुझे डॉक्टर बुलाने की आवश्यकता होती। संसार की समस्त वस्तुएँ तुम जान ही जाओ इसकी क्या आवश्यकता?'

'कालू भैया, मैं तुमसे साफ बताये देती हूँ कि भैया की समस्त बातों की मैं अवश्य जानकारी रखूँगी।'

'भैया की मूँछें किस प्रकार उगीं, यह भी?'

'देखो, इस भाँति बात का टालना ठीक नहीं। भैया के मुँह को

देखते ही मैं समझ गई थी कि तुम रुपयों का प्रबन्ध नहीं कर सके ।'

'मानो नहीं हुआ, उसको जानकर तुम्हें क्या लाभ होगा ?'

सो मैं नहीं जानती, किन्तु इस बात को मुझे जानना ही होगा, क्या दरअसल में तुम्हें रुपये उधार नहीं मिले ?'

'नहीं, मुझे नहीं मिले ।'

'आसानी से मिलना क्या सम्भव नहीं ?'

'मिलेंगे जरूर, किन्तु कुछ दिक्कत उठानी पड़ेगी। बहन, यदि मैं तेरे झमेलों में पड़ूँ और रुपयों की खोज में निकलूँ तो सम्भव है, काम ठीक हो जाय। अच्छा, अब मैं चला ।'

कालू थोड़ी ही दूर जाकर लौट पड़ा और कुमुद से कहा—लल्ली, तुम आज जो यहाँ आ गई हो, हमसे ठीक-ठीक कहना, इसमें कोई गड़बड़ी तो नहीं ?'

'मैं इसे पूर्णरूप से नहीं जानती कि गड़बड़ी है या नहीं ।'

'पति की राय मिल गई थी न ?'

'बिना सम्मति माँगे ही उन्होंने दे दी थी ।'

'क्रोध में दी होगी ?'

'इसे तो मैं भली प्रकार कह नहीं सकती, किन्तु उन्होंने कहा था कि बिना बुलाये तुम्हारे यहाँ आने की आवश्यकता नहीं ।'

'इसमें कोई बात नहीं, बुलाने के पहले चली जाना ।'

'ऐसे जाने में आज्ञापालन का नियम भङ्ग होता है ।'

'खैर, इसे मैं देख लूँगा ।'

आज भैया के ऊपर पड़ी हुई विपत्ति का सारा अपराध कुमुद ही को है—इस बात को याद किये बिना कुमुद न रह सकी। अपने को कठिन से कठिन विपत्ति में डालने को प्रबल इच्छा हो रही है। सुना है फल प्राप्ति के लिए बहुत से साधु-सन्त कंटक शय्या पर सोते हैं, कुमुद भी फल-प्राप्ति की आशा से ऐसा करने पर राजी है। यदि कोई योगी या साधु-सन्त उसे फल-प्राप्ति का मार्ग दिखा दे तो वह उसके हाथ बिकने को तैयार है। ऐसा कोई होगा जरूर किन्तु उसका मिलना भी तो सम्भव

नहीं। यदि वह स्त्री न होकर पुरुष होती तो कोई न कोई उपाय अवश्य ही करती। किन्तु मँझले भैया किस हृदय को लिये हुए समस्त भार बड़े भैया पर लादकर विलायत में जाकर बैठे हुए हैं?'

कुमुद ने ज्योंही कमरे के भीतर प्रवेश किया उसकी नजर भैया पर पड़ी जो किसी चिन्ता में निमग्न छत की ओर देख रहे थे। ऐसा करने से भला शरीर किस भाँति सुधर सकता है? भाग्य के विरुद्ध दरवाजे के ऊपर सिर धुन डालने की इच्छा होती है।

सिरहाने बैठकर भैया के माथे पर हाथ फेरते हुए कुमुद बोली—'मँझले भैया कब तक आवेंगे?'

'कह नहीं सकता, कब तक आवेगा।'

'उन्हें आने के लिए खत क्यों नहीं लिखते?'

'क्यों?'

'कार्य का समस्त भार तुम्हारे ही ऊपर आ पड़ा है। इसे तुम किस प्रकार निभा पाओगे?'

'दावादारी और जिम्मेदारी ही से संसार का कार्य चलता है। मैंने दावादारी को छोड़ जिम्मेदारी ही ली है। मैं इसे दूसरे के लिए क्यों छोड़ूँ?'

'यदि मैं पुरुष होती तो तुमसे जबर्दस्ती छीन लेती।'

'कुमुद, तब तो तू समझ सकती है, कि जिम्मेदारी को सिर के ऊपर लेना एक लालच है। उसे लेने में स्वयं तो असमर्थ है इसी से मँझले भैया पर लादकर अपनी साध मिटाना चाहती है। भला यह तो बताओ कि मैंने ही कौन-सा ऐसा अपराध किया है?'

'भैया, तुम यहाँ ऋण लेने आये हो?'

'यह तूने कैसे समझा?'

'मैं तुम्हारे चेहरे को ही देखकर समझ गई। अच्छा, क्या मैं कुछ भी नहीं कर सकती?'

'किस भाँति?'

'यों ही, मान लो किसी दस्तावेज पर दस्तखत करके। क्या मेरे

दस्तखत का कुछ भी मूल्य नहीं है।'

'बहुत अधिक, किन्तु वह मेरे ही लिए, किसी महाजन के लिए नहीं।'

'भैया, मैं तुम्हारे पैरों पर पड़ती हूँ, बताओ मैं क्या कर सकती हूँ?'

'तू लक्ष्मी सी लड़की बनकर शान्त बैठी रह और धीरज रखकर प्रतीक्षा करती रह। स्मरण रख, संसार का यह भी एक बड़ा भारी कार्य है। जिस प्रकार तूफान आने पर नाव सँभालना एक काम है उसी प्रकार मेरे इसराज को उठा ला और बजा तो!'

'भैया, मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं कुछ करूँ।'

'क्या इसराज बजाना 'कुछ' काम नहीं है?'

'इसराज का बजाना दस्तावेज पर दस्तखत करने की अपेक्षा अधिक कठिन काम है।'

'बाजे को उठा तो ला!'

सैंतालीसवाँ परिच्छेद

एक दिन ऐसा था जब कि मधुसूदन से सभी डरते थे। श्यामा भी उसी भाँति डरती थी। इस बात का अन्दाज श्यामा भले-ही लगाया करती कि मानो मधुसूदन उसकी ओर कुछ झुके-से हैं, साथ ही उसे इस प्रकार से एक अन्दाज यह न मिलता था कि वह किस प्रकार से उनके समीप पहुँचे। वहाँ पहुँचने की उसने कोशिश भी की है किन्तु निष्फल ही रही है। मधुसूदन दत्तचित्त होकर ही व्यवसाय को तैयार करने में लगा है। रुपयों पैसों के आगे उसने स्त्रियों को नितान्त ही तुच्छ समझा है, यही कारण है कि स्त्रियाँ उससे डरा करती हैं किन्तु इसमें भी एक आकर्षण है। श्यामासुन्दरी डर के कारण ही कलेजा काँपने और संकुचित व्यवहार के साथ तुच्छ आवरण की ओट से मुग्ध मन द्वारा मधुसूदन के निकट फिरती रही। वास्तव में उसे डर तभी लगा है जब मधुसूदन ने बीच-बीच में असावधानी से उसे थोड़ी शह दे दी है। इसके पश्चात् माधुसूदन ने कुछ दिनों तक इस बात की कोशिश की कि वह स्त्रियों को अपने जीवन में हेय समझता रहे। यही कारण है कि श्यामा अब तक अपने

को संयत रख सकी है।

मधुसूदन की शादी हो जाने के उपरान्त उससे अब रहा नहीं जाता था। अन्य स्त्रियों की भाँति यदि मधुसूदन कुमुद के साथ थोड़ी बहुत अवज्ञा करता तो वह किसी भाँति सहने योग्य होती भी। किन्तु जब श्यामा ने देखा कि मधुसूदन ऐसा व्यक्ति भी रास ढीली करके किसी स्त्री के लिए अन्धवेग से उन्मत्त हो सकता है तब तो संयम की रक्षा उसके द्वारा हो सकनी कठिन है। वह इन दिनों पूर्ण विक्रम के साथ आगे बढ़ रही थी और देख रही थी कि आगे बढ़ा जा सकता है। बीच बीच में कुछ विघ्न आ पड़ा है, किन्तु वह भी दूर हो जाता है। मधुसूदन के अन्दर की कमज़ोरी पकड़ी गई, इसी कारण अब श्यामा का भी जी धैर्य धारण करने में असमर्थ है। श्यामा को मधुसूदन ने अपनी ओर जितना आकर्षित किया था उतना और पहले, जब कि कुमुद पूर्व रात्रि में चली आई थी तब से इस समय तक देखा नहीं गया था। इसके बाद ही फिर श्यामा को डर-सा लगा, कहीं ऐसा न हो कि उसे जल्दी ठोकर लगे। किन्तु वह समझ गई कि कायरता न दिखाई गई तो सम्भव है भय का कारण आप ही आप दूर हो जाय।

प्रातःकाल ही का निकला हुआ मधुसूदन दोपहर को एक बजे बाद घर लौटा है। इधर कुछ दिनों से उसके नहाने-खाने में इस भाँति का बेसिलसिला नहीं हुआ है। हारा-थका तथा अलसाया हुआ-सा वह घर लौटा है। आते ही उसे कुमुद की बात याद हो आई। कुमुद अपने भैया के घर प्रसन्न होकर चली गई है। मधुसूदन अभी तक अपने ही पैरों खड़ा था मालूम नहीं, उसने उसमें कब ढिलाई कर दी। कुमुद के चले जाने पर उसके हृदय में किसी रमणी से प्रेम करने की इच्छा जाग उठी, अतएव अनायास ही उसके चले जाने से उसे अपने ऊपर धिक्कार आया। भोजन के समय आज जान-बूझकर श्यामा उसके पास आकर न बैठी। सम्भव है केवल पकड़ाई में आ जाने के कारण क्रुद्ध हो गये हों। भोजन कर चुकने के पश्चात् मधुसूदन अपने ऊपर वाले सोने के कमरे में जाकर चुपचाप बैठा रहा, उसके बाद खुद ही उसने श्यामा को बुलवाया। श्यामा

लाल रङ्ग का एक विलायती दुशाला ओढ़े संकुचित भाव से कमरे में घुसी और नीची निगाह किये खड़ी हो गई। मधुसूदन ने उसे बुलाया—'आओ, यहाँ आकर बैठो!'

सिरहाने के पास श्यामा ने बैठकर कहा—'तुम तो आज बड़े दुबले से दिखाई दे रहे हो।' और झुककर उसके माथे पर हाथ फेरने लगी।

मधुसूदन बोला—'ओहो, तुम्हारे हाथ तो बड़े ठण्डे हैं।'

रात को सोते वक्त, बिना बुलाये ही श्यामा आकर कहने लगी—'ओहो! क्या तुम अकेले ही हो?'

श्यामासुन्दरी ने कुछ प्रेम के साथ मानो सब पदार्थ खोलकर कह दिया जैसे सबको साक्षी रखकर वह निःसङ्कोच भाव से अपने अधिकार को पक्का कर लेना चाहती है। अब वक्त भी विशेष नहीं है न मालूम कुमुद कब आ जाय, अतएव इसके पहले ही दखल हो जाना चाहिए। खुले आम दखल करने में उसका जोर रहता है किन्तु संकेत में कब्जा का रह जाना ठीक नहीं। यह हाल देखते-देखते नौकरों-चाकरों में भी बात फैल गई। हार्दिक इच्छा को मधुसूदन ने इतने दिनों से जो दबा रखा था वह उतनी जोर से बेरोक-टोक उभड़ पड़ा। घर में किसी की परवाह किये बिना ही उसने अपनी उन्मत्तता प्रकट कर दी।

नवीन और मोती की माँ दोनों समझ गये कि इस बात को अब रोकना कठिन है।

मोती की माँ ने कहा—'अब दादी को न बुलाने में बुराई है।'

'अब उन्हें बुलाने में विलम्ब न करना चाहिए।'

'अच्छा, यही तो मैं भी सोचता था, किन्तु बिना भाई साहब के हुक्म के यह कैसे होगा, किन्तु कोशिश करके देखूँगा।'

भाई साहब से बात करने का विचार किये हुए जिस दिन नवीन अपने दब दिमाग के साथ वहाँ पहुँचा तो देखा कि गाड़ी तैयार खड़ी है और भाई साहब कहीं जाने को तैयार हैं।

नवीन बोला—'भैया, कहीं जा रहे हो क्या?'

सङ्कोच को दूर करते हुए मधुसूदन बोला—'हाँ, उसी वेंकट स्वामी

ज्योतिषी के पास।'

...वह नवीन के सामने अपनी कमजोरी को दबाये रखना चाहता था। सहसा उसे याद आया कि इसे साथ ले चलने में कुछ सहूलियत ही मिलेगी अतः बोला—'म... साथ चलो।'

यह तो बुरी तरह आ फँसे! ...वीन ने सोचकर कहा—'पहले उसे घर पर जाकर देख आऊँ कि वह है या न... ...हीं। उसके जाने की बात थी इससे मुझे तो जान पड़ता है कि वह देश चल... गया।'

मधुसूदन बोला—'अच्छी बात है, चलो देख आवें।'

निरुपाय होकर नवीन साथ चल पड़ा, किन्तु उ...सके मन में प्रमाद ही भरा था।

गाड़ी ज्यों ही जाकर ज्योतिषी के मकान के पास रुकी, त्य...ों ही उतर कर जरा अचकचा कर नवीन ने कहा—'मालूम होता है कि कोई म...कान में है नहीं।'

नवीन के इतना कहते ही वेंकट स्वामी स्वयं मुँह से दातौन चबाते आकर दरवाजे पर खड़े हो गये। नवीन ने तेजी से आगे बढ़ कर उन्हें प्रणाम किया और बोला—'कृपया सावधानी से बातें कहिएगा।'

उस पुराने अन्धकारमय कमरे में सभी बैठ गये, किन्तु नवीन तो मधुसूदन के पीछे ही बैठा। बिना मधुसूदन के बोले ही नवीन ने कहा—'आजकल महाराजा साहब के दिन बड़ी बुरी तरह बीत रहे हैं। शास्त्रीजी बताइए, ग्रहदशा कब ठीक होगी?'

नवीन की जाँघ को मधुसूदन ने अँगूठे से दबा दिया, क्योंकि उसे यह ढीला-ढाला प्रश्न अच्छा न लगा।

वेंकट स्वामी ने राशिचक्र देखकर बिलकुल स्पष्ट कर दिया कि मधुसूदन के धन राशि पर शनि की दृष्टि लगी है।

ग्रह आदि का नाम जानकर उसे कोई लाभ नहीं, उससे समझौता होना कठिन है। जो-जो व्यक्ति उससे शत्रुता कर रहे हैं साफ तौर से उन्हीं का ही परिचय चाहिए। वर्णमाला के चाहे किसी भी वर्ग में क्यों न हो, किन्तु नाम निकालना ही होगा। मधुसूदन के ऑफिस का हाल

नवीन बिलकुल न जानता था इसी में दिक्कत थी। सङ्केत द्वारा भी कुछ मदद नहीं कर सकता। मुग्धबोध के रटे हुए सूत्र को शास्त्रीजी दुहराते जाते और तिरछी निगाह से मधुसूदन के चेहरे की ओर देखते जाते थे। भृगुमुनि आज तो नाम बताने में बिलकुल ही चुप्पी साधे हैं। सहसा शास्त्री जी कह बैठे—'एक स्त्री शत्रुता कर रही है।'

नवीन की जान में जान आई। किसी भाँति यदि यह कहला दिया जाय कि वह स्त्री श्यामासुन्दरी है तो फिर क्या सभी चिन्ता दूर हो गया। मधुसूदन नाम चाहता है। अतएव शास्त्री जी ने अब वर्णमाला के अक्षर गिनने प्रारम्भ किये। कवर्ग कहकर मानो वे भृगुमुनि की ओर कान लगाये रहे। तिरछी नजर से मधुसूदन की ओर देखते रहे। मधुसूदन के चेहरे पर कवर्ग सुनते ही क्षणमात्र के लिए एक चमक सी दौड़ गई। नवीन उधर पीछे से नहीं का इशारा करने के लिए दाईं-बाईं ओर गरदन हिलाने लगा। बेचारे नवीन को भला क्या मालूम कि मद्रास में इसी इशारे का प्रतिकूल अर्थ लगता है। वेंकट स्वामी को सन्देह न रहा, वे वर्ग पर जरा जोर देकर बोले—'कवर्ग' मधुसूदन के मुँह का भाव देखकर समझ लिया कि 'कवर्ग' का पहला ही वर्ण है। इसी से उसकी थोड़ी-सी और व्याख्या कर दी—'क' में ही मधुसूदन का सारा 'कु' है—अर्थात् बुराई या अशुभ।

इसके बाद पूरा नाम न जानकर या बिना इस पर जोर दिये ही मधुसूदन ने उतावली में पूछा—'इसका प्रतिकार भी बताइए।'

गम्भीरतापूर्वक वेंकट शास्त्री बोले—'कंटके' नैव कंटक अर्थात् इसका उद्धार भी किसी स्त्री ही द्वारा होगा।'

वेंकट शास्त्री ने मानव चरित्र का अध्ययन किया है, यह सोच मधुसूदन चकित हो उठा।

चञ्चल हो नवीन ने पूछा—'स्वामी जी, क्या महाराज का घोड़ा घुड़दौड़ में जीत गया?'

वेंकट स्वामी को यह [illegible] है कि [illegible] घोड़े रेस में नहीं जीतते

अतएव कुछ हिसाब लगाने का-सा बहाना बनाकर कह दिया—'हानि ही तो दिखाई देती है।'

मधुसूदन के घोड़े ने कुछ ही दिन हुए अभी जबर्दस्त बाजी मारी है। मधुसूदन को बिना किसी बात के करने का अवसर दिये ही मुँह के ऊपर एक शोचनीय विचार-सा लाकर नवीन बोला—'स्वामी जी मेरी लड़की कैसे पार उतरेगी?' इसे कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि नवीन के कोई लड़की नहीं है।

वेंकट स्वामी ने अन्दाज से समझ लिया कि वर की तलाश में है। साथ ही नवीन के चेहरे को ताड़ लिया कि लड़की अप्सरा होगी नहीं, अतएव कह दिया—'पात्र मिलने में विलम्ब लगेगा और बहुत से रुपये खर्च करने होंगे।'

नवीन ने मधुसूदन को जरा भी बोलने का मौका न दिया और इसी भाँति उलटे पलटे दस बारह प्रश्न किये और उन प्रश्नों का विचित्र उत्तर मिला। नवीन बोल उठा—'भाई साहब, क्या सोचते हो, अब चलो न।'

ज्योंही नवीन गाड़ी पर बैठा, मधुसूदन से कहने लगा—'ढोंगी कहीं का! भाई साहब, इसकी चालाकी देखी या नहीं?'

'किन्तु उस दिन तो...।'

'उस दिन इनसे पहले ही से पता लगा लिया था।'

'वह कैसे जान गया कि मैं आऊँगा?'

'मेरी मूर्खता थी, मेरी गलती हुई जो मैं उसके पास तुम्हें ले आया।'

ज्योतिषी की यह समस्त बातें ढकोसले की ही न हों किन्तु मधुसूदन के मन में कवर्ग का 'क' चुभा ही रहा। सोचकर देखा कि नक्षत्रों का अनादर करके फुटकर प्रश्नों का अंट-संट उत्तर देती है किन्तु असली प्रश्नों के उत्तर में त्रुटि होती ही नहीं। जिसे मधुसूदन ने स्वप्न में भी न विचारा था, वही दुःसमय उसके विवाह के साथ ही साथ आया। इससे बढ़कर और दूसरा स्पष्ट प्रमाण और क्या है।

नवीन ने धीरे-धीरे चर्चा की—'भाई साहब, बहूरानी को गये पन्द्रह दिन बीत गये। अब उन्हें बुलाना चाहिए।'

'जल्दी किस बात की है ? नवीन देखो, मैं तुमसे साफ बताये देता हूँ। हमारे सामने अब कभी ऐसी बातें तुम छेड़ा न करना; जिस दिन मेरी खुशी होगी, उस दिन बुला लेंगे।'

भाई साहब को नवीन भली भाँति पहचानता है। समझ गया कि सब बातें समाप्त हो गईं। फिर भी हिम्मत करके पूछ ही लिया—'यदि मँझली बहूरानी से मिलने के लिए जायँ तो इसमें कोई हर्ज है ?'

अवज्ञा के साथ संक्षेप में मधुसूदन ने कहा—'हाँ, चलो जायँ।'

अड़तालीसवाँ परिच्छेद

विप्रदास ने आराम कुर्सी की ओर संकेत करके कहा—'आइए नवीन बाबू, यहाँ बैठिए।'

नवीन ने कहा—'आप शायद मुझसे परिचित नहीं, मुझे राजघराने का आदमी समझते होंगे। यह गलत है। मैं आपकी छोटी बहिन का सेवक हूँ। आपको यह क्या हो गया। आपका इतना सुन्दर गठीला शरीर था, अब तो हड्डियाँ ही दिखाई पड़ती ही हैं।'

'शरीर को चैन कहाँ ! ये तो हड्डियाँ ही हैं।'

इतने ही में कुमुदिनी आ गई। भीतर प्रवेश करते ही बोली—'देवर जी, चलो कुछ खा लो।'

'खाऊँगा, पर एक शर्त पर। जब तक वह पूरी न हो जायगी यह ब्राह्मण तुम्हारे द्वार पर भूखा ही पड़ा रहेगा।'

'क्या शर्त है, सुनाओ तो ?'

'जब तक हमारे यहाँ थी, अर्जी दे रक्खी। वहाँ बस नहीं चलता था। अपने भक्त को तुम्हें अपना एक चित्र देना होगा। उस दिन इनकार कर दिया था, आज इनकार नहीं हो सकता। वह चित्र तुम्हारे भैया के कमरे में सामने ही दीवाल पर टँगा है।'

अच्छे चित्र बिरले ही तैयार हो पाते हैं। चित्र पूरे कद का है।

ऐसा लगता है कि वह अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर ठिठक गई है। सुडौल दाहिना हाथ एक सादी कुरसी के हत्थे पर पड़ा है और स्वयं दीवार पर खड़ी प्रतिमा की भाँति खड़ी है।'

कुमुदिनी की दृष्टि उस पर नहीं पड़ी। उसके भैया ने विवाह से कुछ दिन पहले कलकत्ते से एक चित्रकार बुलाकर यह चित्र तैयार करवाया था। उस दिन से यह चित्र उसके कमरे की शोभा बढ़ा रहा है। उसे देखकर कुमुद पानी-पानी हो गई। दूसरी कापी की आवश्यकता का अनुभव हुआ। भैया की ओर मुँह करके देखा। नवीन ने कहा—'समझ गये विप्रदास बाबू, बहूरानी की कृपा होनेवाली है। देखो तो सही, इनकी आँखों की ओर तो देखो। मेरे अयोग्य होने पर भी ये मुझ पर विशेष कृपा करती हैं।'

विप्रदास ने कहा—कुमुद, मेरे चमड़े के केस में कुछ और भी चित्र पड़े हैं। तू यदि देना चाहे तो कोई हर्ज नहीं।'

कुमुद जब नवीन को भोजन करने के लिए अन्दर ले गई तो उस समय कालू घर में आया और बोला—'मैंने छोटे बाबू को जल्दी घर आने के लिए तार दे दिया।'

'मेरे नाम से?'

'हाँ, आप के नाम से ही भाई साहब! मुझे पता है आप अन्तिम समय तक 'हाँ' न करेंगे। समय बड़ा खराब है। डाक्टर से जो कुछ सुना उससे मालूम होता है कि तुम पर अब अधिक चिन्ता का भार डालना ठीक नहीं।'

डॉक्टर ने कहा कि हृदय और फेफड़े में खराबी के लक्षण आ गये हैं। आराम की बहुत आवश्यकता है। किसी समय विप्रदास को पहलवानी का शौक था। यह उसी का फल है और फिर उसके साथ मिल गई हैं हजारों घरेलू चिन्ताएँ।

सुबोध को जबरदस्ती बुलाना ठीक होगा या नहीं, इसे वे चुपचाप सोचने लगे। कालू ने कहा—'बड़े बाबू, आप व्यर्थ चिन्तित हैं। जमींदारी के बारे में कोई अस्थायी निर्णय इसी समय हो जाना चाहिए और इसका

काम सुबोध के सामने होना आसान नहीं। बारह प्रतिशत ब्याज तो मारवाड़ी महाजन के सामने सिर नहीं उठाने देगा। दो लाख रुपया तो वह पहले ही ब्याज में जोड़ लेगा। इसके अतिरिक्त कमीशन भी देना होगा।'

विप्रदास ने कहा—'अच्छा, आने दो सुबोध को। क्या वह आ जायगा ?'

'कितने ही बड़े साहब क्यों न हों, आपका तार मिलते ही वे ठहरेंगे नहीं, इसके लिए आप निश्चिन्त रहें। अब देर करना ठीक नहीं, लल्ली को ससुराल भेज दीजिए।'

विप्रदास पहले तो चुप रहे, फिर बोले—'मधुसूदन के बुलाये बिना भेजना ठीक नहीं।'

'क्यों, क्या लल्ली मधुसूदन की चेरी है ? अपने घर जायगी, इसमें हुक्म की क्या बात है ?'

भोजन करने के बाद नवीन अकेला विप्रदास के कमरे में आया। विप्रदास ने कहा—'कुमुद तुमसे बड़ा प्रेम करती है।'

'हाँ, शायद मैं इस योग्य नहीं, इसीलिए इतना अधिक स्नेह करती है।'

'इसके बारे में तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ, तुम मुझसे कोई बात गुप्त न करना।'

'मेरी यह आदत नहीं। आपसे स्पष्ट कह दूँगा।'

'कुमुद अपने मन से यहाँ आई है, मुझे लगता है कि इसमें कोई गड़बड़ी है।'

'आपने ठीक समझा। जिसके असम्मान का ख्याल तक नहीं हो सकता दुनिया में उसका भी अपमान हो जाता है।'

'क्या अपमान हुआ ?'

'इसीलिए तो मैं आया हूँ, और तो कुछ नहीं कर सकता। मन ही मन क्षमा माँग लूँगा।

'कुमुदिनी यदि आज ससुराल वापस चली जाय तो कोई हर्ज है ?'

'उच कहूँ ! वहाँ जाने की बात करने का तो मुझमें साहस भी नहीं है। असल मामला क्या है, इस विषय पर नवीन से विप्रदास ने कोई बात नहीं की, उन्होंने सोचा कि कुछ पूछना उचित न होगा, और कुमुदिनी से भी वे किसी प्रकार की चर्चा करने से अपने को बचाते रहे। मन में व्याकुल हो गये। कालू को बुलाकर पूछा—'तुम तो उनके पास आते-जाते हो, मधुसूदन के विषय में शायद कुछ जानते हो ?'

विप्रदास का हृदय सन्देह से टुकड़े-टुकड़े हो गया। बदला लेने का उपाय उनके पास नहीं था। चिन्ताओं के कारण उनका हृदय रह रह कर पीड़ा से व्याकुल होता गया।

उनचासवाँ परिच्छेद

कुमुदिनी काफी दिनों से जिस बात की इच्छा कर रही थी, वह पूर्ण हो गई। अपने भैया के घर में, जिससे उसे असीम प्रेम था, वापस आ गई। किन्तु यहाँ आकर उसने देखा कि उसे यहाँ स्वाभाविक शान्ति नहीं प्राप्त हो सकी, जिसकी उसे आशा थी। अभिमान के कारण बार-बार उसके मन में आता कि वह लौट जाय। क्योंकि उसे भली भाँति पता चला था कि हर एक व्यक्ति के मन में सन्देह उत्पन्न हो रहा है। वह लौट क्यों नहीं जाती ! उसे क्या हुआ है ! भैया के स्नेह में तनिक भी अन्तर न हुआ, किन्तु इस विषय में उनसे खुलकर बात नहीं हुई। अपनी स्थिति की उलझन के कारण वह एक रहस्यमय बनी हुई है।

सन्ध्या का आगमन है, धूप कम होती जा रही है। शयनागार में खिड़की के निकट कुमुद बैठी है। कौवे काँव-काँव कर रहे हैं। सड़क पर गाड़ियों की भाग-दौड़ और लोगों का कोलाहल सुनाई देता है। वसन्त ऋतु का आगमन नगर के ईंट पत्थर में हरियाली नहीं पहुँचा सकता। क्या इसीलिए सामने की दीवार को छिपाये एक बादाम का वृक्ष लहरा रहा है, तीव्र वायु की सरसराहट पत्तों को हिलाकर दिन की अन्तिम धूप को बिखराती जाती है। जिस दिन से वायु में वसन्त के आगमन का अनुभव हुआ उसी दिन से हरी-भरी पृथ्वी आकाश के उस

दीर्घमार्ग की ओर आँख फाड़-फाड़कर देख रही है जो चारों ओर अपनी नीली चादर फैलाकर पृथ्वी को घेरे हुए है। संसार मनोहर दिखाई पड़ रहा है। हृदय में एक अज्ञान अनुभव उत्पन्न हो रहा है, जिसका चित्र खींचने में संसार के बड़े से बड़े चित्रकार असमर्थ हैं और काल्पनिक छ.या आकाश और पृथ्वी, समुद्र और पर्वत पर आँख के जरा से इशारे से यहाँ और वहाँ जा रही हैं। हृदय छाया को खोल रहा है। कुमुद का हृदय काँप रहा है और सब कुछ छोड़कर भागने ही की इच्छा हो रही है। आज इस घर में भी शान्ति नहीं। कल्पना की उड़ान ने—मृत्यु को भी आकर्षक बना दिया है। मन ही मन बोली—सवेरे जमुना किनारे खड़े वही साँवरे कन्हैया ! जिनकी खोज में चली हूँ दिन और कितनी लम्बी यात्रा—कितनी भयङ्कर यात्रा ! सहसा उसे याद आ गई भैया की बीमारी, जो बढ़ रही है। उनकी सेवा करने आई थी। मैंने ही आकर रोग बढ़ाया, अब जो कुछ करूँगी वह उलटा होगा। दोनों हाथों से मुँह ढाँककर कुमुदिनी रोने लगी। रोना कम होने पर उसने निश्चय किया कि वह घर वापस लौट जायगी। जो कुछ भी होगा, देखा जायगा, सब कुछ सह लेगी। आखिर कभी तो मुक्ति मिलेगी ही, शान्तिदायक, आनन्दप्रद और मधुर ! मृत्यु का विचार जितना भी उसके हृदय में जमता जाता, उसे अपना जीवन-भार हलका प्रतीत होता। वह मन ही मन गुनगुनाने लगी—

'पथ पर रैन अँधेरी, कब्र पर दीप उजियारा।'

दोपहर को कुमुद भैया को सुलाकर चली आई थी। अब दवाई देने का समय हो गया था। कमरे में जाकर देखा तो विप्रदास बैठे सुबोध को अङ्गरेजी में पत्र लिख रहे हैं। कुमुद ने जल्दी से कहा—भैया, आज तुम अच्छी तरह सोये भी नहीं।'

विप्रदास ने कहा—'तुमने समझ रक्खा है कि सोने से ही आराम मिलता है। नहीं, मन यदि चिट्ठी लिखने की आवश्यकता का अनुभव करता है तो चिट्ठी लिखने से ही शान्ति मिलती है।'

कुमुद ने सोचा—इनकी यह बहिन कितनी अभागिनी पैदा हुई। भैया को चाय पिलाने के बाद धीरे से उसने कहा—'काफी दिन हो गये

भैया, अब घर जाना ठीक होगा ।'

विप्रदास ने कुमुद के मुँह की ओर देखकर यह समझने की चेष्टा की कि इस बात की जरूरत क्यों पड़ी । लिखना बन्द कर दिया । कुमुद को बुलाकर उसके माथे पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे । कुमुद ने उनके मनोभावों को समझ लिया । गृहस्थी के बन्धन कड़े हो गये हैं किन्तु प्रेम में अन्तर नहीं आया । आँखों से आँसू लुढ़कना चाहते थे उन्हें जबरदस्ती रोक लिया । कुमुद ने मन में विचार किया—'इस स्नेह पर भार नहीं डालूँगी ।' इसके बाद फिर उसने विप्रदास से कहा—'भैया, मैंने जाने का निश्चय कर लिया है ।'

विप्रदास क्या उत्तर दें, कुछ सोच न सके । सम्भव है कुमुद के जाने में भलाई हो । कम से कम कर्तव्य तो यही है चुप बैठे रहें । कुत्ता इतने में जाग गया और कुमुद की गोद में दोनों पाँव रखकर विप्रदास की जूठन खाने के लिए आगे बढ़ने की अनुमति चाहने लगा ।

नौकर रामस्वरूप ने आकर सूचना दी कि कालू भैया आये हैं । कुमुद असमञ्जस में पड़कर बोली—'आज दिन को तुम सोये नहीं । कालू भैया से बहस करते-करते थक जाओगे । मैं चली जाती हूँ । कोई बात हुई तो सुन आऊँगी, फिर तुमसे वक्त पर कह दूँगी ।'

'तू बड़ी डॉक्टर बन गई है न । एक आदमी की बात कोई दूसरा सुन आये, इससे रोगी के मन को सन्तोष प्राप्त होगा, यह खूब सोचा है !'

'अच्छा मैं सुनूँगी, लेकिन आज रहने दो ।'

किसी अङ्गरेज कवि ने कहा है—'सुना हुआ गीत स्वादिष्ट होता है किन्तु सुनाया हुआ इससे बढ़कर स्वादिष्ट होता है । सुनी हुई खबर थकावट पैदा कर सकती है किन्तु उसके गुप्त रखने से और भी कष्ट बढ़ता है इसलिए शीघ्र ही सुन लेना चाहिए ।'

'मैं पन्द्रह मिनट बाद आऊँगी । यदि उस समय तक तुम्हारी बात न खतम हुई तो मैं इसराज बजाना शुरू कर दूँगी ।'

'अच्छा, मञ्जूर है ।'

आधे घण्टे बाद हाथ में इसराज लिये कुमुदिनी ने प्रवेश किया ।

विप्रदास के भाव को देखकर उसी समय इसराज को दीवार के सहारे कोने में रखकर उनके पास आकर बैठ गई और उनका हाथ पकड़कर पूछने लगी—'क्या हुआ भैया ?'

कुमुद विप्रदास में जो उत्साह देख रही है, उसमें एक प्रकार की गम्भीरता पाई जाती है। विप्रदास का जीवन कष्टों और विपत्तियों से भरा पड़ा है, किन्तु किसी भी सङ्कट में उन्हें भयभीत होते नहीं देखा गया। पढ़ना-लिखना, गाना,-बजाना, दूरबीन के सहारे देखना, घुड़दौड़, पौदे लगाना और उपवन को आकर्षक बनाना आदि विभिन्न कार्यों में व्यस्त रहने से उन्होंने कष्ट का अनुभव तक नहीं किया था। इस बार बीमारी के जोर ने उन्हें बहुत अधिक कमजोर कर दिया है। वे बाहरी मनोरञ्जन की इच्छा रखते हैं और पत्रों का उत्तर तुरन्त न मिलने से अत्यधिक दुःखी हो जाते हैं। चिन्ताओं के कारण घुन की भाँति पिसे जा रहे हैं। यही कारण है कि कुमुद का भैया से जो प्रेम है, उसने मातृत्व का स्थान प्राप्त कर लिया है। उसके आत्मसंयम ने भैया के स्वभाव में बचपन-सा पैदा कर दिया है। इतना निरादर, इतनी हठ तथा गर्व और इतनी गम्भीरता।

कुमुद ने आकर देखा कि भैया का क्रोध शान्त हो गया है किन्तु उनकी आँखों से निकलनेवाली लपटें भगवान शङ्कर के तीसरे नेत्र की भाँति धधक रही हैं—किसी व्यक्तिगत कमजोरी के कारण नहीं, आँखों के सामने वे संसार का कोई पाप देख रहे हैं और ये लपटें उन्हें जला कर राख करना चाहती हैं। कुमुद की बात का कोई उत्तर दिये बिना सामने की दीवार पर ध्यान जमाये विप्रदास चुप बैठे रहे।

कुमुद ने क्षण भर बाद पूछा—'क्या हुआ भैया, बताओ तो सही।'

विप्रदास ने मानो किसी दूसरी ओर ध्यान देते हुए कहा—'कष्ट से बचने का प्रयत्न विपत्ति का कारण होता है, इसलिए विद्वानों ने कहा है कि इसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।'

'तुम आदेश दो, मैं पालन करूँगी भैया।'

'मैं देखता हूँ स्त्रियों को किस प्रकार अपमानित किया जाता है।

किसी एक व्यक्ति के द्वारा नहीं सम्पूर्ण समाज के द्वारा।'

कुमुद भैया की बात अच्छी तरह न समझ सकी।

विप्रदास ने कहा—'जिस दर्द को अपना समझ रहा था, आज समझ में आया कि उसके साथ सङ्घर्ष भी करना होगा।'

विप्रदास के गोरे किन्तु आजकल के पीले चेहरे पर लाली की लहर दौड़ गई। उनकी गोद में रेशमी कपड़े का बेलदार तकिया था, उसे उन्होंने धक्का देकर दूर फेंक दिया। बिस्तर से उठकर पास की कुर्सी पर बैठना ही चाहते थे कि कुमुद ने उनका हाथ थामकर कहा—'धैर्य धरो भैया, उठो मत, जी और भी खराब हो जायगा।' और उसने उन्हें ऊँचे तकिये के सहारे लिटा दिया।

विप्रदास ने अपनी ओढ़नेवाली चादर को मुट्ठी में दबा कर कहा—'सहन करने के अतिरिक्त स्त्रियों के लिए और कोई मार्ग नहीं। इसलिए उन्हें बार-बार कष्ट सहन करना पड़ता है। अब यह कहने के दिन गये कि सहन नहीं करेंगी।' कुमुद, तू यहाँ अब अपना घर समझ कर रह। अब तेरा ससुराल जाना न होगा। कालू से आज विप्रदास से काफी बातें सुनी हैं।

श्यामासुन्दरी के साथ मधुसूदन का जो सम्बन्ध है वह गुप्त तो था नहीं, सब पर प्रकट हो चुका था। दोनों काफी बेहया भी हो चुके थे। लोग उन्हें पापी समझते हैं, इसलिए वे दोनों भागे हुए थे। यही कारण था कि वे जनता की बातों पर ध्यान न देते थे। सुनने में आया है कि मधुसूदन ने श्यामा को मारा-पीटा है। श्यामा ने जब शोर मचाया और दोहाई दी तब मधुसूदन ने सबके सामने उससे कहा—'जा दूर हो यहाँ से कुलटी कहीं की!' निकल जा हमारे घर से!' किन्तु इससे भी कोई अन्तर न पड़ा। श्यामा के बारे में मधुसूदन ने अपना एक कर्तव्य समझ रखा है। श्यामा की इच्छा थी कि गृहस्थी के कार्य का मोती की माँ के स्थान पर वह स्वयं सँभाल ले, किन्तु इसमें भी बाधा उपस्थित हो गई। मधुसूदन को मोती की माँ पर पूर्ण विश्वास था और श्यामा

पर विश्वास न था तथापि वह श्यामा के प्रेम मे मस्त हो गया है। उसने समझ लिया कि श्यामा जाड़े में काम आनेवाली रजाई है, उस पर बेल बूटे और फूल नहीं बने हैं और वह कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसकी रक्षा बहुत आवश्यक हो। चारपाई के नीचे मिट्टी पर गिर जाने से भी उसमें कोई खराबी नहीं आती। वैसे ही आराम पहुँचानेवाली चीज बनी रहती है। श्यामा को भी सँभालकर चलने की आवश्यकता नहीं। इसके अतिरिक्त श्यामा उसको हृदय से मानती है। उसके लिए वह सब कुछ सहन करने को तैयार है। इस बात पर भरोसा होने के कारण मधुसूदन को पूरा विश्वास हो गया कि कुमुद की उपस्थिति में न जाने क्यों उसके आत्मविश्वास को पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ती थीं।

मधुसूदन की मानसिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कालू को अधिक जाँच पड़ताल नहीं करनी पड़ी। घर के नौकर-चाकरों में इस विषय पर काफी बातचीत होती रहती थी और मामले के बढ़ जाने के कारण अब कानाफूसी की आवश्यकता न थी।

ऐसा समाचार सुनते ही विप्रदास का कलेजा छलनी हो गया। मधुसूदन ने मामले को गुप्त रखने की कोशिश तक नहीं की। स्त्री का खुल्लमखुल्ला अपमान सरल है किन्तु स्त्री को इस प्रकार के पति के सुपुर्द कर देना समाज का सब से बड़ा अत्याचार है और मजा यह कि निर्बल स्त्री को पति के अत्याचारों से बचाने के लिए कोई भी मार्ग नहीं है।

विप्रदास ने कहा—'कुमुद, अपमान सहन करना अनुचित नहीं, किन्तु अत्याचार सहना अनुचित है। अपनी जाति के प्रति अन्याय है। समस्त नारी जाति की ओर तुम्हें अपनी इज्जत बनाये रखने का वादा करना होगा। अगर इसी कारण समाज तुम्हें अधिक से अधिक दुःख देना चाहे तो कोई परवाह नहीं।'

'भैया, तुम किस अपमान की बात कह रहे हो, मैं ठीक नहीं समझ सकी।'

'तो क्या सारी बातें नहीं सुनीं?'

'नहीं तो।'

विप्रदास चुप रहे। एक क्षण बाद बोले—'नारी जाति के अपमान का दुःख मेरे सीने में खटक रहा है। क्या मुझे पता नहीं!'

कुमुद भैया के मुख की ओर देखती रही। थोड़ी देर बाद विप्रदास ने कहा—'स्त्रियाँ जीवन-पर्यन्त जो कष्ट झेलती हैं मैं उसे भूल नहीं सकता। मूर्ख समाज ही इसके लिए जिम्मेदार है।'

यहाँ पर भाई-बहन में मतभेद हो गया। कुमुद को अपने पति से काफी प्रेम था। वह जानती थी कि उनका हृदय कितना भावुक है। समस्त भूलों के होते हुए भी उसके बाबूजी बड़े आदमी थे। इस बात की याद से उसको चैन नहीं आता था। यहाँ तक कि उसने पिता के जीवन में जो दुःखद घटना हुई थी उसमें भी वह अपनी माँ को अधिक जिम्मेदार समझती थी।

विप्रदास को अपने पिता के प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी किन्तु नैतिक पतन के कारण उसने माँ को इतना नीच भी न समझा था। इसीलिए विप्रदास को इस बात का गर्व है कि उनका मन किसी प्रकार उन घटनाओं को नहीं भूल सकता।

विप्रदास ने कहा—'माँ का जो अपमान हुआ था वह नारी जाति का ही अपमान था। कुमुद, तू अपनी व्यक्तिगत बातों को भूलकर समस्त स्त्री जाति का मस्तक ऊँचा करने के लिए तैयार हो जा। किसी प्रकार भी इस काम से मुख न मोड़ना।'

कुमुद ने सिर झुकाकर धीरे से कहा—'बाबूजी को तो माँ से बड़ा प्रेम था, यह तो मुझे याद है भैया! और इससे तो काफी भूलों का प्रायश्चित हो जाता है।'

विप्रदास ने कहा—'मैं जानता हूँ। यदि इतना प्रेम होने पर भी वे आसानी से माँ को अपमानित कर सकते थे तो यह समाज का अपराध है। मैं समाज को क्षमा नहीं कर सकता। समाज में प्रेम नहीं—बिलकुल प्रेम नहीं।'

'भैया, तुमने क्या कोई बात सुनी है?'

'हाँ, सुनी है। सब कुछ मैं धीरे-धीरे बताऊँगा।'

'मुझे डर लगता है कि आज की बातचीत से कहीं तुम पर और भी बुरा प्रभाव न पड़े।'

'नहीं कुमुद! इसका प्रभाव उलटा न होगा। इतने दिनों के कष्ट से शरीर शिथिल पड़ गया है। आज तो मन कह रहा है कि जीवन के अन्तिम क्षण तक संघर्ष करना पड़ेगा। इसलिए मेरे शरीर में आप ही आप उत्साह पैदा हो रहा है।'

'किस बात का संघर्ष भैया?'

'जिस समाज ने नारी के अधिकारों का संरक्षण करते हुए धोखा दिया है उससे युद्ध करना होगा।'

'तुम समाज का क्या बिगाड़ सकते हो भैया?'

'मैं उससे राजी नहीं और क्या कर सकता हूँ इस पर विचार करना होगा। आज से मैं अपना कार्यारम्भ करता हूँ। इस घर में तेरे लिए रहने को स्थान है और यह तेरा अपना घर है। किसी समझौते के आधार पर नहीं, यहाँ तुम अपनी इच्छा और अधिकार से रहो।'

'अच्छा भैया, यह सब कुछ हो जायगा, पर तुम अधिक बातें न करो।'

इतने में खबर आई कि मोती की माँ आई है।

पचासवाँ परिच्छेद

मोती की माँ को लेकर कुमुदिनी सोने के कमरे में जा बैठी। बातें करते-करते अन्धकार छा गया। दिया जलाने का समय हो गया था, किन्तु कुमुदिनी ने नौकर को दिया जलाने से मना कर दिया।

कुमुद ने सारी बातें सुनीं और चुपचाप बैठी रही।

मोती की माँ ने कहा—'हमारे घर में भूत आ गया। बहूरानी, तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक है। क्या तुम वापस जाओगी?'

'क्या मुझे बुलाया गया है?'

'नहीं, शायद बुलाने की याद तक न रही। किन्तु तुम्हारे गये बिना काम नहीं बनेगा।'

'मैं क्या कर सकती हूँ ? तसल्ली दे न सकूँगी। और सोचा जाय तो यह सब मेरे ही कारण है। मैं जो भेंट कर सकती थी, उसे वे स्वीकार नहीं कर सकते थे, आज मैं खाली हाथ जाकर क्या करूँगी !'

'क्या कहती हो बहूरानी ! घर तो तुम्हारा है। वह तुम्हारे आ जाने से चल ही नहीं सकता।'

'बहन, घर से क्या मतलब समझती हो तुम बराबर माल असबाब, नौकर चाकर ! मुझे यह कहते लज्जा आती है कि इसमें मेरा कोई अधिकार है। जब अपने घर पर ही कोई अधिकार नहीं रहा तो फिर अन्य बाहरी चीजों पर मेरा कैसा अधिकार !'

'क्या कहती हो बहूरानी, क्या तुम अब घर जाओगी ही नहीं !'

'सब बातें भली प्रकार समझ में नहीं आ रही हैं। यद्यपि कुछ दिन पहले ईश्वर से प्रार्थना करती थी, किन्तु अब मेरा सारा विश्वास जाता रहा है। प्रारम्भ में तो लक्षण अच्छे थे किन्तु अन्त ठीक न रहा। कितनी ही बार बैठे-बैठे सोचती रही कि देवता की जगह भैया पर विश्वास रखती तो इतनी विपत्ति न आती। किन्तु इसके बावजूद मन में देवता के प्रति संशय उत्पन्न हो गया है, मुझको कल नहीं मिलता। लाख प्रयत्नों के बाद भी अब तक केन्द्र के निकट ही खड़ी हूँ।'

'तुम्हारी बातों से मुझे भय लगता है। क्या घर जाओगी ही नहीं !'

'यह सोचना कठिन है कि कभी जाऊँगी ही नहीं परन्तु जाना भी सरल नहीं।'

'अच्छा, तुम्हारे भैया से एक बात पूछ लूँ। देखूँ वे क्या कहते हैं। उनके दर्शन भी हो जायेंगे।'

'चलो, अभी ले चलती हूँ।'

मोती की माँ विप्रदास के कमरे में प्रवेश करते ही उनकी सूरत देखकर स्तब्ध रह गई। मानो वह प्रलय देख रही है। ऐसा मन्दिर जिसके दिये बुझ गये हैं और टूटी-फूटी अवस्था में है। अन्धकार और सन्नाटा है। मोती की चरण-रज छूकर जमीन पर बैठ गई।

विप्रदास ने जल्दी से कहा—'इस चौकी पर बैठो।'

मोती की माँ ने कहा—'नहीं, यहीं ठीक है।'

मोती की माँ की आँखों में आँसू भर आये। वह समझ गई कि भैया की इस दशा ने ही कुमुद को दुखी बना रक्खा है।

कुमुद ने वार्ता आरम्भ करने के लिए कहा—'भैया, ये पूछने आई हैं कि मेरे विषय में आपकी क्या राय है?'

मोती की माँ ने कहा—'नहीं नहीं, राय तो बाद में ली जायगी, मैं तो दर्शनों के लिए आई हूँ।'

कुमुद ने कहा—'ये जानना चाहती हैं कि इनके घर मुझे जाना चाहिए या नहीं?'

विप्रदास उठकर बैठ गये और बोले—'वह तो पराया घर है, वहाँ कुमुद कैसे रहेगी?'

मोती की माँ ने अस्पष्ट शब्दों में कुछ कहा, जिसका मतलब यह था कि कुमुद उसके पास बैठकर विप्रदास के विचारों से उसे परिचित कराये। कुमुद इस बात के लिए तैयार न थी। बोली—'तुम ही अच्छी तरह बातचीत करो।'

'यह ठीक नहीं। कुमुद तो केवल सहारा चाहती है। इसे अपने अधिकारों के लिए लड़ना नहीं आता। शायद इसके घर से अलग हो जाने पर लोग कानाफूसी करें, किन्तु इसके बावजूद इसके वहाँ जाने में कोई रुकावट नहीं है।'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोली—'अपने गृहस्थ-जीवन के बिना स्त्रियाँ जीवित नहीं रह सकतीं। पुरुषों का जीवन तूफान की भाँति होता है। किन्तु स्त्रियों को तो सहारा ही चाहिए।'

सहारा कहाँ है अपमान में? मैं तुमसे कह देता हूँ कि कुमुद को जिसने जन्म दिया है उसने इसे सभी गुणों से सम्पन्न बनाया है और इतनी योग्यता किसी में नहीं जो कुमुद में दोष निकाल दिखाये।'

मोती की माँ ने कहा—'आखिर किसी न किसी दिन तो वहाँ जाना ही पड़ेगा। इसके सिवाय दूसरा रास्ता भी तो नहीं।'

'जाना ही तो पड़ेगा।' इस शब्द का प्रयोग तो खरीदे हुए गुलाम के अतिरिक्त और किसी पर नहीं किया जा सकता।'

'विवाह के द्वारा स्त्री को खरीद ही लिया जाता है। जिस समय विवाह की रस्म हुई उस दिन से ही वह शारीरिक और मानसिक रूप में बिक गई। स्वतन्त्रता के समस्त मार्ग बन्द हो गये। मृत्यु के अतिरिक्त कोई भी शक्ति इस मार्ग को पार करने में सहायता नहीं दे सकता। जब जन्म स्त्री के रूप में हुआ तब फिर उसके भाग्य को बदलने की चिन्ता कैसी?'

विप्रदास की चारपाई के पास ही कुमुद सिर झुकाये धरती पर बैठी थी, विप्रदास ने मोती की माँ से कुछ न कहा। कुमुद के माथे पर हाथ फेर कर बोले—'एक बात तुम से कहता हूँ कुमुद। समझने की कोशिश करना। योग्यता जिस के प्रकट करने के लिए कोई प्रमाण नहीं देना पड़ता अधिकार प्राप्त में काफी सहयोग देती है। यह बात मैंने तुमसे कई बार कही है। तू दुनिया से अलग नहीं हो सकती। तू अच्छी तरह जानती है कि तुझे यहाँ कष्ट नहीं। कई बार समझाने का प्रयत्न किया गया। बिना सोचे-समझे किसी की महानता स्वीकार कर लेने से कोई लाभ नहीं। इसीलिए समाज की महानता का पतन होता जा रहा है। अन्धश्रद्धा के द्वारा अपने ही मनुष्यत्व का अनादर किया जाता है। इस बात को कोई सोचता क्यों नहीं? आज जितनी भी शास्त्र गढ़न्त निरंकुश शक्तियाँ हैं उन सब के विरुद्ध सारी दुनिया में लड़ाई की हवा बह रही है। दुनिया भर के मनगढ़न्त ग्रन्थों को बड़ा नाम देकर मनुष्य आज तक उसका पोषण करता आया है। आज इन्हें निर्मूल करने का दिन आ गया।'

कुमुद ने सिर नीचा किये हुए कहा—'भैया, आपके कहने का क्या यह अर्थ है कि स्वामी से भी बढ़ जाय?'

'मैं अत्याचार को बुरा मानता हूँ किन्तु यह आवश्यक है कि पति पत्नी पर अत्याचार न करे—मेरे कहने का यही मतलब है।'

'यदि अत्याचार करे तो स्त्री को ···।'

कुमुद की बात समाप्त होने से पहले ही विप्रदास कहने लगे—'स्त्री यदि अन्याय के सामने सिर झुका दे तो यह सम्पूर्ण स्त्री जाति के प्रति अन्याय होगा। इस प्रकार हर एक स्त्री की मुसीबत बढ़ती जायगी और अत्याचार का रास्ता खुलता चला जायगा।'

मोती की माँ से सहन न हो सका। बोली—'हमारी बहूरानी सती लक्ष्मी हैं। इनका अपमान करने से इनका अपमान नहीं होता।'

विप्रदास उत्तेजित हो उठे। बोले—'तुम तो सती लक्ष्मी की बातें सोचती हो और खराब लोग इसी घटना को तर्क बनाकर कुमार्ग पर चलते हैं। तुम बुरे आदमियों के बुरे अन्त पर क्यों विचार नहीं करतीं?'

कुमुद उसी समय उठकर खड़ी हो गईं और विप्रदास के बालों में अँगुलियाँ फेरते हुए बोली—'तुम जिसको मुक्ति और उद्धार कहते हो उसके लिए हम स्वयं रुकावट हैं। हम पुरुष पर विश्वास करती हैं और किसी प्रकार भी इस समस्या को सुलझा नहीं सकतीं। चोट सहती हैं और आनन्द का अनुभव करती हैं। तुम जब समझा देते हो तब समझ जाती हैं किन्तु गलत समझ लेना और गलती छोड़ देना एक नहीं। हमारी ममता लता के समान सबको जकड़ लेती है चाहे इसमें भलाई हो अथवा बुराई।'

विप्रदास ने कहा—'इसीलिए तो पुरुषों की पूजा करनेवाली स्त्रियों की कमी नहीं? वे जानने को तो अपवित्र को अपवित्र जानती हैं किन्तु मानती इसके विपरीत हैं।'

कुमुद ने कहा—'क्या करें भैया, गृहस्थी को दोनों हाथों से चलाने के लिए ही हमारा जन्म हुआ है। इसीलिए हम अच्छे-बुरे विचारों को एक जैसा समझती हैं। जितनी देर हमें गुरु की बातों को मानने में लगती, उतनी ही देर ठगाई के सामने सिर झुकाने में। जाल तो हमारे हृदय में बिछा होता है, फिर स्वतन्त्र कौन कराये? इसीलिए सोचती हूँ कि यदि कष्ट ही झेलना है तो उसको स्वीकार कर लेना चाहिए। यही कारण है कि स्त्रियाँ धर्म की शरण में आनन्द की लालसा करती हैं।'

विप्रदास मौन बैठे रहे।

उनका मौन कुमुद को कष्टप्रद प्रतीत हुआ। कुमुद जानती है कि रो लेने से अधिक चुप रहने में कष्ट होता है।

घर में चक्कर लगा आने के बाद मोती की माँ ने कुमुद से कहा—'बहूरानी, क्या यह ठीक है?'

कुमुद ने कहा—'मैं नहीं जा सकती जब कि उन्होंने मेरे आने के लिए कोई आज्ञा नहीं दी।'

मोती की माँ भीतर ही भीतर कुछ लिसिया गई। ससुराल के प्रति उसका अधिक प्रेम हो यह बात नहीं है, फिर भी ससुराल के बारे में बहुत दिनों का ममत्व बोझ उसके मन पर अधिकार किये हुए है। वहाँ की कोई भी बहू उसे किसी प्रकार भी छोड़ जाय यह बात उसे अच्छी नहीं लग सकती! कुमुद को उसने जो कुछ कहा उसका भाव यह था कि पुरुषों की प्रकृति में सहानुभूति की मात्रा कम होती है और असंयम अधिक यह तो बनी बनाई बात है। सृष्टि पर तो हमारा अधिकार नहीं। जो मिला है उसी के साथ निभाकर चलना होगा। यह सोचकर कि यह लोग ऐसे ही हैं मन को तैयार करके जैसे घर-गृहस्थी को चलाना ही चाहिए क्योंकि गृहस्थी ही स्त्रियों की अपनी चीज है। पति कैसा ही हो, घर-गृहस्थी को तो अपनाना ही होगा। यदि यह बात बिलकुल ही असम्भव हो तो मरने के सिवाय और कोई चारा नहीं।

कुमुद ने हँसकर कहा—'और नहीं तो फिर यही सही, इसमें मौत का क्या दोष!'

मोती की माँ ने व्याकुल होकर कहा—'ऐसी बात न कहो।'

कुमुद नहीं जानती कि कुछ दिन हुए उसके मोहल्ले में ही एक सत्रह अठारह वर्ष की बहू ने आत्महत्या कर ली थी। उसका पति एम० ए० पास और सरकारी नौकर है। जो से चाँदी की कटोरी खो गई; सास ने बहू की शिकायत कर दी और पति ने उठाकर लात जमा दी। आज भी उसकी याद करते ही मोती की माँ के रोंगटे खड़े हो आते हैं।

इतने में नवीन आ गया। कुमुद प्रसन्न हो उठी। बोली—'मैं जानती थी कि लालाजी के आने में अधिक देर न लगेगी।'

नवीन मुस्कराकर बोला—'बहूरानी न्याय शास्त्र में दखल रखती हैं। पहले श्रीमती धुँआ को देखा। उससे श्रीमान अग्नि के आविर्भाव का अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं मालूम हुई होगी।'

मोती की माँ ने कहा—'बहूरानी, तुम्हीं ने सीख देकर सिर पर

चढ़ाया है। ये मन में समझते हैं कि तुम इनको देखकर प्रसन्न होती हो, इससे मिजाज कुछ…।'

'मुझे देखकर जो प्रसन्न हो सकती हैं इनमें क्या कम योग्यता है। जिन्होंने मुझे बनाया है उन्हें भी अपनी कलाकृति देकर सन्तोष ही हुआ होगा और जिन्होंने मेरा पाणि ग्रहण किया उनके मन का भाव तो देवो न जनन्ति कुतः मनुष्य।'

'लालाजी, तुम दोनों मिलकर शास्त्रार्थ करो। तीसरा व्यक्ति रहकर बाधा नहीं डालना चाहता। अब मैं जाती हूँ।'

मोती की माँ ने कहा—'यह क्या बात बहन! तीसरा व्यक्ति कौन है? क्या तुम समझती हो कि गाड़ी का किराया खर्च करके वे यहाँ मुझे देखने आये हैं?'

'नहीं, अब चलूँ इनके लिए जलपान भेज दूँ।' यह कहकर कुमुद चली गई।

इक्यावनवाँ परिच्छेद

मोती की माँ ने पूछा—'कुछ खबर है क्या?'

'हाँ है, देर न कर सका। तुम्हारे साथ सलाह करने आया हूँ। तुम तो चली आईं। उसके बाद अचानक भाई साहब मेरे कमरे में चले आये, मिजाज उस समय बहुत खराब था। मामूली कीमत का गिलट का मुलम्मा किया हुआ चुरुट का राखदान मेज पर से गायब हो गया है। जिसने भी उसे लिया है उसने अवश्य ही उसे सोने का समझा है, नहीं तो क्यों व्यर्थ में अपना सत्यानाश करने बैठता। जानती तो हो, मामूली सी कोई चीज इधर-उधर हो जाने से भाई साहब की समस्त सम्पत्ति की नींव मानो हिल जाती है। यह उनके लिए असह्य है। आज सुबह दफ्तर जाते समय मुझसे श्यामा को देश भेजने के लिए कह गये थे। मैं बड़े उत्साह से इस पवित्र कार्य में लग गया। मैंने सोचा था कि उनके दफ्तर से आने के पहले ही यह कार्य निपटा दूँ कि इतने में डेढ़ बजे भाई साहब अचानक आ धमके और बोले कि रहने दो, यह कहकर बाहर जा ही रहे थे कि इतने में

उनकी दृष्टि मेज पर रखी हुई बहूरानी की तसवीर पर पड़ गई। मैं ताड़ गया कि तिरछी नजर को सीधा करके तसवीर देखने में भाई साहब को शरम मालूम होती है। मैंने उन्हें रोकने के लिए कहा—'भाई साहब, जरा ठहरिए। ढाके की एक साड़ी आपको दिखानी है। मोती की माँ की छोटी भौजाई का चौका है उसी में भेजनी है। पर गणेश राम मुझे ठगना चाहता है। आप से उसकी कीमत जाँचनी है। मेरी समझ में तो तेरह रुपये उसके दाम नहीं हो सकते। अधिक से अधिक नौ साढ़े-नौ रुपये की होगी।'

मोती की माँ चकित रह गई। बोली—'यह बात तुम्हारे दिमाग में कहाँ से आ गई? मेरी छोटी भौजाई के चौके की तो अभी कोई सम्भावना ही नहीं। उसकी गोद का बच्चा तो अभी कुल डेढ़ महीने का है। बातें बनाने में आजकल तुम बड़े निपुण हो। यह नई विद्या तुमने कहाँ से सीखी?'

'जहाँ से कालीदास को कवित्व मिला था—वीणा-पाणि से।'

'वीणापाणि जब तक तुम्हें छोड़ न दे तब तक तुम्हारे साथ गृहस्थ कार्य चलना कठिन हो जायगा।'

'मैंने प्रतिज्ञा की है कि स्वर्गारोहण के समय नरक के दर्शन करता जाऊँगा, बहूरानी के चरणों में यही मेरा दान है।'

'पर साढ़े नौ रुपये की साड़ी तुरन्त ही कहाँ मिल गई?'

'कहीं भी नहीं, बीस मिनट के बाद ही वापस आकर कह दिया कि गणेश राम ने वह साड़ी बिना मुझसे कहे ही वापस ले ली है। भाई साहब का चेहरा देखकर समझ गया कि इस बीच में तसवीर ने उनके दिमाग में घुस कर स्वप्न का रूप धारण कर लिया है। न जाने क्यों दुनिया में केवल मेरे ही सामने भाई साहब शील और सङ्कोच से काम लेते हैं। और कोई होता तो उसके सामने तसवीर उठाकर चल देने में उन्हें तनिक भी सङ्कोच न होता।'

'तुम भी तो कम लोभी नहीं हो। भाई साहब को उसे दे ही देते तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाता?'

'दे तो दी, पर ऐसे नहीं दी' मैंने कहा—'भाई साहब, इस तसवीर पर ऑयल पेंटिंग करा के अपने कमरे में लगा लें तो अच्छा रहे।' भाई साहब ने जैसे उदासीन भाव से कहा—'अच्छा देखा जायगा।' यह कह वे तसवीर लिये हुए ऊपर कमरे में चले गये। उसके बाद क्या हुआ इसका ठीक पता नहीं। शायद वे फिर दफ्तर तो नहीं गये। मैंने भी उस तसवीर के मिलने की आशा त्याग दी।'

'जब तुम अपनी बहूरानी के लिए स्वर्ग तक जाने को तैयार हो तब साथ में एक चित्र और सही।'

स्वर्ग के बारे में तो सन्देह है किन्तु तसवीर के बारे में तो तनिक भी सन्देह न था। ऐसी तसवीर जब कभी उतरती है तब दैव से। जिस दुर्लभ लग्न में उसके चेहरे पर लक्ष्मी का प्रसाद पूर्ण रूप से उतर आया था ठीक वही शुभ योग्य उस तसतीर में आ बैठा है। किसी-किसी दिन तो रात में सोते से उठकर, बत्ती जलाकर मैंने तसवीर को देखा है। दिया के उजाले में उसके अन्तर का रूप मानो और बढ़कर दिखाई देता।

'क्यों जी, मेरे सामने तुम्हें इतनी ज्यादती करते तनिक भी डर नहीं लगता ?'

'यदि डर लगता तो तुम्हारे सोचने की बात भी होती, उन्हें देख मेरा आश्चर्य किसी प्रकार जाता ही नहीं। सोचता हूँ, हम लोगों के भाग्य में यह सम्भव कैसे हुआ ? मेरे तो रोयें खड़े हो जाते हैं। जब मैं सोचता हूँ कि मुझ पर बहूरानी का अधिकार है और वे मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति को पास बुलाकर खिला-पिला सकती हैं। संसार में यह इतना सहज हुआ कैसे ? हमारे परिवार में सबसे बढ़कर अभागे भाई साहब हैं। जो चीज उन्हें इतनी सरलता से मिले उसे ऐसी कठिनता से बाँधने बैठे कि खो दिया।'

'क्यों जी, बहूरानी की बातें करने में तुम्हारा मुँह जब खुलता है तब बन्द होने का नाम नहीं लेता। यह बात क्या है ?'

'और मैं यह देखता हूँ कि बहूरानी की बात तुम्हें जरा क्यों खटकती है ?'

'नहीं, कदापि नहीं।'

'हाँ, प्रसङ्गवश एक बात—छोटी सी और याद आ गई। नूरनगर के स्टेशन पर पहले बहूरानी के भैया को देखकर तुमने चलती बोली में जो बात कही थी उसे भी ज्यादती कहा जा सकता है।'

'अच्छा, अच्छा, इन सब तर्कों को रहने दो, तुम जो कहना चाहते थे सो कहो।'

'मुझे तो जान पड़ता है कि भाई साहब आज ही कल में बहूरानी को बुलवा भेजेंगे। मुझे मालूम है कि बहूरानी के इतने आग्रह में मायके आने और फिर इतने दिन हो जाने पर भी जाने का नाम न लेने से उनका अभिमान अपनी सीमा को पहुँच गया है। यह बात भाई साहब की समझ में आती ही नहीं कि सोने के पिंजड़े में भी चिड़िया को प्रसन्नता क्यों नहीं होती।'

'यह तो अच्छी बात है कि जेठ जी ही बुला लें। बात तो यही थी।'

'मेरे विचार में तो यदि बहूरानी बुलाने के पहले ही चली जायँ तो अच्छा है। भाई साहब के अभिमान की ही जीत सही। इसके अतिरिक्त विप्रदास बाबू भी यही चाहते हैं कि बहूरानी चली जायँ। मैंने ही मना कर दिया था।'

विप्रदास के साथ आज जो बातें हुई उसका मोती की माँ ने तनिक भी आभास न दिया। बोली—'विप्रदास बाबू के पास जाकर कहो तो सही।'

'मैं जाता हूँ, वे सुनकर प्रसन्न होंगे।'

इतने में कुमुद ने दरवाजे के पास आकर बाहर से ही कहा—'भीतर आ सकती हूँ?'

मोती की माँ बोली—'तुम्हारे लालाजी तो बैठे प्रतीक्षा कर ही रहे हैं।'

'मैं तो जन्म से ही प्रतीक्षा कर रहा था। अब दर्शन मिले हैं।'

'वाह लालाजी, तुमने इतनी बातें बनाना सीखा कहाँ से?'

'मुझे स्वयं अचरज होता है, समझ में नहीं आता।'

'अच्छा, [illegible] भोजन करने चलो।'

भोजन से पहले एक बार तुम्हारे भैया से मिल लूँ, बातचीत करनी है।'

'यह नहीं हो सकता।'

'क्यों?'

'आज भैया बोले बहुत हैं, आज रहने दो।'

'एक अच्छी खबर है।'

'होने दो, बल्कि कल चले आना। आज कोई भी बात नहीं।'

'कल शायद छुट्टी न मिले, सम्भव है कोई विघ्न पड़ जाय। बस आज केवल दस मिनट के लिए मिल लेने दो। कोई हानि न होगी, बल्कि तुम्हारे भैया खुश होंगे।'

'अच्छा, पहले तुम नाश्ता कर लो, उसके बाद मिलना।'

नाश्ता कराने के बाद कुमुद नवीन को विप्रदास के कमरे में ले गई। वे उस समय भी सोये नहीं थे। घर में दिये की लौ मन्द पड़ने से घर में अँधेरा था। खुले बङ्गले में से तारे दिखाई दे रहे हैं। रह-रह कर दक्षिणी वायु तीव्र गति से चली आ रही है। घर के पर्दे, बिछौने की झालर, अलगनी पर टँगे विप्रदास के कपड़े भाँति-भाँति की छाया फैलाते हुए काँप रहे हैं। विप्रदास कुछ लेटे से चुपचाप बैठे हैं। आगे बढ़ने में नवीन के पैर नहीं उठते। सन्ध्या की छाया और रोगशीर्णता ने विप्रदास को एक आवरण दे डाला है। जान पड़ता है वे मानो इस संसार से बहुत दूर—अन्य लोक में हैं। जान पड़ता है मानो उनके समान अकेला संसार में दूसरा कोई व्यक्ति नहीं।

नवीन को समझने में देर न लगी कि इस आलोचना में कुमुद की माँ की ईर्ष्या का भाव भी निहित है यह भी सत्य है कि स्त्रियों के लिए पारिवारिक बन्धन का मूल्य बहुत अधिक होता है। इसी से नवीन ने इस विषय में व्यर्थ तर्क न करके कहा—'और कुछ दिन देख लें। भाई साहब के आग्रह को भी थोड़ा और बढ़ जाने दो। इसमें हानि ही क्या है।

बावनवाँ परिच्छेद

मधुसूदन के घर में श्यामा का स्थान पक्का हो गया। इससे वह प्रत्याशा कर सकती थी। किन्तु इस बात का उसे अनुभव होता ही नहीं। पहले तो उसे विश्वास हो गया था, कि घर के नौकर चाकरों पर उसको पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया है किन्तु इधर वह कदम-कदम पर अनुभव कर रही है कि वे उसे इस रूप में ग्रहण करने को तैयार नहीं हैं। यही नहीं, वे यदि खुल्लम-खुल्ला उसकी अवज्ञा कर सकें तो सम्भवतः उन्हें बड़ा सन्तोष और खुशी प्राप्त होगी, यह स्थिति है। श्यामा इसी कारण बहुधा उनके दोष पकड़ती और डाटती-डपटती रहती है। अभी कुछ ही दिन पूर्व श्यामा की इसी घर में कोई गिनती न थी—लोगों की इस धारणा को बदलने के लिए उसने प्रयत्न शुरू किये थे, किन्तु कोई परिणाम न निकला, घर के एक नौकर ने श्यामा की डाँट-फटकार के विरोध में काम छोड़ दिया था, इसलिए श्यामा को विवश होकर झुकना पड़ा था। इसका एक कारण यह भी था कि मधुसूदन में अपने धन भाग्य के विषय में कुछ अन्ध संस्कार मौजूद है। जो कर्मचारी उसकी आर्थिक उन्नति के समय के हैं, उनकी मृत्यु अथवा काम छोड़ने को भी वह अशुभ समझता है। इसका एक नमूना उसके दफ्तर में एक पुराने डेस्क के रूप में देखा जा सकता है, जो केवल इसलिए रक्खा है कि मधुसूदन को अपनी पुरानी अवस्था याद दिलाता रहे। दधिया नामक उड़िया नौकर ने जब अपना इस्तीफा पेश किया तब मधुसूदन ने न केवल उसे अस्वीकार कर दिया बल्कि उसे तरक्की भी दे दी। इस घटना ने श्यामा को काफी सावधान कर दिया। वह मधुसूदन को हृदय से चाहती थी। इसी कारण उसने कभी मधुसूदन पर कोई अनुचित दबाव डालने की हिम्मत न की। मधुसूदन भी श्यामा के विषय में सोचने अथवा चिन्ता करने को व्यर्थ समझता है।

एक साधारण घटना से कुछ दिन पहले श्यामा के कदम उखड़ गये थे, उसकी वह आदत पान तम्बाकू की भाँति सस्ती किन्तु प्रबल थी। उसमें व्याघात होने से मधुसूदन के कार्य में बाधा पड़ेगी, इस आशङ्का से

इस बार श्यामा का दण्ड रद्द हो गया, किन्तु उसका भय बना ही रहा।

अपनी कमजोर अवस्था के कारण श्यामासुन्दरी के मन में एक आशङ्का उठती रहती थी कि न जाने कब कुमुदिनी इस घर पर आकर अधिकार कर ले। इस ईर्ष्या की पीड़ा उसको हर समय व्याकुल रखती है। उसे मालूम है कि कुमुद के साथ उसकी प्रतियोगिता चलनी कठिन है। दोनों का एक क्षेत्र नहीं है। कुमुद मधुसूदन के अधिकार के बाहर है, वही उसका जोर है और श्यामा ने कितनी ही बार रोग माँगा है। मन में मरने तक की इच्छा ला चुकी है। उसने तकदीर ठोंककर यह भी कहा है कि—'मैं इतनी सस्ती नहीं हुई।' फिर बाद में सोचा सस्ती ही होने के कारण तो यह जगह मिल गई है। कीमती का आदर ज्यादा है और जो सस्ती है सम्भवतः वह अपने सस्तेपन ही के कारण जीत जाती है।'

श्यामासुन्दरी को मधुसूदन ने जब तक ग्रहण न किया था तब तक उसे इतना असह्य दुःख न था। अपने उपवासी भाग्य को उसने एक प्रकार से स्वीकार ही कर लिया था। उसने बिलकुल थोड़े को भी कभी पूरी खूराक माना है। आज भी अधिकार पाया या न पाया में किसी प्रकार का सामञ्जस्य नहीं, किन्तु अब खोया के डर से मन आतङ्कित हो उठा है। भाग्य की रेल रूपी लाइन इस भाँति बिछा दी गई है कि रेल के प्रतिक्षण पटरी पर से उतरने का खटका है। मोती की माँ के पास पहुँच कर साफ मन से बात करके सान्त्वना पाने की उसने कोशिश की थी, किन्तु सिर हिलाकर झुँझलाहट के साथ वह ऐसा निकल गई कि यदि कोई उसका घातक यदि उसका बदला लेती तो शीघ्र ही लेती। किन्तु वह जानती है कि घर के इन्तजाम के विषय में मधुसूदन मोती की माँ की काफी कदर करता है, वह जरा भी धक्का नहीं सह सकता। तभी बोल-चाल बन्द है, साथ ही मुँह देखा-देखी भी नहीं। इस प्रकार श्यामा का इस घर में स्थान अब पहले से भी सङ्कीर्ण हो गया है। उसे कहीं भी स्वच्छन्दता नहीं।

इतने ही में एक दिन उसे सोने के कमरे में दीवाल से लगा हुआ एक ओर लगा कुमुद का फोटोग्राफ दिखाई पड़ा। जो वज्र उसके सिर पर आकर गिरता वही अपनी एक शिखा-सा दिखा गया। काँटे में फँसी हुई मछली की भाँति उसका दिल तड़फड़ाने लगा। मन में आया कि चित्र से दृष्टि घुमा ले, किन्तु ऐसा न कर सकी। एकटक देखती रही—चेहरा फक पड़ गया, आँखें जलने लगीं, मुट्ठी को कस कर बाँध लिया, इच्छा होने लगी कि किसी वस्तु को तोड़-फोड़ डाले। इस आशङ्का से कि शायद इस घर में रह कर वह कोई चीज नुकसान न कर डाले, भाग कर वह बाहर चली गई। अपने घर के भीतर बिछौने पर जा कर पड़ रही और बिस्तर पर बिछी चादर के उसने टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

रात हो गई। बैरा ने बाहर से खबर दी कि महाराज ऊपर बुला रहे हैं। उसमें यह कहने की हिम्मत कहाँ, कि न आऊँगी। झटपट उठी, हाथ मुँह धोकर ढाके की बूटेदार साड़ी पहनी और ऊपर से खुशबू छिड़क कर मधुसूदन के कमरे में गई। वह भरसक इसका प्रयत्न करती कि उसकी दृष्टि उस तसवीर पर न जाय, किन्तु ठीक तसवीर ही के सामने बत्ती है। उसके पूर्ण प्रकाश ने मानो किसी की दीप्त दृष्टि की तरह उस तसवीर को उद्भासित कर रक्खा है। समस्त घर में वही चीज देखने योग्य हो गई है। नियमानुसार पानदान से श्यामा ने पान निकाल कर मधुसूदन को दिया। उसके बाद पैरों के समीप बैठ पैरों पर हाथ फेरने लगी। किसी कारण से आज मधुसूदन प्रसन्न था। विलायती दुकान से एक चाँदी का फोटोग्राफ का फ्रेम खरीद लाया था—गम्भीर मुद्रा में उसने कहा—'यह लो, श्यामा के साथ लाड़-प्यार करते वक्त भी वह कुछ कञ्जूसी का उपयोग करता है, क्योंकि वह समझता है कि जरा भी शह देने से वह फिर उसकी मर्यादा नहीं रख सकती। फ्रेम एक ब्राउन कागज में लिपटा हुआ था। धीरे से कागज को खोल कर श्यामा बोली—'इसका क्या होगा ?'

मधुसूदन बोला—'इसे नहीं जानती ? इसमें फोटोग्राफ रखा जाता है।'

श्यामा की छाती में मानो खींचकर किसी ने एक हंटर मारा हो। बोली—'किसका फोटोग्राफ रखोगे?'

'तुम खुद अपना रखना। उस दिन जो वह फोटो उतरवाया था।'

'मुझे इतने सुहाग का करना क्या है!' यह कहकर उसने फ्रेम धरती पर पटक दिया।

आश्चर्य में डूब मधुसूदन बोला—'इसके क्या मानी?'

'इसके मानी कुछ नहीं।'—कहकर हाथों से मुँह ढक कर रोने लगी। उसके बाद बिछौने से उठकर जमीन पर पड़कर सिर धुनने लगी। मधुसूदन ने सोचा—शायद इसकी इच्छा एक ऊँचे दाम के गहने की थी, इसे यह कम कीमत की चीज पसन्द नहीं आई। ऑफिस में दिन भर काम करके शाम को घर आकर उसने जो यह उपद्रव देखा तो उसे यह बहुत बुरा लगा। यह हिस्टीरिया के समान है। उसे हिस्टीरिया से चिढ़ भी अधिक है। कड़क कर बड़े जोर से बोला—'उठो, जल्दी उठो!'

तेजी के साथ उठकर श्यामा घर से बाहर चली गई। मधुसूदन ने कहा—'यह सब यहाँ किसी भी भाँति नहीं चल सकता।'

मधुसूदन श्यामा को अच्छी तरह जानता है। वह पूर्ण रूप से यही समझता था कि अभी आती होगी। आते ही पैर पकड़कर माफी माँगेगी, उस समय डाँट कर उसे समझा देगा।

दस बज गये। श्यामा नहीं आई। एक बार श्यामा के दरवाजे के बाहर से आवाज आई—'महाराज बुलाते हैं।'

श्यामा ने कह दिया कि महाराज से कह दो, मेरी तबीअत ठीक नहीं है।

मधुसूदन सोचने लगा—'इतनी हिम्मत! इतनी शेखी बढ़ गई है कि हुक्म पाकर भी आने से इनकार करती है।'

मन में सोचा कि और थोड़ी देर बाद आवेगी, किन्तु आई नहीं। अब ग्यारह बजने में केवल पन्द्रह मिनट शेष रह गये थे, तेजी से चलकर वह श्यामा के घर के अन्दर घुसा, देखा, अँधेरा पड़ा है। अँधेरे में भी साफ दिखाई पड़ा—श्यामा जमीन पर पड़ी है। मधुसूदन ने सोचा—

वह सब मनावन करने के लिए नखरे मात्र हैं।

वह तड़प कर बोला—'उठ कर सीधे चलो, जल्दी उठो। नखरे मत दिखाओ।'

बिना कुछ कहे-सुने श्यामा पीछे-पीछे उठ कर चल पड़ी।

तिरपनवाँ परिच्छेद

ऑफिस जाने के पूर्व दूसरे दिन जब मधुसूदन भोजन करने के बाद आराम करने ऊपर गया तो उसे टेबिल पर तसवीर दिखाई न पड़ी। आज प्रतिदिन की भाँति श्यामा पान लेकर मधुसूदन की सेवा में उपस्थित न थी। जब उसे बुलवाया गया तो वह वहाँ आ तो गई किन्तु साफ मालूम हो रहा था कि वह सशङ्क है। मधुसूदन ने पूछा—'टेबिल के ऊपर की तसवीर क्या हुई?'

अत्यन्त आश्चर्य का बहाना करते हुए बोली—'तसवीर! कौन सी तसवीर?'

यह बहाना आवश्यकता से अधिक था। साधारण पुरुषों की बुद्धि पर स्त्रियों की अश्रद्धा होती है इसी कारण ऐसा हुआ।

क्रोध में आकर मधुसूदन बोला—'तुमने तसवीर देखी नहीं?'

भलमनसाहत के साथ श्यामा बोली—'नहीं तो?'

तड़पकर मधुसूदन बोला—'झूठ बोल रही हो!'

'मुझे झूठ बोलने की क्या आवश्यकता है, भला तसवीर लेकर मैं करूँगी ही क्या!'

'कहाँ रखी है, उसे निकालकर लाओ, जल्दी से लाओ। नहीं तो परिणाम बुरा होगा।'

'हे ईश्वर यह क्या बला है! तुम्हारी तसवीर पाऊँ कहाँ जो निकाल कर लाऊँ?'

बैरा बुलाया गया। उससे मधुसूदन ने कहा—'जरा मझले बाबू को बुला तो लाओ।'

नवीन के आते ही मधुसूदन बोला—'बड़ी बहू को बुला लो।'

श्यामा मुँह बनाये कठपुतली की भाँति खड़ी रही।

सिर खुजलाते हुए नवीन ने कुछ देर बाद कहा—'भाई साहब, तुम्हारा ही वहाँ जाना अच्छा होगा। ऐसा करने से बहूरानी प्रसन्न भी हो जायेंगी।'

मधुसूदन कुछ देर विचार में डूबा रहा और हुक्का पीता रहा, फिर बोला—'बहुत अच्छा, कल इतवार है, कल ही जाऊँगा।'

नवीन ने अपनी स्त्री के पास जाकर कहा—'मैं एक काम कर आया हूँ।'

'बिना मेरी सलाह लिये ही?'

'सलाह लेने का वक्त ही न था।'

'तब तो यही जान पड़ता है कि तुम बाद में पछताओगे।'

'इसमें सन्देह नहीं। अपनी स्त्री ही जन्म-पत्री में बुद्धि की जगह है और कोई ग्रह नहीं, अतएव इसी से मैं तुम्हें अपने आस-पास रखकर चलता हूँ। यह बात है कि भाई साहब ने आज बड़ी बहू को बुलाने का हुक्म दिया है। मैंने तुरन्त ही कह दिया था, यदि तुम स्वयं ही बुलाने जाओ तो बड़ा अच्छा हो। भाई साहब राजी हो गये। मैं तभी से सोचता हूँ कि इसका क्या नतीजा होगा?'

'ठीक न होगा। विप्रदास बाबू का जैसा मिजाज देखा इस सम्बन्ध में वे क्या कहेंगे, इसका कुछ ठीक नहीं। तुमने आखिर ऐसा किया क्यों? कहीं अन्त में घोर युद्ध न छिड़ जाय?'

'इसका प्रथम कारण तो यह था कि बुद्धि उस समय ठिकाने न थी—'तुम दूसरी जगह थी। दूसरा कारण उस दिन जब बहूरानी ने कहा था कि 'मैं नहीं जाऊँगी तो।' तो मैंने उसके भीतरी अर्थ को जान लिया था। उसके भैया बीमारी की अवस्था में कलकत्ता आये, उस समय एक दिन के लिए भी महाराज उनसे मिलने नहीं गये। उनकी इस भाँति की उपेक्षा उन्हें बहुत ही खटक रही थी।'

इन सब बातों को सुनकर मोती की माँ चौंक-पड़ी। उसे आश्चर्य इस बात पर बहुत हुआ कि उसका ध्यान आज तक इन बातों पर क्यों नहीं आया। ठीक बात तो यह है कि ससुराल के बड़प्पन पर उसे घमण्ड है, यद्यपि यह बात उसे स्वयं ही नहीं मालूम है। उसका मन इस बात की गवाही नहीं देता कि दूसरे साधारण व्यक्तियों की भाँति मधुसूदन के ऊपर भी नातेदारी की जिम्मेदारी है।

उस दिन की बात को दोहराते हुए नवीन बोला—'शायद अपनी बुद्धि से यह बात ध्यान में नहीं आती, तुम्हीं ने तो मुझे याद दिलाई थी।'

'वह किस प्रकार ?'

'उस दिन तुम्हीं ने कहा था कि नातेदारी की जिम्मेदारी आत्म अभिमान से भी बढ़कर है। इससे मुझे यह समझने का साहस हुआ था कि मधुसूदन ऐसे बड़े व्यक्ति को भी विप्रदास से मिलने जाना आवश्यक था।'

भला मोती की माँ कब हार मानने लगी, उसने बात टाल दी—'काम के वक्त भी इस प्रकार की ऊटपटाँग बातें की जाती हैं ! पहले यह तो सोचो कि क्या करना चाहिए।'

'सभी बातों में पहले सोचना धोखे का मूल कारण होता है। नजदीक की बात को भले ही पहले सोचना चाहिए। भाई साहब का विप्रदास से मिलने जाना और वहाँ जाकर मिलने पर क्या नतीजा निकलेगा, इस की चिन्ता करना अपनी चिन्ताशीलता का परिचय देना होगा किन्तु यह तो महानशीलता होगी।'

'जानती नहीं, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि बड़ी ही मुश्किल होगी।'

चौवनवाँ परिच्छेद

कुमुद उस दिन अपने भैया के बारे में बैठी बहुत देर तक गाती-बजाती रही। प्रातःकाल की सुरीली व्यक्तिगत पीड़ा संसार की एक चीज बनकर दिखाई देती है, उसे बन्धन से छुट्टी मिलती है। मानो महादेव की जटा में साँप गहने बनकर शोभा बढ़ाते हैं। दुःख की नदियाँ दु खरूपी

समुद्र में जाकर विलीन होती हैं। उनका रूप चञ्चलता को नष्ट कर गम्भीरता में लुप्त होकर बदल जाता है। साँस लेते हुए विप्रदास बोले—'कुमू, संसार में क्षुद्र काल ही सत्य दीख पड़ता है। चिरकाल तो ओट में रहता है, सामने चिरकाल ही गाने में भी आता है, क्षुद्रकाल तो तुच्छ बनकर मुक्ति दिलाता है।'

किसी ने आकर सूचना दी—'महाराज मधुसूदन आये हैं।'

इस समाचार को सुनकर कुमुद का चेहरा उतर-सा गया। उसकी दशा देख विप्रदास को गहरी चोट लगी। वे बोले—'कुमू, तू अब अन्दर जा सकती है, शायद अब तेरी जरूरत न होगी।'

तेजी से कुमुद चली गई। मधुसूदन जानबूझकर बिना खबर दिये ही आया है। उसके मन में यह बात थी कि उसके पक्षवाले देखें आयोजन के दैन्य को किस भाँति ढँकते हैं। मधुसूदन के मन में यह धारणा है कि बड़े घराने के आदमी होने के कारण विप्रदास के मन में एक प्रकार का बड़प्पन है। इस कल्पना को वह सहन नहीं कर सकता, इसी कारण वह इस प्रकार आया मानो मिलने के लिए नहीं अपितु दर्शन के लिए आया है।

मधुसूदन की पोशाक और विचित्र वेश इस भाँति के थे कि जिससे घर के दास-दासियाँ, नौकर आदि सभी उसके ऊपर मुग्ध हो जायँ। धारीदार विलायती शर्ट के ऊपर एक रङ्गीन फूलदार सिल्क की वास्कट है, कन्धे के ऊपर बढ़िया तह की हुई चद्दर है, शान्तिपुरी काले किनारे की चुन्नटदार धोती पहन रखी है, पैरों में काले रङ्ग के वार्निशदार जूते हैं। अँगुलियाँ हीरे और पन्नों की अँगूठियों से झिलमिल कर रही हैं। पेट के नीचे तक मोटी सुनहली घड़ी की चेन लटक रही है। हाथ में एक चौकोनी छड़ी है जिसका हत्था जहाँ हाथ से पकड़ा जाता है, हाथी के मुँह की शकल का है और उस पर अनेकों प्रकार के रत्न जड़े हैं, नमस्कार का अन्तिम शब्द कहते हुए मधुसूदन तपाक से पलङ्ग के पास पड़ी हुई आराम कुर्सी पर बैठ गया और कहने लगा—'विप्रदास बाबू, कहिए अब कैसी

तबीअत है ? शरीर तो उतना अच्छा नहीं जान पड़ता !'

बिना कुछ उत्तर देते हुए ही वे बोले—'तुम्हारा शरीर तो अच्छा मालूम पड़ता है।'

'बहुत अच्छा हो, ऐसा तो नहीं कह सकता—रोज सायंकाल सिर में दर्द होने लगता है और भूख कम लगती है। खाने-पीने में यदि तनिक भी असंयम हुआ कि तकलीफ हो जाती है। और कभी-कभी तो रात्रि में नींद नहीं आती जिसके कारण महान कष्ट होता है।'

इस इतनी बड़ी भूमिका से साफ मालूम पड़ा कि एक आदमी की हर वक्त जरूरत है। इस पर विप्रदास ने कहा—'शायद ऑफिस के काम में आपको अधिक परिश्रम करना पड़ता है ?'

'नहीं, ऐसी बात नहीं है, ऑफिस का काम अपने आप चला जा रहा है मुझे कुछ वैसा काम है नहीं। सम्पूर्ण जिम्मेदारी कैप्टन साहब के ऊपर है, साथ ही सर ऑर्थर जिन्दी भी मेरी बड़ी सहायता करते हैं।'

पेचवान आया, नौकर ने पनडब्बा के साथ ही साथ सुपारी, इलायची और जर्दा आदि भी आगे बढ़ाया। मधुसूदन ने केवल एक इलायची उठा कर मुँह में डाल ली बाकी कुछ न लिया। पेचवान का नल दो तीन बार मुँह में लगाया फिर उसे बायें हाथ में लेकर बैठे रहे। भीतर से यह खबर आई कि नाश्ता तैयार है। उतावली में आकर मधुसूदन ने कहा—'नहीं, यह तो असम्भव है। मैंने तो पहले ही कह दिया है कि खाने-पीने के सम्बन्ध में बड़े परहेज से चलना है।'

विप्रदास ने फिर दूसरी बार विशेष अनुरोध करके नौकर से कहा—'बुआ जी से कह दो कि उनकी तबीअत ठीक नहीं अतएव वे कुछ खायेंगे नहीं।'

विप्रदास चुप बैठे रहे। मधुसूदन को पूरी आशा थी कि कुमुद के विषय में ये स्वयं जिक्र चलायेंगे, क्योंकि आज उसे आये बहुत दिन हो गये, किन्तु वे तो कुमुद का नाम ही न लेते थे। मन ही मन उसे क्रोध आने लगा। वह सोचने लगा, मैंने यहाँ आकर गलती की। यह सब

नवीन ही की बदमाशी है। उसका मन अभी ही लौटकर उसे बड़ी सजा देने के लिए तड़फड़ाने लगा।

इतने ही में आँखों पर घूँघट काढ़े मामूली काले किनारे की सफेद साड़ी पहने कुमुद आ पहुँची। विप्रदास का ऐसा विश्वास न था अतएव वे आश्चर्य में आ गये। पहले पति के फिर भैया के चरण छूकर कुमुद बोली—'भैया की तबीअत खराब है, उन्हें बड़ी कमजोरी है। डॉक्टर ने उन्हें अधिक बात करने तक की मनाही कर दी है, अतएव तुम बस बगल के कमरे में चले आओ।'

मधुसूदन का चेहरा सुर्ख हो गया। वह जल्दी से उठ खड़ा हुआ। पेचवान की नली हाथ से छूट कर जमीन पर गिर पड़ी, विप्रदास के मुँह की ओर बिना देखे ही बोला—'अच्छा, मैं अब जा रहा हूँ।'

पहले उसके मन में आया कि दनदनाता हुआ सीधा वह जाकर गाड़ी पर बैठ जाय और घर चला जाय, किन्तु उसका मन दूसरी ओर घूम गया। बहुत दिन बाद आज कुमुद दिखाई पड़ी है। पहले पहल इस प्रकार के सीधे सादे कपड़े पहने उसने उसे आज ही देखा है। इतनी संयत, इतनी सरल और इतनी सुन्दर मधुसूदन को वह कभी न दीख पड़ी थी। मधुसूदन के घर वह थी बनी-ठनी बहू जैसे बाहर की लड़की। मानो आज वह उसे बहुत पास से दिखाई पड़ी—कैसी सरल सौम्य मूर्ति है! मधुसूदन का जी चाहने लगा—तनिक भी देरी न करके यह आज ही लिवा ले जाय। वह मेरी है, मेरी होते हुए मेरे घर की है, मेरे सारे तन और मन की है। उनका मन इसी को घुमा फिराकर कहना चाहता है।

बगल के कमरे में सोफे के ऊपर इशारा करके कुमुद ने जब उसे बैठने को कहा तो उसे बैठना ही पड़ा। यदि नितान्त बाहर का कमरा न होता तो वह कुमुद का हाथ पकड़कर उसे सोफे पर पास बिठा लेता। कुमुद बैठी नहीं, बल्कि एक कुर्सी के पीछे उसकी पीठ पर हाथ रखकर खड़ी रही। बोली—'क्या मुझ से कुछ कहना चाहते हो?'

इस प्रकार का यह प्रश्न मधुसूदन को अच्छा नहीं लगा। उसने

कहा—'घर नहीं चलोगी ?'

'नहीं।'

चौंक कर मधुसूदन ने कहा—'आखिर बात क्या है ?'

'तुम्हें तो मेरी जरूरत नहीं।'

मधुसूदन ने समझा—श्यामा की बात शायद इसने सुन ली है, अतएव उसी का अभिमान है। यह अभिमान उसे अच्छा ही लगा। बोला—'तुम तो ऐसी बात करती हो जिसका कोई ठीक नहीं। जरूरत नहीं तो और क्या है ? भला सूना घर कौन पसन्द करता है ?'

'इसमें वादविवाद न कर संक्षेप में कुमुद ने कहा—'नहीं, मैं न जाऊँगी।'

'इसका क्या मतलब ? घर की बहू घर न जाओगी ?'

संक्षेप में कुमुद बोली—'नहीं।'

सोफे से उठकर मधुसूदन बोला—'क्या कहा ! नहीं जाओगी, तुम्हें जाना ही होगा !'

कुमुद के कुछ जवाब न देने पर मधुसूदन ने कहा—'जानती हो, चुटिया पकड़कर पुलिस के जरिए तुम्हें ले जा सकता हूँ। नहीं कहने से काम थोड़े ही चलेगा।'

कुमुद चुप बनी रही। लड़ते हुए मधुसूदन बोला—'मालूम होता है तुमने फिर भैया के स्कूल में नूरनगरी चाल सीखना शुरू कर दिया।'

तिरछी नजर से भैया के कमरे की ओर देखती हुई बोली—'चुप हो जाओ ! इस प्रकार चिल्ला कर बातें नहीं की जाती।'

'क्यों, क्या तुम्हारे भैया से डरते हुए बातें करनी होगी ? मुझे मालूम है, कि यदि मैं चाहूँ इसी क्षण घर से निकाल बाहर सड़क पर खड़ा कर सकता हूँ।'

कुमुद ने दूसरे ही क्षण देखा कि भैया दरवाजे पर आकर खड़े हो गये हैं। लम्बा कद है, दुबला-पतला शरीर, पांडुवर्ण मुख, बड़ी-बड़ी आँखें अग्नि बरसा रही हैं। एक मोटी सफेद चादर ओढ़े हैं, जिसका एक

छोर जमीन पर लटक रहा है। कुमुद से कहा—'आ कुमू, मेरे कमरे में आ जा।'

चिल्ला कर मधुसूदन बोला—'तुम्हारी यह हिमाकत देखी जायगी! यदि नूरनगरी का नूर न मिटा दिया तो मेरा नाम मधुसूदन नहीं।'

विप्रदास कमरे में पहुँचकर बिछौने पर लेट गये। नींद से नहीं बल्कि थकावट और चिन्ता से आँखें मूँद लीं। सिर के पास बैठकर कुमुद पङ्खा झलने लगी। अधिक देर हो जाने पर क्षेमा बुआ आकर बोली—'कुमू, क्या तू आज खायेगी नहीं? रात तो अधिक बीत गई?'

विप्रदास ने आँखें खोलकर कहा—'कुमू, जा खा आ। जरा अपने कालू भैया को मेरे पास भेज देना।'

कुमुद बोली—'भैया, मैं तुम्हारे चरण छूती हूँ, तुम जरा अभी सोने की कोशिश करो। कालू भैया से क्या कहोगे?'

मुँह से कुछ न कहकर विप्रदास पीड़ित हृदय से कुमुद की ओर देखते रहे। कुछ देर बाद गहरी साँस लेकर आँखें मींच लीं। धीरे से उठकर कुमुद बाहर हो गई और दरवाजा भेड़ दिया।

कुछ देर बाद समाचार मिला कि कालू मिलना चाहता है अतएव वह उठकर तकिये के सहारे बैठ गये।

कालू ने कहा—'थोड़ी देर रुककर जमाई बाबू चलते बने। इसमें क्या बात है? क्या कुमुद के विषय में उन्होंने कुछ कहा था?'

'हाँ, कहा तो था, पर कुमुद जायगी नहीं, उसने उन्हें जवाब दे दिया है।'

डरते हुए कालू ने कहा—'भाई साहब, क्या कहते हो? तब तो जान लो सर्वनाश हो गया।'

'हमें तो सर्वनाश से डर है नहीं, यदि डरना है तो केवल असम्मान और अपमान से।'

'तो तैयार हो जाओ, देर करना उचित नहीं। खून से भरे होने के कारण वह जायगा कहाँ!' यह तो मुझे ज्ञात है कि मजिस्ट्रेट को नीचा

दिखाने के लिए तुम्हारे पिता ने कम से कम दो लाख रुपये की हानि उठाई थी। यह तुम लोगों का पैतृक धन्धा-सा हो गया है कि छाती खोल कर विपत्ति को आमन्त्रित करते रहो। हमारे खानदान में यह बात न थी, इसी से तुम लोगों का यह पागलपन मुझसे नहीं देखा जाता। किन्तु अब बचे ही कैसे?'

ऊँचे उठे हुए बायें घुटने के ऊपर दाहिने पैर को रखकर तकिये के सहारे विप्रदास बाबू लेट गये और आँखें मींचकर कुछ सोचने लगे। अन्त में सोच-विचार कर बोले—'लिखा-पढ़ी की शर्त के अनुसार छः महीने का बिना नोटिस दिये मधुसूधन हमसे रुपया माँग ही नहीं सकता।'

असाढ़ महीने में सुबोध आ ही जायेगा। कहीं न कहीं प्रबन्ध हो ही जायगा।

कालू ने ज़रा क्रोध में ही कहा—'हाँ, प्रबन्ध हो जायेगा। बत्तियाँ एक साथ बुझतीं, किन्तु ऐसा न होकर एक-एक भद्रता से बुझेंगी।'

'बिलकुल ही नीचे के खाने में आकर बत्ती जल रही है। उसे फरांस जैसे चाहे वैसे बुझा सकता है। उसमें अधिक हाय तोबा मचाने की कोई आवश्यकता नहीं। आखिरी प्रकाश के लिए अब प्रयत्न करना अच्छा नहीं। इसी से तो पूर्ण अन्धकार ही भला, जिसमें कि पूरी शान्ति मिलती है।'

कालू के हृदय को चोट लगी। वह समझ गया, यह सब अस्वस्थ आदमी के विचार हैं। विप्रदास तो इस प्रकार के निराशावादी थे नहीं। परिणाम को न बढ़ने देने के लिए विप्रदास अब तक तरह-तरह के प्लान सोचा करते थे। उन्हें आशा थी कि बचा लेंगे। किन्तु अब आशा को कौन कहे, उस बात को वे सोच भी नहीं सकते।

कालू ने करुण दृष्टि से विप्रदास की ओर देखते हुए कहा—'भाई साहब, तुम्हें चिन्ता करने की कोई बात नहीं, जो कुछ करना होगा उसे मैं समझ लूँगा। जाऊँ ज़रा एक बार दलालों के यहाँ मैं घूम आऊँ।'

अङ्गरेजी में लिखी हुई मधुसूदन की एक चिट्ठी विप्रदास बाबू के नाम

दूसरे ही दिन आ पहुँची। उसकी भाषा वकीली ढङ्ग की थी जो कि सम्भवतः किसी अटर्नी से लिखाई गई थी। वह पूर्णरूप से यह जानना चाहता है कि वे कुमुद को भेजेंगे या नहीं ? इसके बाद शायद उचित कार्रवाई करे।

विप्रदास ने कुमुद से पूछा—'कुमू, तुमने भली प्रकार सोच-समझ लिया है न ?'

कुमुद बोली—'मैंने तो सोचना बन्द कर दिया है। इसी से आज मेरा मन खूब निश्चिन्त है। मुझे ठीक ऐसा ही लगता है कि जिस प्रकार मैं पहले यहाँ थी, अब भी वैसे ही हूँ। बीच की सब घटनाएँ स्वप्न मात्र है।'

'यदि तुझे जबरन ले जाने का प्रयत्न किया गया तो तू अपने को सँभालेगी ?'

'यदि तुम्हारे ऊपर कोई जुल्म न हुआ तो मैं अपने को पूर्णरूप से सँभाल सकती हूँ।'

'इसलिए पूछ रहा हूँ कि यदि अन्त में तुझे वहाँ जाना ही पड़ा तो तू वहाँ जितनी ही देर करके जायगी उतनी ही बुराई है। उन लोगों के सम्पर्क में रहने के कारण उनके सम्बन्ध-सूत्र से तेरा मन कहीं भी बँधा तो नहीं है ?'

'तनिक भी नहीं, केवल नवीन, मोती की माँ तथा हाबलू से मेरा प्रेम हो गया है किन्तु वे भी दूसरे के घर के समान जान पड़ते हैं।'

'कुमुद ! देखा, वे ऊधम मचावेंगी। समाज और कानून के जोर से उन्हें उपद्रव करने का अधिकार है इसलिए उनकी तो उपेक्षा करनी ही पड़ेगी। ऐसा करने में लाज, सङ्कोच तथा भय इन सब को छोड़ मनुष्य-समाज के सामने खड़ा होना पड़ेगा। भीतर बाहर चारों ओर बदनामी का तूफान उठ खड़ा होगा और उसी के बीच में तुझे सिर ऊँचा करके खड़ा होना होगा।'

'भैया, इससे तुम्हारा अनिष्ट या अशान्ति तो न होगी ?'

'कुमू, तू अनिष्ट या अशान्ति किसे कहती है? यदि असम्मान के भीतर घुसी रहे तो मेरा अनिष्ट उसमें है या इसमें? मेरे मन में यदि यह बात ठीक जचे कि जिस घर में तू है वह तेरा अपना घर न हो सका तो जिसकी पूर्णरूप से अधिकारिणी है वह तेरे लिए बिलकुल पराया है, तो भला मेरे लिए उससे बढ़कर अशान्ति और कौन-सी हो सकती है यह मेरी समझ ही में नहीं आता। बाबूजी मुझे प्यार करते थे, किन्तु उस जमाने में मालिक लोग दूर ही दूर रहते थे। मेरे पढ़ने-लिखने के बारे में सोच न सके थे। आरम्भ से ही मैंने तुझे सिखाया है और इतनी बड़ी बनाया है, मैं भी किसी अंश में माता-पिता से कम नहीं होता। सिखाने पढ़ाने और बड़ा कर देने के बाद जिम्मेदारी कितनी बढ़ जाती है। उसका अनुभव अब मैं कर ही रहा हूँ। यदि तू लड़कियों की भाँति होती तो कहीं भी तुझे विघ्न न पड़ता। आज जहाँ तेरी स्वाधीनता समझी नहीं जा रही है, उसकी कोई कद्र नहीं है—वही तेरे लिए नरक है। मैं कौन से हृदय से तुझे वहाँ निर्वासित करके रह सकता है? तू छोटी बहन न होकर मेरा भाई होती और यहीं रहती तो उसी भाँति सदैव तू मेरे ही पास यहाँ क्यों नहीं रहती?'

भैया की छाती के सामने खाट के किनारे सिर रखकर दूसरी ओर मुँह करके कुमुद बोली—'ठीक है, किन्तु लोगों के ऊपर भार बन कर तो नहीं रहूँगी?'

विप्रदास कुमुद के माथे पर अपने हाथ को फेरते हुए बोले—'बहन, भार क्यों होगी? मेरा सम्पूर्ण काम तेरे जिम्मे रहेगा और तुझसे खूब काम करा लूँगा। तेरे जैसे काम कोई प्राइवेट सेक्रेटरी भी तो नहीं कर सकता। तुझे बाजा सुनाना पड़ेगा, मेरा घोड़ा तेरी सुपुर्दगी में रहेगा, इसके अतिरिक्त मुझे पढ़ाना बहुत अच्छा लगता है और तेरी जैसी छात्रा भला और कहाँ मिलेगी? एक काम और है—मुझे इधर बहुत दिनों से फारसी पढ़ने का शौक है। मेरा मन भी नहीं लगता। अतएव तुझे साथी बना लूँगा। अवश्य ही मुझसे बढ़ जायगी। तू देख लेना, मैं तुझसे

तनिक भी ईर्ष्या न करूँगा।'

यह सब सुनते-सुनते कुमुद आनन्द में डूब गई। इससे बढ़कर जिन्दगी में और कौन-सा सुख हो सकता है!

कुछ देर बाद विप्रदास फिर कहने लगे—'कुमू! एक बात मैं तुझसे और कह देता हूँ। हम लोगों का जमाना शीघ्र ही बदल जाने वाला है। साथ ही रहन सहन में भी अन्तर हो जायगा, हमें गरीबों की भाँति रहना होगा और गरीब का ऐश्वर्य तू ही तो बनेगी।'

आँखों में आँसू भरकर कुमुद बोली—'मेरे भाग्य ऐसे होते तो मैं अपने को धन्य समझती!'

विप्रदास मधुसूदन की चिट्ठी को भूल-से गये। उन्होंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया।

पचपनवाँ परिच्छेद

दो दिन बाद मोती की माँ हाबलू को साथ लेकर आ पहुँची। ताई की गोद में जाकर हाबलू धीरे-धीरे रोने लगा। कुमुद की छाती से सिर लगाकर हाबलू का यह रोना किसलिए है, कुछ समझा नहीं जा सकता। भूतकाल के लिए अभिमान है, वर्तमान काल के लिए प्यार अथवा भविष्य के लिए चिन्ता है?

हाबलू को छाती से लगाकर कुमुद बोली—'गोपाल! संसार कठिन है, यहाँ रोने का अन्त नहीं। मेरे पास क्या है, जिसे देकर मैं मनुष्य की सन्तान का रोना कम करा सकती हूँ। मैं रोने से रोना भले ही मिटा सकती हूँ इससे अधिक शक्ति मुझमें नहीं! जो प्रेम कि अपने को देता है, उससे अधिक और कुछ भी नहीं दे सकता—बेटा, उस प्रेम को तुम लोग प्राप्त कर चुके हो। तेरी ताई सदैव तो रहेगी नहीं किन्तु इस बात को सदैव याद रखना, याद रखना! याद रखना!!' यह कहकर कुमुद ने हाबलू का मुँह चूम लिया।

नवीन ने कहा—'बहूरानी, अब हम लोग रजबपुर पैतृक घर में जा रहे हैं क्योंकि यहाँ की नारी अब समाप्त हो गई।'

कुमुद व्याकुल होकर बोली—'मुझ-सी अभागिन ने वहाँ से यहाँ आकर तुम लोगों पर आपत्ति ला दी है।'

नवीन बोला—'बात इसके बिलकुल प्रतिकूल है। मेरा विचार बहुत दिनों से वहाँ जाने का था। मैंने ज्योंही अपना बोरिया-बन्धना बाँधना शुरू किया था, त्योंही मेरे घर में पदार्पण हुआ। अतएव घर की आशा पूरी तरह से मिट गई थी किन्तु क्रूर दुर्दैव से यह बात देखी न जा सकी।'

यह मालूम हो गया कि मधुसूदन ने उस दिन घर पहुँचकर बड़ा भारी काण्ड किया है।

अपने मुख से नवीन भले ही कुछ न कहे किन्तु मोती की माँ का सन्देह दूर न हुआ, वह सोचती ही रही कि मेरे घर-गृहस्थी में उलट-फेर करने वाला अपराध कुमुद ही के माथे पड़ता है। उसका कहना है कि कुमुद को अब भी लौट जाना चाहिए। उसका वहाँ जाने पर चाहे जितना भी अपमान हो सब नीचे सिर किये हुए सुन लेना चाहिए। मोती की माँ ने जरा अपने को कठोर करके कहा—'क्या तुमने यह निश्चय कर लिया है कि अब ससुराल जाओगी ही नहीं?'

कुमुद भी कड़े स्वर में बोली—'नहीं, नहीं जा सकती।'

मोती की माँ बोली—'तो फिर तुम क्या करोगी? तुम्हारा गुजारा कहाँ होगा?'

कुमुद ने कहा—'इतनी बड़ी पृथ्वी के ऊपर कहीं न कहीं मुझे थोड़ी सी जगह मिल ही जायगी। जिन्दगी में बहुत कुछ खो जाने पर भी कुछ न कुछ शेष रहता ही है।'

कुमुद समझ रही थी कि मोती की माँ का मन उससे बहुत दूर हट गया है। उसने नवीन से पूछा—'लाला, तो अब क्या करोगे?'

नदी किनारे थोड़ी सी जमीन है, उससे रूखा-सूखा कुछ न कुछ

ईश्वर खाने को देगा ही, कुछ-कुछ हवा भी खाने को मिलेगी।'

कुछ गरमी के साथ मोती की माँ बोली—'अजी, तुम्हें इसके लिए जरा भी फिक्र न करनी चाहिए। उस मिर्जापुर के अन्न-जल पर हमारा भी अधिकार है, उसे छीनने का किसको अधिकार है। हम लोग इतने बड़े भारी इज्जतदार आदमी भी तो नहीं कि जेठ जी के निकाल देने पर तुरन्त ही संन्यासी बन जायेंगे। आज न सही कल ही स्वयं बुलावेंगे तब फिर चले भी आवेंगे और तब तक के लिए हम में सब्र भी है। बस इतना ही मैं कहे दे रही हूँ।'

जरा खिन्न होते हुए नवीन ने कहा—'मझली बहू, इस बात को मैं जानता हूँ, किन्तु इसकी मुझे बड़ाई नहीं करनी है। यदि अब मैं द्वितीय बार जन्म लूँ तो इज्जतदार होकर ही। फिर भी अन्न-जल की चाहे कमी ही क्यों न हो, वह मुझे भी स्वीकार होगी।'

भाई साहब के आश्रम को छोड़कर नवीन न जाने कितनी बार गाँव में रह कर खेती करने का सङ्कल्प कर चुका था। मोती की माँ मुँह से तो बार-बार हाँकती रही है, किन्तु वक्त पर कुछ भी नहीं, वह नवीन को अनेकों बार रोक चुकी है। उसे विश्वास है कि उसका जेठ जी पर पूर्ण हक है, जेठ का दर्जा ससुर के बराबर होता है। उसकी सलाह से वे ठहरे जेठ—अतएव वे यदि अन्याय भी करें तो भी उसे अपमान नहीं कहा जा सकता। कुमुद के साथ उसके पति का व्यवहार चाहे जैसा क्यों न हो, किन्तु उसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वह पति का घर ही छोड़ दे। मोती को 'दुनिया से न्यारी' समझती है।'

किसी ने आकर सूचना दी—'डॉक्टर साहब आये हैं।'

कुमुद बोली—'थोड़ी देर रुको, मैं अभी आई। जरा सुन आऊँ, डॉक्टर क्या कहता है।'

कुमुद से डॉक्टर कह गया—'पहले से नब्ज कुछ खराब है। नींद रात्रि में कम आती है। अतएव रोगी को पूर्णरूप से आराम नहीं मिलता।'

कुमुद अतिथियों के पास जा रही थी, बीच ही में कालू आकर बोला—'मुझसे बिना एक बात कहे नहीं रहा जाता। कुमुद, बात बड़ी टेढ़ी हो गई है। यदि इस समय तुम ससुराल नहीं जाओगी तो संकट और बढ़ जायगा। अब मुझे कुछ सुझाई नहीं पड़ रहा है।'

कुमुद चुपचाप खड़ी रही। कालू बोला—'तुम्हारी ससुराल से एक ताकीद आई है, जिसका समर्थन करना हम लोगों की सामर्थ्य का नहीं क्योंकि हम लोग उनकी मुट्ठी में ही हैं।'

बरामदे की रेलिंग को दबाते हुए कुमुद कहने लगी—'कालू भैया, मेरे विचार में कोई बात आती ही नहीं। मेरा जी हाँफने लगता है। मेरे मन में यही विचार हो आता है कि अब मेरे लिए मृत्यु के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग है ही नहीं।' इतना कहकर कुमुद शीघ्रता से आगे बढ़ गई।

भैया के घर में रहकर कुमुद के विषय में मोती की माँ तथा चंपा बुआ से कुछ बातें हुईं। कई प्रकार के लक्षणों को मिलाकर दोनों को इस बात का सन्देह हो गया कि कुमुद गर्भवती है। मन ही मन में अति प्रसन्न होकर मोती की माँ बोली—'ईश्वर करे ऐसा ही हो, अब तो ठीक है। मानिनी ससुराल की अवज्ञा करना चाहती है, किन्तु अब तो गाड़ियों में गाँठ लग गई। क्या यह आँचल तथा छोर की गाँठ थोड़े ही है, देखूँ अब भाग के कहाँ जायेगी।'

कुमुद को एकान्त में लेजाकर मोती की माँ अपने सन्देह की बात पूछ बैठी। कुमुद का चेहरा फक पड़ गया। हाथ की मुट्ठी बाँधकर वह बोल उठी—'नहीं, नहीं, ऐसी बात कदापि नहीं है।'

क्रोध में आकर मोती की माँ बोली—'बहन, क्यों नहीं हो सकता! तुम्हारा जन्म चाहे जितने बड़े परिवार के खानदान में क्यों न हुआ हो, तुम्हारे लिए कुछ अनोखे नियम थोड़े ही हो जावेंगे। संसार के नियमों में परिवर्तन थोड़े ही हो जायगा। तुम घोष परिवार के घर की बहू हो, इस वंश के देवता सहज ही में क्या तुम्हें मुक्त कर देंगे। क्या यह तेरी समझ में नहीं आया कि वे तेरे भागने वाले मार्ग को रोककर खड़े हैं।'

कुमुद का पति के साथ का तीन माह का परिचय अन्दर ही अन्दर कितना विकृत रूप धारण कर बैठा। वह गर्भ की आशङ्का के कारण और स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगा। मनुष्य का मनुष्य द्वारा बातें जान लेने में विशेषतया कोई रुकावट नहीं होती। भाषा और भाव में, व्यवहार के छोटे से छोटे इशारों में किसी भी कार्य के करते हुए उसके भाव में, गले के स्वर में, रुचि तथा रीत और जीवन-यात्रा के आदर्श में उस भेद के लक्षण पर्याप्त रूप में फैले रहते हैं। मधुसूदन के हृदय की किसी वस्तु ने कुमुद को केवल चोट ही नहीं पहुँचाई है उसे अत्यधिक शर्मिन्दा भी किया है। वह उसे अति अश्लील-सा जान पड़ा है, आरम्भिक काल में मधुसूदन अति दरिद्र था। इसी कारण पैसे के विषय में वह प्रत्येक बात में जो अपनी राय प्रकट करता है उस वर्णित बात के भीतर उसकी व्यक्तिगत दरिद्रता की एक तुच्छता-सी भरी रहती है। प्रत्येक क्षण इस पैसा-पूजा की चर्चा वह कुमुद के मायके वालों पर व्यंग कसने के लिए ही करता था। उसके स्वाभाविक ओछेपन तथा भाषा की कर्कशता और घमण्ड रूपी बात ने मधुसूदन के शारीरिक तथा मानसिक, गार्हस्थिक और भीतरी भद्देपन ने नित्य-प्रति कुमुद के मन को और भी संकीर्ण कर दिया है। इन समस्त बातों को दृष्टि के सामने से तथा चिन्तित हृदय के भीतर से निकाल देने की कुमुद ने जितनी ही कोशिश की है उतने ही वे सब कूड़ेखाने में जाकर एकत्र हो गये हैं। अपने मन के घृणित भाव को लिये हुए कुमुद सदैव जी जान से लड़ती चली आई है। वह पति पूजा की कर्तव्यता के विषय में पूर्ण रूप से सोचती आई है। किन्तु उसकी जितनी बड़ी यह हार हुई है यह उसे कभी स्वप्न में भी न सोच सकी थी। उसके रक्त मांस का बन्धन मधुसूदन द्वारा जो अविच्छिन्न हो गया, उसकी बीभत्सता उसे महान कष्ट पहुँचाने लगी। अति उद्विग्न होकर कुमुद ने मोती की माँ से पूछा—'तुमने इसे निश्चय कैसे जान लिया?'

क्रोध में लाल होकर मोती की माँ बोली—'मैं तो लड़के की माँ हूँ, भला मैं न जानूँगी तो और कौन जानेगा? तो भी अभी बिलकुल

निश्चयात्मक रूप से कहने का समय नहीं हुआ। किसी चतुर दाई को पहले बुलवा कर परीक्षा करवा लेनी ठीक होगी।

नवीन, मोती की माँ तथा हाबलू के विदा होने का वक्त हो गया। किन्तु दैव के इस बड़े अन्याय को छोड़ कर कुमुद आज और किसी बात के बारे में सोचती ही नहीं है। इसी कारण उसने ससुराल के इन मित्रों को बड़े ही साधारण भाव से विदा किया। जाते समय नवीन ने कहा—'बहूरानी, संसार में सभी चीजों का अपमान है। किन्तु मैंने स्वप्न में भी इस बात की कल्पना नहीं की थी कि सहसा एक ही दिन में तुम्हारा सेवा करने का अधिकार मुझे मिल जायगा और सहसा ही उस अधिकार से हम वञ्चित रह जायेंगे। फिर कभी भेंट होगी।' इतना कह कर नवीन ने प्रणाम किया। हाबलू सिसक-सिसक कर चुपचाप रोने लगा और मोती की माँ बिना एक शब्द कहे ही कठोर मुँह बनाये खड़ी रही।

छप्पनवाँ परिच्छेद

विप्रदास के कानों तक यह बात पहुँच गई। दाई आई, कुमुद के गर्भवती होने में अब किसी को शक न रहा। मधुसूदन को भी यह बात विदित हो चली। मधुसूदन धन चाहता था उसे धन के साथ ही धन योग्य खिताब भी मिला। अपनी महिमा को अब भावी वंश में प्रतिष्ठित करने से ही इस जीवन में उसका कर्तव्य चरम लक्ष्य तक पहुँच जायगा। मन में जितना ही हर्ष बढ़ने लगा, उतने ही अपराध की सारी जिम्मेदारी कुमुद के उपर से हटा कर विप्रदास के ऊपर थापने लगा। उन्हें एक दूसरी चिट्ठी लिखनी प्रारम्भ कर दी। पत्र अङ्गरेजी में लिखा। जिसका आशय हिन्दी में संक्षिप्त रूप में—जैसा कि……। से प्रारम्भ कर नीचे अन्त में—आपका आज्ञाकारी सेवक……।' पर पत्र समाप्त हो चुका था। बीच में……'नहीं तो विवश होकर मुझे यह कष्टप्रद कर्तव्य पालन करना होगा' इत्यादि। इस प्रकार की धमकी की चिट्ठी का चटर्जी खानदान पर उलटा प्रभाव पड़ता है—खास कर जब कि मानहानि की आशङ्का हो।

उस चिट्ठी को विप्रदास ने कालू को दिखाई। कालू का मुख रक्तिम हो उठा। उसने कहा—'इस भाँति के पत्र से मुझ जैसे छोटे आदमी के हृदय में बादशाही मात्रा में खून खौल पड़ता है। इसे पढ़कर इस प्रकार की इच्छा जाग्रत होती है कि अदृश्य कोतवाल को बुला कर हुक्म दें कि इसका सिर काट लो।'

दिन के अत्यधिक पढ़ने लिखने के कार्य को समाप्त करके शाम के वक्त विप्रदास ने कुमुद को अपने पास बुलाया। कुमुद आज दिन भर अपने भैया के पास नहीं आई। वह अपने को छिपाती फिरती है।

बिस्तर पर से उठकर विप्रदास चौकी पर आ बैठे। रोगी की भाँति सोते रहने से मन कमजोर रहता है। कुमुद के लिए अपने सामने ही एक चौकी रख दी है। चिराग को घर के कोने में जरा ओर से रखवा दिया है। ऊपर सिर के एक पङ्खा चल रहा है, बैसाख जेठ के महीने में आकाश में गर्मी का चढ़ाव था। बीच-बीच में दक्खिनी हवा चलकर रुक जाती थी। ऐसा सन्नाटा छाया है मानो पेड़-पत्ते अपना कान उठाकर कुछ सुन रहे हैं। आज का यह अन्धकार उस भाँति का है मानो गङ्गा ने समुद्र में गिर कर उसके मुहाने का जल फीका कर दिया है। विस्तृत क्षेत्र में बिखरी हुई गोधूलि की आखिरी रोशनी उस वक्त भी शाम को उस कालिमा में मिली हुई है। छाया के कारण बगीचे का तालाब अदृश्य रहता था किन्तु आज खूब चमकते हुए नक्षत्र का स्थिर प्रतिबिम्ब आकाश की अँगुली रूप धारण करके उसे इशारे से दिखला रहा है। नौकर-चाकर हाथ में लालटेन लिये हुए पेड़ के नीचे से आ जा रहे हैं और बीच-बीच में उल्लू बोल रहे हैं।

सम्भवतः कुमुद कुछ इधर उधर करने लगी, जिससे उसे आने में कुछ विलम्ब हो गया। ज्यों ही कुमुद विप्रदास के पास चौकी पर आकर बैठी त्यों ही वह बोल उठी—'भैया, अब कुछ भी सुहाता नहीं, कहीं जाने का मेरा विचार हुआ करता है।'

विप्रदास बोले—'कुमू, तूने गलत समझा है। सब अच्छा लगने

लगेगा और कुछ दिन पश्चात् ही तेरा मन भर उठेगा।'

'किन्तु फिर···?' इतना कहकर कुमुद रुक गई।

'इसे तो मैं समझता हूँ—अब तेरे बन्धन को तोड़ कौन सकता है?'

'भैया, तो क्या जाना ही होगा?'

'मुझमें अब इतना साहस तथा अधिकार नहीं कि तुझे मना कर सकूँ। तेरी सन्तान को उसकी अपनी निजी सम्पत्ति तथा अपने घर से किस बिरते पर वञ्चित करूँ?' दोनों मौन होकर कुछ देर बैठे रहे।

अन्त में अति ही कोमल स्वर में कुमुद पूछ बैठी—'तो कब जाना होगा?'

'कल ही, क्यों कि देर करना अब सहनीय नहीं।'

'भैया, एक बात तो तुम्हें विदित ही है कि अब की बार जाने पर वे मुझे तुम्हारे पास फिर न आने देंगे।'

'इसे तो मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ।'

'अच्छा, ठीक है, यही सही, किन्तु एक बात मैं तुमसे बताये देती हूँ; किसी भी दिन, किसी भी कारण से, तुम उनके घर नहीं जा सकोगे। भैया, मैं जानती हूँ, तुमको देखने के लिए मेरा हृदय तड़प उठेगा, किन्तु उनके यहाँ मैं तुम्हें कभी न देख पाऊँ उसे मैं कैसे सहन कर सकती हूँ?'

'कुमू, इसके लिए तुम्हें सोचने की कोई आवश्यकता नहीं।'

'किन्तु वे तुम्हें सङ्कट में डालने का प्रयत्न करेंगे।'

'वे चाहे जो कुछ भी करें। कर चुकने के पश्चात् उनका हमारे ऊपर का अधिकार भी समाप्त हो जायगा। उस समय मैं स्वाधीन हो जाऊँगा कुमू, तू उसे सङ्कट क्यों कहती है?'

'भैया, उस दिन मुझे तुम भी स्वाधीन कर लेना। तब तक उनका लड़का उनके हाथ सौंप जाऊँगी। संसार में ऐसी भी वस्तुएँ हैं जो लड़के के लिए नहीं गँवाई जातीं।'

'अच्छा, पहले लड़का होने दे, फिर उसके पश्चात् कहना।'

'तुम्हें विश्वास नहीं होता, किन्तु माँ की बात तो याद है! उनको

तो इच्छा-मृत्यु हुई थी। उस दिन दुनिया में उन्हें अपने लिए जगह नहीं मिल रही थी। इसी कारण संसार से वे अपने बच्चों को अनायास ही छोड़ कर जा सकी थीं। मनुष्य को जब मुक्ति पाने की इच्छा होती है तब उसे रोकने वाला कोई भी नहीं होता। भैया, मैं तुम्हारी ही बहन हूँ, मैं मुक्ति ही चाहती हूँ। उस दिन जब कि बन्धन टूटेगा, उसी दिन माँ मुझे आशीर्वाद दें। इसे मैं तुमसे बताये रखती हूँ।'

तत्पश्चात् बहुत देर तक दोनों चुप रहे। एकाएक तेजी से हवा चली और तिपाई के ऊपर विप्रदास की पढ़नेवाली रखी किताब के पन्ने फर-फर करके उड़ने लगे। बगीचे से होकर बेला के फूल की खुशबू आने लगी, जिससे सम्पूर्ण कमरा महक उठा।

कुमुद बोली—'उन लोगों ने मुझे जानबूझ कर कष्ट दिया हो यह बात नहीं है। मैं इस भाँति की बनाई गई हूँ कि वे मुझे सुख दे ही नहीं सकते। मैं भी उन्हें सुखी नहीं कर सकती। सरलता से जो उन्हें सुखी बना सकता है, उसकी जगह घेर लेने से एक न एक प्रकार के सङ्कट उपस्थित हो जाने की सम्भावना है। तो फिर इस भाँति की विडम्बना काहे की। समाज की तरफ से अपराध के सारे अपमान को मैं अकेले ही झेल लूँगी किन्तु उन पर किसी भी भाँति कलङ्क न लगने दूँगी। किन्तु साथ ही एक दिन उन्हें भी मुक्ति दूँगी और मैं भी लूँगी। तुम देख लेना मैं चली आऊँगी। झूठ होकर झूठ में नहीं रह सकता। मैं उनके मकान की बड़ी बहू हूँ। इसके क्या अर्थ होते हैं यदि कुमुद न रही! भैया देवता को नहीं मानते, किन्तु मैं मानती हूँ। तीन मास के पहले जितना मानती थी अब उससे भी अधिक मानती हूँ। आज समस्त दिन मैं यही सोच रही हूँ कि चारों ओर इतनी विशृङ्खलता तथा इतना उलट फेर मचा है तब भी इस जञ्जाल ने सम्पूर्ण संसार को ढक क्यों नहीं लिया? इन सबको पार करके भी सूर्य तथा चन्द्रमा को लेकर संसार का कार्य चल रहा है। वहीं पर है—पार होकर जहाँ पहुँचा है वहीं बैकुण्ठ तथा मेरे देवता भी वहीं हैं। तुम्हारे सामने इन सब बातों को कहने में शर्म आती

है, किन्तु फिर कभी कहने का तो मौका मिलेगा ही नहीं। जो कहना है, वह आज ही क्यों न कह लूँ। नहीं तो तुम मेरे लिए व्यर्थ ही में चिन्ता करोगे। सब कुछ चले जाने के बाद भी कुछ न कुछ शेष रह ही जाता है। इसे मैं भली भाँति समझने लगी हूँ। वह मेरा अ-निबट है, जो कि कभी न निबट सकेगा। वे मेरे देवता हैं। यदि मैं इतना न समझती तो यहीं तुम्हारे चरणों के नीचे सिर रखकर प्राण त्याग देती, और उस कैदखाने में घुसने को तैयार न होती। भैया, तुम इस दुनिया में मेरे सन्निकट हो इसी से इन बातों के समझाने का ज्ञान मुझमें आ सका है।'

इतना कहकर कुमुद चौकी पर से उतर पड़ी और भैया के चरणों पर सिर रखकर पड़ी रही। रात व्यतीत होने लगी। विप्रदास को जँगले के बाहर का दृश्य जो दिखाई न पड़ता था नजर दौड़ाते हुए कुछ सोचने लगे।

सत्तावनवाँ परिच्छेद

विप्रदास ने दूसरे दिन खूब तड़के ही उठकर कुमुद को बुलवा भेजा। कुमुद आई, आकर देखा कि विप्रदास बिस्तर पर बैठे हैं। उनकी गोद में एक इसराज रखा है और दूसरा एक और इसराज बगल में खड़ा है। वे कुमुद से बोले—'इसराज उठा लो और हम दोनों मिलकर साथ बजायेंगे।'

अभी कुछ कुछ अँधेरा ही था, शीतल वायु सम्पूर्ण रात व्यतीत करके अब भी चल रही है। कौवों का काँव काँव शब्द सुनाई पड़ रहा है। दोनों भैरवी राग के सुर में अलापने लगे। कैसा गम्भीर, शान्त, करुणा-पूर्ण स्वर है। शङ्कर जी के उस दिन के प्रातःकाल के ध्यान में पार्वती जी का हृदय जैसा चञ्चल हो उठा था, इसराज बजाते-बजाते फूल से लदी गूँजा की डालियों के बीच से रक्तिम ज्योति धीरे-धीरे सफेद हो उठी। बाद की दीवाल के ऊपर सूर्य दिखाई देने लगा। नौकर चाकर दरवाजे के पास आते और लौट जाते। घर साफ न हुआ। घर के भीतर धूप न गई।

दरबान ने आकर तिपाई के ऊपर अखबार रखा और बिना बोले ही चला गया।

अन्त में बाजा बन्द करते हुए विप्रदास ने कहा—'कुमू, क्या तू यह समझती है कि मेरा कोई धर्म ही नहीं। यदि मैं अपने धर्म को शब्दों में कहूँ तो वह खत्म हो जाता है। इसी कारण कहता नहीं, मैं गाने के रूप में उसका सुर देखता हूँ, जिससे गम्भीर दुःख तथा गहरे आनन्द दोनों एक दूसरे में लीन हो गये हैं। मैं उसका नाम देने में असमर्थ हूँ। कुमुद ! आज तू चली जा रही है—सम्भवतः अब भेंट न हो सके। आज प्रातःकाल ही तुझे उन सब बेसुरों तथा सब अनमोलों के उस पार पहुँचाने के लिए आ गया हूँ। तूने 'शकुन्तला' तो पढ़ा ही है—शकुन्तला ने दुष्यन्त के घर जाने की जब यात्रा की थी तो कुछ दूर तक कण्व ऋषि उसे पहुँचाने गये थे। जिस लोक में उसे पहुँचाने गये थे उसके बीच में घोर दुखित अपमान था। किन्तु वहाँ वह रुक गई हो, ऐसा नहीं हुआ। उसे भी पार करके अचल शान्ति में शकुन्तला जा पहुँची थी। आज प्रातःकाल भैरव राग में उसी शान्ति का यह सुर है। मेरे समस्त अन्तःकरण की अशीश तुझे उसी स्वच्छ परिपूर्णता की ओर बढ़ाती रहे। वह परिपूर्णता तेरे अन्दर-बाहर तथा तेरे सम्पूर्ण दुःख और अपमान को बहा दे।'

कुछ भी न बोलकर कुमुद ने विप्रदास के चरणों पर शीश झुकाया और प्रणाम किया। खड़ी होकर कुछ देर तक जँगले द्वारा आते हुए प्रकाश को देखती रही। उसके बाद बोली—'भैया, क्या तुम्हारी रोटी और चाय बनाकर लाऊँ?'

ज्योतिषी को बुलवाकर मधुसूदन ने यात्रा के लिए आज शुभमुहूर्त सधवा लिया था। सवेरे के दस बजे ठीक वक्त पर दरवाजे के ऊपर एक जरीदार लाल बनात से घिरी हुई पालकी आकर लग गई। दरबान आदि सोटा लेकर उपस्थित हो गये, वे सब कुमुद को आज अपने साथ मिर्जापुर के प्रासाद को ले गये। वहाँ पर आज ब्राह्मण भोजन और उनकी

विदाई हो रही है साथ ही वहाँ नौबत बज रही है।

विप्रदास के कमरे में बार्ली का प्याला लिये हुए माणिक आया। बँगले के सामने चौकी ले जाकर बिस्तरे को छोड़ आज विप्रदास उसी पर बैठे हैं। बार्ली कब आई इसका उन्हें कुछ भी पता न था। माणिक लौट गया। इसके बाद पथ्य लेकर बुआ जी आई। उन्होंने विप्रदास के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'बेटा विपू, देर क्यों कर रहा है ?'

चौकी पर से उतर कर विप्रदास धीरे-धीरे बिस्तर पर आकर पड़ रहे। क्षेमा बुआ की प्रबल इच्छा थी कि विप्रदास जिस प्रकार धूमधाम से आदर के साथ कुमुद को लिवा ले गये थे उसका सविस्तर वर्णन करें, किन्तु विप्रदास की घोर निस्तब्धता देखकर उनके मुँह से एक भी शब्द न निकल सका। उसे साफ मालूम हो गया कि उनकी आँखों के सामने उनके अन्तर को स्पर्श करनेवाली शून्यता विराजमान है। जिस समय विप्रदास यह कह बैठे कि 'बुआ जी, कालू को मेरे पास भेजवा दो।' तभी यह नितान्त छोटी सी बात मानो अदृष्ट की किसी बड़े लम्बे-चौड़े निःशब्द छाया के भीतर से आवाज कर उठी। मारे डर के बुआ के रोंगटे खड़े हो गये।

कालू के आने पर विप्रदास ने सुबोध की लिखी एक चिट्ठी जो कि विलायत से आई थी, उसे दी। सुबोध ने लिखा है—बिना 'बार' का डिनर समाप्त किये ही यदि वह चला आवे, उसे वहाँ फिर जाना पड़ेगा। इससे तो यही अच्छा है कि माघ-फाल्गुन तक अन्तिम डिनर से छुट्टी पाकर देश वापस लौटे। इससे बेमतलब के खर्च से भी बच जायेंगे। उसका विचार है कि यहाँ की आवश्यकताएँ बहुत बड़ी नहीं हैं।

धन-सम्पत्ति के जिक्र को आज फिर से उठाकर विप्रदास को व्यथित करने की इच्छा कालू में तनिक भी न रही। कालू ने कहा—'भाई साहब, रुपये चुकाने की कोई बात तो अभी आई नहीं और कुछ दिन इसी भाँति सावधानी से चलें और छेड़-छाड़ न की जाय तो सम्भवतः जल्दी कोई उपद्रव खड़ा न हो सकेगा। खैर, चाहे जो कुछ भी हो, तुम किसी प्रकार

की चिन्ता मत करो।'

विप्रदास बोले—'कालू! मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं, लेशमात्र भी नहीं।'

कालू को विप्रदास की चिन्ता अच्छी नहीं लगती, किन्तु अधिक निश्चिन्तता भी उसे किसी प्रकार भली नहीं लगती।'

विप्रदास अखबार उठाकर पढ़ने लगे। कालू को इस बात के समझने में तनिक भी देर न लगी कि विप्रदास अब इस विषय पर बातचीत करना नहीं चाहते। अन्य दिनों काम काज की बात के समाप्त हो जाने पर कालू चला जाता था किन्तु आज वह चुपचाप बैठा रहा। उसकी इच्छा होने लगी कि वह कोई बातचीत करे, जिस प्रकार से भी हो किसी सेवा में लग जाय, अतएव पूछा—'क्या बाहर की उस खिड़की को बन्द कर दूँ? अन्दर धूप आ रही है।'

हाथ को हिलाते हुए विप्रदास ने संकेत द्वारा बताया कि कोई आवश्यकता नहीं है।

फिर भी कालू बैठा ही रहा। आज कुमुद भैया के पास नहीं है यह शून्यता उसकी छाती के ऊपर सवार रही। एकाएक सुनाई पड़ी उसे खाट के नीचे टाम कुत्ता के घुमड़-घुमड़ कर रोने की आवाज! कुमुद के जाते वक्त वह उपस्थित था, न मालूम उसे क्या समझ रक्खा है। उसे भली भाँति समझाया नहीं जा सकता।

* समाप्त *